# MAPA- 604

# कार्मिक प्रशासन (भाग- 2)

# PERSONNEL ADMINISTRATION

## (Part- 2)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139
फोन नं0- 05946- 261122, 261123
टॉल फ्री नं0- 18001804025
ई-मेल- info@uou.ac.in
वैबसाईट- http://uou.ac.in

## अध्ययन मंडल


| | |
|---|---|
| प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे<br>निदेशक- समाज विज्ञान विद्या शाखा<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी | प्रो0 अजय सिंह रावत<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी |
| प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गढवाल, उत्तराखण्ड | प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य )<br>राजनीति विज्ञान विभाग<br>कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड |
| डॉ0 ए0के0 रुस्तगी, रीडर, राजनीति विज्ञान<br>जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश | डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी |
| डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर), उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड | |
| **पाठ्यक्रम संकलन और सम्पादन** | |
| डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर)<br>लोक प्रशासन विभाग<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड | |
| **इकाई लेखक** | **इकाई संख्या** |
| प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी, राजनीति विज्ञान विभाग<br>एस0बी0एस0 पी0जी0 कालेज, रूद्रपुर | 1, 2, 3, 4 |
| डॉ0 तीर्थ प्रकाश, राजनीति विज्ञान विभाग<br>राजकीय महाविद्यालय, मगलौर, हरिद्वार | 5, 6, 7 |
| डॉ0 अंजु पारीक लोक प्रशासन विभाग, एस0 जी0 पारीक पी0जी0 कालेज, जयपुर | 8, 9, 10, 11 |

**प्रकाशन वर्ष- 2022**

**कापीराइट** @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

**प्रथम संस्करण-** 2022

प्रकाशक निदेशालय- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

प्रकाशन से पूर्व की प्रति।

**अनुक्रम**


| | |
|---|---|
| **खण्ड-1 कार्मिक प्रबन्धन: नीति और व्यवहार** | |
| **1.** कार्मिक नीति | 1 – 14 |
| **2.** भर्ती (सेवाओं में आरक्षण) | 15 – 31 |
| **3.** पदोन्नति | 32 – 47 |
| **4.** प्रशिक्षण | 48 – 67 |
| **खण्ड-2 कार्य दशाएं एवं सेवा दशाएं** | |
| **5.** वेतन प्रशासन | 68 – 82 |
| **6.** आचार एवं अनुशासन | 83 – 96 |
| **7.** प्रशासनिक नैतिकता एवम् कार्मिक प्रशासन में भ्रष्टाचार | 97 – 117 |
| **खण्ड-3 नियोक्ता कार्मिक संबंध** | |
| **8.** नियोक्ता कार्मिक संबंध | 118 – 129 |
| **9.** कार्मिक संघ | 130 – 139 |
| **10.** अभिप्रेरणा और नैतिकता | 140 – 151 |
| **11.** कार्मिको की सेवा संबंधी शिकायतें एवम् उनका निवारण: प्रावधान व प्रक्रियाएं | 152 – 161 |

# इकाई- 1कार्मिक नीति

**इकाई की संरचना**

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 नीति निर्धारण का अर्थ
1.3 कार्मिक नीति
1.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी
1.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन / संस्था
1.6 कार्मिक विभाग
1.7 नवीन नीति परिदृश्य
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

## 1.0 प्रस्तावना

किसी भी राज्य की उत्कृष्टता का आधार उसका प्रशासनिक ढांचा होता है। प्रशासन एवं मानव संसाधन ऐसे आयाम हैं जो राज्य की नीतियों एवं मानव समाज के विकास को अपनी दक्षता एवं कार्य कुशलता से प्राप्त करने का कार्य करते हैं। समाज का स्वरूप और राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति भी प्रशासन द्वारा ही निर्मित और निर्धारित होती है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है । वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है । कार्मिकों का प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण चुनौतीपूर्ण कार्य है। मानव शक्ति का कुशल प्रबंधन प्रशासन को गतिशील बनाता है। इस प्रकार यह प्रशासन का जीवित तत्व या प्राण है।

प्रशासन राज्य की नीतियों को क्रियान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। प्रशासन इस भूमिका को अपने मानव संसाधन द्वारा निष्पादित करता है। मानव संसाधन का प्रबंध राज्य की प्रबंध प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अंतर्गत कार्मिक नीति की रूपरेखा, कर्मचारियों के विभिन्न पहलुओं का एक निवेश के रूप में एकीकरण करती है। प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में बहुत लंबे समय तक कर्मचारियों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया और उन्हें समस्त गतिविधियों में सहायक मात्र ही माना जाता था। समय के साथ इस अवधारणा में परिवर्तन आया है।

इस अध्याय के माध्यम से पाठकों को नीति निर्धारण के अर्थ, सार्वजनिक कर्मचारी की अवधारणा एवं कार्मिक नीति से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा, भारत में कार्मिक नीति, कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग जैसे विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी ।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक नीतियों का व्यापक अध्ययन कर पाएंगे, जो बड़े पैमाने पर अपनाई जाती है।
- नीति निर्धारण के अर्थ एवं सार्वजनिक कर्मचारी के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही लोक सेवकों के कार्मिक नीतियों की अवधारणा तथा भारत में कार्मिक नीति के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था तथा कार्मिक विभाग विषयों को समझने में भी सक्षम हो पाएंगे तथा
- नवीन नीति परिदृश्य का मूल्यांकन कर पाएंगे।

## 1.2 नीति निर्धारण का अर्थ

नीति निर्धारण की प्रक्रिया प्रशासन की केन्द्रीय प्रक्रियाओं में से एक है। एपेल्बी के अनुसार नीति निर्माण ही लोक प्रशासन का सार है। नीतियाँ आवश्यकता के अनुकूल कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करती है। नीतियाँ, व्यवहार के वे नियम हैं जो प्रशासनिक निर्णयों का मार्गदर्शन करती हैं। ये ऐसे आधार-स्तम्भ हैं, जिसके सहारे उद्देश्यों की ओर बढ़ा जाता है।

नीति निर्धारण शब्द का प्रयोग लोक प्रशासन में व्यापक रूप से किया जाता है। नीति निर्धारण और नीति निर्माण भिन्न प्रकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया है।नीतियां सामान्य तौर पर यथार्थ और सार्थकता के अधिकार क्षेत्रों से संबंधित मानी जाती है। यह अधिक समय के लिए वैध होती है और व्यापक कार्य के लिए मार्गदर्शक के रुप में भी कार्य करती है। इस प्रकार नीति निर्धारण मानवीय घटना के लिए एक ऐसी सक्रिय प्रक्रिया है जो संबंधित तथ्यों एवं पक्के मूल्यांकन से बनाई जाती है और जिसमें भविष्य के कार्य रूप के लिए रूपरेखा होती है और जिसका लक्ष्य सर्वश्रेष्ठ साधनों द्वारा उद्देश्य की पूर्ति होता है।

नीति निर्धारण शब्द इस प्रकार विविध प्रक्रियात्मक प्रयासों का एक रूप है, जिसमें निम्नलिखित तथ्यात्मक गतिविधियां समाहित होती हैं- विषयों का विनियोजन, समस्याओं का निर्धारण, नए विचारों की खोज तथा समस्याओं का विश्लेषण, उद्भवन, संश्लेषण, मूल्यांकन, कार्य योजनाओं को अधिग्रहित करना, तथा कार्य योजनाओं का क्रियान्वयन तथा उनकी समीक्षा।

यद्यपि नीति निर्धारण से पूर्व सारे तथ्यों पर विचार किया जाता है और सारे आयाम और उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन भी प्रायः कर लिया जाता है, परंतु वास्तविकता में विशिष्ट अनुभव, व्यक्तिगत ज्ञान तथा व्यवसायिक निपुणता के साथ-साथ अन्य प्रवृतियां भी नीति निर्धारण को प्रभावित करती हैं। भारत में लोक प्रशासन तदर्थ व्यवस्था एवं अन्य बुराइयों से पीड़ित है। स्वतंत्रता के बाद लोक प्रशासन ने भारत में एक लंबा सफर तय किया है। ब्रिटिश काल में प्रशासन जनता से बिल्कुल मुक्त था तथा राष्ट्रीय विकास, आर्थिक नियोजन, सामाजिक प्रगति और जनकल्याण से इसका कोई लेना देना नहीं था। लोक प्रशासन अपने स्वरूप में पुरातन बना हुआ था तथा इसकी कार्यशैली भी अत्यंत औपचारिक थी। यथास्थितिवादी होने के कारण इसकी कार्यशैली विकासोन्मुख और प्रगतिशील नहीं थी। स्वतंत्रता के पश्चात इसमें आमूल परिवर्तन हुए और नए आयामों की ओर इसका रुझान शुरू हुआ। इनमें प्रमुख थे- जनकल्याण, राज्य के कार्यों में अभूतपूर्व वृद्धि, प्रक्रियात्मक परिवर्तन तथा व्यवस्था से जुड़े कर्मचारियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि आदि।

## 1.3 कार्मिक नीति

लोक प्रशासन की प्रक्रियाओं को संपादित करने के लिए एक विस्तृत तंत्र की आवश्यकता होती है और इस तंत्र को सुचारू रूप से चलाने के लिए कार्मिकों की एक विशाल संख्या की जरूरत भी पड़ती है। किसी संगठन के इन्हीं

कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, प्रोन्नति, सेवा शर्तों आदि का अध्ययन कार्मिक प्रशासन का प्रमुख विषय है। लोक सेवकों के संबंध में जो नीति अपनाई जाती है, उसी से संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता का निर्धारण किया जा सकता है। मैक्स वेबर का कहना है एक स्वस्थ सेवी वर्ग संबंधी नीति वह है, जिसमें सभी कार्मिकों के कार्य निर्धारित कर दिए जाएं और उन्हें पूरा करने के लिए कर्मचारियों को पूरा अधिकार सौंपा जाए। कार्य की संपन्नता व्यवस्थित और प्रणालीबद्ध तरीके से हो।

सफल कार्मिक प्रशासन कुशल प्रशासन का आधारभूत तत्व है। यह संगठित मानव शक्ति ही हैं जो किसी भी प्रशासन या व्यवस्था की मूल्यवान संपत्ति है। शासन, प्रशासन और प्रबंधन के समस्त संसाधनों का सदुपयोग, मानवीय कुशलताओं और प्रतिबद्धताओं पर ही निर्भर करता है। नीति निर्धारण एक प्रकार का निर्णय निर्धारण है जो विविध तत्वों के मूल्यांकन द्वारा किया जाता है। इसके अंतर्गत समस्याओं की पहचान, विश्लेषण, कार्यकारी योजनाओं को अपनाया जाना, उसको क्रियान्वित करना तथा उस पर दृष्टि रखना शामिल है। कभी-कभी नीति निर्धारण करने में विशेष प्रवीणता और अनुभव आवश्यक तथ्य प्रतीत होते हैं। एक सफल कार्मिक नीति का संबंध कर्मचारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवानिवृत्ति आदि से संबंधित है। कर्मचारियों की दक्षता, सुरक्षा और विकास के संरक्षण एवं उसमें कोई भ्रांति या उलझन उत्पन्न ना हो सके, कार्मिक नीति पर निर्भर होता है। संगठन की योजनाओं और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सुविचारित नीति का होना आवश्यक है। यह नीतियां मार्गदर्शक का कार्य करती है, जिसका अनुसरण करते हुए संगठन कर्मचारियों के माध्यम से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। संगठन और कर्मचारियों की मांग और पूर्ति का अनुमान तथा नियोजन को व्यवहारिकता प्रदान करने के लिए गंभीर एवं प्रयासों से कार्मिक नीतियां देश, काल और परिस्थिति के अनुसार बनाई जाती है।

कार्मिक प्रशासन संबंधी नीति की दिशा में चार सरकारी अभिकर्ताओं का विशेष उत्तरदायित्व होता है, ये हैं- विधानमंडल, मुख्य कार्यकारी, कार्मिक विभाग और सरकारी विभाग। सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में नियोजन, प्रशिक्षण, कल्याण तथा सुरक्षा सम्बन्धित समस्याओं के निदान के लिये कार्मिक विभाग की स्थापना की जाती है। आज के युग में श्रम विधान तथा उद्योगों में श्रमिक संघ की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए कार्मिक विभाग का महत्व और अधिक बढ़ गया है। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के कार्मिक विभाग के दायित्व जिस अधिकारी के द्वारा संभाले जाते हैं, उसे मुख्य कार्मिक कहा जाता है। इसे श्रम विधान, औद्योगिक संबंध, मजदूरी भुगतान की विधियों, संगठन तथा उद्योग की समस्त संक्रियाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। नियोजन, मानव संबंध, कर्मचारियों के पारिश्रमिक एवं श्रम कल्याण संबंधी कार्य आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है।

## 1.4 भारत में सार्वजनिक कर्मचारी

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन की भूमिका में भी विस्तार हुआ है और अब लोक प्रशासन विकास प्रशासन बन गया है, जो कार्य एवं लक्ष्य की प्रति उन्मुख है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सार्वजनिक कर्मचारी एक प्रमुख अंग है। भारतीय प्रशासनिक प्रणाली का केंद्र बिंदु सर्वजनिक कार्मिक प्रशासन है।

भारत में सार्वजनिक संस्थानों में कार्मिक प्रबंध के लिए नियोजित नीति का प्रावधान स्वतंत्रता के पश्चात किया गया है । आरंभ में कार्मिक प्रबंध के लिए कोई नियोजित नीति नहीं थी। निम्न स्तर पर तथा मध्यम स्तर पर कर्मचारियों के संबंध में उपयुक्त नीति का सर्वथा अभाव था। विशेषकर नीति निर्धारण अधिकारों की प्रत्यायुक्ति में तथा रचनात्मकता के प्रवेश करने में उनका उचित स्थान नहीं था। क्रियात्मक नौकरशाही भी मुख्यधारा से कटा हुआ था। कर्मचारियों के उपयुक्त प्रयोग, उनको प्रेरित करने वाले नीतियों एवं कार्य योजनाओं के अभाव के कारण

विकास उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक सिद्ध हुई और कार्मिक प्रशासन लगभग पंगु सा होता चला गया। नौकरशाही के प्रबंध और कर्मचारियों के कार्य कौशल का निष्पक्ष मूल्यांकन के लिए एकसमान नीति का भी सर्वथा अभाव था। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कार्मिक प्रणाली तथा लोक प्रशासन की संरचना में सुधार हेतु अनेक आयोगों और समितियों का गठन किया गया। 1960 के दशक के मध्य तक लगभग बारह समितियों और आयोगों द्वारा इस संबंध में सुझाव दिए गए। इन आयोगों और समितियों में निम्नलिखित शामिल हैं-

- सचिवालय पुनर्गठन समिति, 1947
- केंद्रीय (प्रथम) वेतन आयोग 1946-47
- सरकारी मशीन पुनर्गठन रिपोर्ट , 1949
- लोक प्रशासन की रिपोर्ट, 1951
- सरकारी मशीनरी पर रिपोर्ट (कार्य कौशल में सुधार), 1952
- भारत में लोक प्रशासन सर्वेक्षण की रिपोर्ट, 1953
- राज्य पुनर्गठन आयोग, 1955
- लोक सेवाओं पर रिपोर्ट, 1956
- केंद्र सरकार के कर्मचारियों की सेवा एवं वेतनमान के संबंध में जांच आयोग (दूसरा वेतन आयोग), 1957
- भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की रिपोर्ट ,1962
- भ्रष्टाचार उन्मूलन समिति की रिपोर्ट, 1964 तथा पंचवर्षीय योजनाएं

इन सभी रिपोर्टों ने कार्मिक प्रणाली को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा नई चुनौतियों से निपटने के उपाय हेतु व्यापक सुझाव दिए। इन सुझावों में कार्मिक प्रबंध को सक्रिय बनाने के लिए बेहतर उपायों को अपनाने की सलाह दी गई लेकिन ये सुझाव पर्याप्त नहीं थे और आज तक बहुत सारे सुधारों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। प्रशासन स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात भी अपनी कार्यप्रणाली में आज भी अपनी पुरातन प्रवृत्तियों को बरकरार बनाए हुए हैं तथा सोच एवं कार्यशैली में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया है। कार्मिक प्रणाली में कोई भी नवीन, अपूर्व या सक्रिय नीति आज तक नहीं अपनाया गया। सरकार अब नागरिकों के विविध पहलुओं में सकारात्मक एवं व्यापक भूमिका निभा रही है और यह भूमिका परिवर्तन, जनकल्याण आदि नवीनतम मुद्दों से जुड़ा हुआ है। सामाजिक-आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्र निर्माण की चुनौतियां को देखते हुए भारत में भी प्रशासन के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की जाती रही है। भारतीय संविधान में समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व का आश्वासन दिया गया है तथा भाग तीन में वर्णित मूल अधिकारों के अंतर्गत राज्य के निरंकुशता से व्यक्तिगत सुरक्षा का प्रावधान भी किया गया है। सभी नागरिकों के लिए मौलिक स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है। भाग-4 में वर्णित राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत भी राज्य का यह मौलिक दायित्व होगा कि वह ऐसी परिस्थितियां पैदा करें जिससे देश के नागरिक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें। इस संवैधानिक संस्कृति ने सरकार पर समस्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को एक नया रचनात्मक रूप देने का दायित्व सौंपा है।

## 1.5 कार्मिक नीतियों के निर्धारण हेतु संगठन/संस्था

कर्मचारियों की समस्याओं के समाधान के लिए नीति के अभाव में अन्य व्यवस्थात्मक त्रुटियां भी जिम्मेदार थी। भारत में कार्मिक नीतियों और कार्य योजनाओं से संबंधित कोई समर्पित संगठन नहीं था। कर्मचारियों के हित में

गृह मंत्रालय तथा वित्त मंत्रालय व्यवस्था विभाग शुरू से ही संयुक्त रूप से प्रबंधात्मक दायित्व संभाल रहे थे और संघ लोक सेवा आयोग एक सलाहकार की भूमिका में था। भारत सरकार का व्यवस्था अधिकारी जो मंत्रिमंडलीय सचिव का अधीनस्थ था, एक सरकारी प्रतिनिधि था, जो उच्च स्तर के कर्मचारियों की नियुक्ति के कार्य की भी देखरेख करता था। इस प्रकार कार्यभार विभाजित थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि समेकित केंद्रीय निर्देशन का अभाव हमेशा बना रहा। प्रगति दायित्वों को लगभग हाशिये पर छोड़ दिया गया था, जिसके कारण कर्मचारी हितों पर ध्यान देना पूरी तरह संभव न हो सका।

1. **कार्मिक अभिकरण पर मूल्यांकन समिति की रिपोर्ट, 1956-** तीसरी लोकसभा की मूल्यांकन समिति ने अपने 93वीं रिपोर्ट में यह टिप्पणी की- 'ऐसी सरकार जिसका उद्देश्य जनकल्याण हो तथा जिसकी प्रशासनिक सेवा बहुत बड़ी हो, उसकी भूमिका निरंतर व्यापक होती जाती है।' इसके लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों पर प्रभावी नियंत्रण किसी एक ही संस्था द्वारा किया जाए। यह समेकित संस्था मंत्रिमंडलीय सचिव के नियंत्रण में कार्य करें और सारी सेवाओं की शर्तों को निर्धारित और भी नियमित करे। इस प्रकार यह समेकित अभिकरण गृह और वित्त मंत्रालय के दोहरे नियंत्रण का स्थान ले ले।
2. **प्रशासनिक सुधार आयोग-** लोक प्रशासन की प्रणाली संबंधित त्रुटियों को दूर करने के लिए, प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए तथा लोक प्रशासन के विविध विषयों पर व्यापक दृष्टिकोण के लिए भारत सरकार ने 1966 में के. हनुमंथप्पा के नेतृत्व में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया, जिसकी अधिकार सीमा संबंधी शर्तें काफी विस्तृत थी। बीस अध्ययन दलों की सहायता से आयोग ने बीस रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिनमें 5 रिपोर्ट सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रशासन के संबंध में थी। ये रिपोर्ट थे-
    - भारत सरकार की मशीनरी और उसकी कार्य प्रक्रिया पर रिपोर्ट
    - सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर रिपोर्ट
    - कार्मिक प्रशासन पर रिपोर्ट
    - केंद्र और राज्य के संबंधों पर रिपोर्ट तथा
    - राज्य प्रशासन पर रिपोर्ट
3. **कार्मिक प्रशासन पर प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट-** प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट कार्मिक प्रशासन से संबंधित था, जिसका विषय केवल कर्मचारी ही था। इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए तीन समितियों की सहायता या सलाह ली गई जो थे-
    - कार्मिक प्रशासन पर पाटिल अध्ययन दल
    - भर्ती, चयन, संघ राज्य लोक सेवा आयोग तथा प्रशिक्षण पर थोराट अध्ययन दल तथा
    - पदोन्नति, आचार नियम, अनुशासन एवं मनोबल पर नगरकट्टी अध्ययन दल।

आयोग ने कार्मिक प्रशासन से सबंधित देश की भविष्य कालीन कार्यप्रणाली के संबंध में महत्वपूर्ण नीतियों एवं योजनाओं को नया रूप दिया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित विषयों पर नीति संबंधी विशेष सुझाव दिए थे-

- **कार्यात्मकता, विशिष्टवाद तथा अधिकारी वर्ग-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार ऐसा क्रियात्मक क्षेत्र बनाया जाए जिसमें भू राजस्व प्रशासन, शासकीय दायित्वों को निभाना तथा राज्यों में विधायी कार्य सम्मिलित हो। इसके अतिरिक्त सारे कार्यक्षेत्र, जिनकी देखभाल दूसरे सेवाओं के सदस्य

नहीं करते हो, सारे पदों पर, चाहे वह प्रधान कार्यालय में हो या क्षेत्र में हो, क्रियात्मक सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान किया जाना चाहिए या फिर ऐसे अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो सेवा में संवर्गित नहीं किए गए हो। उप सचिव अथवा केंद्रीय प्रधान कार्यालय में समान स्तर के पद, जो किसी विशेष क्रियात्मक क्षेत्र में नहीं आते, निम्नलिखित आठ विशिष्ट प्रकार केक्षेत्रों में विभाजित करने का सुझाव दिया गया- आर्थिक प्रशासन, औद्योगिक प्रशासन, कृषि एवं ग्रामीण विकास प्रशासन, सामाजिक एवं शिक्षा प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, रक्षा प्रशासन एवं आंतरिक सुरक्षा तथा नियोजन। क्रियात्मक क्षेत्र में प्रबंध संबंधी वरिष्ठ पदों पर पदानुसार क्रियात्मक सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति का सुझाव भी प्रशासनिक सुधार आयोग ने दिया। इसके साथ ही क्रियात्मक क्षेत्र से बाहर वरिष्ठ पदों पर ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए जो उपरोक्त 8 विशिष्ट क्षेत्रों में से किसी एक क्षेत्र के प्रबंध तथा नीति समूह के सदस्य के रूप में कार्य का अनुभव रखते हो और जिन्होंने अपनी सेवा के कम से कम सत्रह साल पूरे कर लिया हो।

- **समेकित वर्गीकरण की रूपरेखा-** प्रशासनिक सेवाओं के सभी पदों को अलग-अलग श्रेणियों में विभाजित करने की अनुशंसा प्रशासनिक सुधार आयोग ने की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार इन पदों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर देना चाहिए। वैसे पद जिनमें एक समान योग्यताएं आवश्यक हो और जिन का कार्यक्षेत्र लगभग समान हो, उनका वर्गीकरण एक ही श्रेणी में करना चाहिए। श्रेणियों की संख्या 20 से 25 के बीच होनी चाहिए। 9 सामान्य वेतन दरों का निर्धारण प्रथम श्रेणी के सभी पदों का मूल्यांकन करके निर्धारित किया जाना चाहिए। इनमें कनिष्ठ, मध्य स्तर तथा वरिष्ठ, इन तीन स्तरों में विभाजन आवश्यक है। कनिष्ठ से मध्य स्तर में तथा मध्य से वरिष्ठ स्तर में पदोन्नति चयन प्रक्रिया द्वारा होना चाहिए।
- **संवर्ग प्रबंध नियोजन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार आगामी 5 वर्षों के पूर्वानुमान के आधार पर कर्मचारियों की मांग प्रस्तुत की जानी चाहिए। भर्ती के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय विदेश सेवा एवं दूसरी ऐसे प्रथम श्रेणी के सेवाओं के लिए, जिसमें कोई अलग तकनीक ना हो, भर्ती एक ही प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा की जानी चाहिए और इस परीक्षा में प्रत्याशियों को अपनी मनपसंद सेवाओं के क्रमानुसार चुनने की छूट भी होनी चाहिए। एक ऐसी समिति की स्थापना भी होनी चाहिए जो भर्ती के द्रुतगामी तरीके, प्रचार पर किए जाने वाले व्यय में कटौती करने और उच्च स्तर की सेवाओं के लिए होने वाली परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में संशोधन समय -समय पर करने के तरीके भी सुझाए। ऐसी प्रतियोगिता परीक्षा में प्रवेश पाने वालों की ऊपरी आयु सीमा बढ़ाकर 26 वर्ष की जानी चाहिए।

  ऐसे प्रतिभाशाली अधिकारियों को, जो प्रथम श्रेणी की सेवा में नहीं है, आगे बढ़ने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले प्रथम श्रेणी के रिक्त पदों का अनुपात, जहां भी 40 प्रतिशत से कम हो, अनुपात को बढ़ाना चाहिए तथा हर उस अधिकारी को जिसने सेवा काल के 6 वर्ष पूरे कर लिए हैं और जिनकी आयु 35 वर्ष से कम है, उसे एक केवल एक और अवसर प्रथम श्रेणी के पद के लिए प्रतियोगिता परीक्षा मंब दिया जाना चाहिए। यदि वह सारी शर्तें और शिक्षा के स्तर को पूरा करता हो तो इस बात का विशेष ध्यान आवश्यक नहीं है कि उसने कितने अवसरों का उपयोग किया है।
- **प्रशिक्षण-** सरकार को प्रशासनिक सेवा के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए उद्देश्य और प्राथमिकताएं निर्धारित करने के लिए स्पष्ट और दूरदर्शी नीति होनी चाहिए। सचिवालय में मध्य स्तर के प्रबंधकों के प्रशिक्षण में व्यापक रूप से तीन बातें आवश्यक होनी चाहिए- प्रधान कार्यालय में कार्य में प्रशिक्षण, आठ

विशिष्टताओं में विशेष पाठ्यक्रम और उप-क्षेत्र विशिष्टतावाद प्रशिक्षण। नीति और नियोजन में प्रशिक्षण का प्रावधान सभी विशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण के अंश के रूप में किया जाना चाहिए।

- **कार्य कौशल का मूल्यांकन-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रत्येक वर्ष के अंत में हर एक अधिकारी की वार्षिक आख्या जो 300 शब्दों से अधिक का न हो और उसमें उसकी उपलब्धियों का उल्लेख आवश्यक रूप से किया जाए। यह विवरण उस अधिकारी को प्रस्तुत किया जाए, जिससे उसकी गुप्त रिपोर्ट लिखनी है और वह विवरण गुप्त रिपोर्ट का एक अंग माना जाएगा। मूल्यांकन करते समय अधिकारी को उस विवरण पर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा अपनी टिप्पणी लिखने के बाद उसे उच्च पदस्थ अधिकारी को समीक्षा के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। समीक्षा करने वाला अधिकारी इस पर टिप्पणी कर उस अधिकारी की कोटि का निर्धारण करेगा।
- **पदोन्नति-** प्रथम श्रेणी में पदोन्नति के लिए रिक्त स्थानों, जिसमें अखिल भारतीय सेवाएं भी शामिल हैं, में आधे स्थान विद्यमान तरीके और शेष आधे रिक्त स्थान परीक्षा के आधार पर भरे जाएं। ऐसी परीक्षाओं में द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को ही बैठने की अनुमति हो, यदि उन्होंने सेवाकाल पूर्ण कर लिया हो और वार्षिक गुप्त रिपोर्ट में नकारात्मक टिप्पणी न की गई हो।
- **अनुशासन-** दुष्कर्म या अवज्ञा, उपेक्षा, धमकी अथवा हिंसा के प्रयोग, अनुचित आचार जैसे अनुशासन संबंधी मामलों के संक्षिप्त निपटारे के लिए नियमों में आवश्यक रूप से प्रावधान किया जाना चाहिए।
- **न्यायालय पीठ-** प्रशासनिक सुधार आयोग के अनुसार प्रशासनिक सेवा न्यायालय की स्थापना किया जाना चाहिए जिसमें ऐसे मामलों को, जिसमें सेवा से बर्खास्तगी और बड़े पदों से हटा कर छोटे पदों पर नियुक्ति जैसे बड़े दंड दिए गए हो, अंतिम अपीलीय न्यायालय काम करेंगे ।
- **स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति-** सेवाकाल के 15 वर्ष पूर्ण कर लिए अधिकारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की अनुमति दी जानी चाहिए और उन्हें अनुपात अनुसार पेंशन और आनुतोषिक या अनुग्रह राशि भी दिया जाना चाहिए।
- **प्रोत्साहन-** विशेष कार्य योजना को निर्धारित सीमा में पूरा करने के लिए अधिकारियों को शील्ड अथवा धनराशि देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । व्यक्तिगत मामलों में प्रशंसा पत्र भी दिए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन रिपोर्ट में महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई है जो नवीन कार्मिक नीति को नया रूप देने के संबंध में है और जिनका प्रभाव सार्वजनिक सेवाओं पर पड़ता है।

## 1.6 कार्मिक विभाग

लोक सेवकों के चयन, प्रशिक्षण, कार्मिक नीति आदि के संबंध में एक ऐसे निकाय की आवश्यकता होती है जो राजनीतिक और प्रशासनिक दबावों से मुक्त होकर उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। प्रजातांत्रिक और विकासशील देशों में इस कार्य को संपादित करने के लिए एक विशेष मंत्रालय या निकाय की स्थापना की जाती है। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के कार्मिक प्रकरणों को नियंत्रित, निर्देशित तथा समन्वित करने, केंद्र के कार्यालयों के विरुद्ध प्राप्त जन शिकायतों का निवारण करने तथा केंद्र सरकार से सेवानिवृत्त कार्मिकों के पेंशन संबंधी मामलों में कार्रवाई करने हेतु कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी। इससे पूर्व इस मंत्रालय से संबंधित कार्य कभी मंत्रिमंडल सचिवालय तो कभी गृह मंत्रालय या वित्त मंत्रालय के द्वारा संपन्न किए जाते रहे हैं। मार्च, 1954 में पॉल एच. एपेलबी की सिफारिशों में से एक पर अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में मंत्रिमंडल सचिवालय में संगठन एवं पद्धति (ओ.एंड एम.) प्रभाग बनाया गया था। मार्च, 1964 में गृह मंत्रालय के अधीन प्रशासनिक सुधार विभाग बनाया गया और संगठन एवं पद्धति (ओ एंड एम) प्रभाग का

कार्यभार मंत्रिमंडल सचिवालय से प्रशासनिक सुधार विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया। दिनांक 7 फरवरी, 1973 को प्रशासनिक सुधार से संबंधित कार्य को मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन दिनांक 1 अगस्त, 1970 को बनाए गए कार्मिक विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया और कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार के रूप में इसे पुनर्नामित किया गया । प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा सक्रियता और दायित्व को बढ़ावा देती है। यह विविध क्षेत्रों में नवीन नीतियों को अंगीकार करने पर भी विशेष बल देती है। कार्मिक विषयों का संचालन करने के लिए पुरानी व्यवस्था प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों पर आधारित नवीन कार्मिक समस्याओं के समाधान के लिए अपर्याप्त थी। इसलिए सरकार ने अगस्त 1970 में नए कार्मिक विभाग की स्थापना की प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल भारत सरकार की मशीनरी और इसकी कार्य प्रक्रिया पर बनाए गए देशमुखअध्ययन दल ने एक प्रभावशाली केंद्रीय कार्मिक एजेंसी को स्थापित करने का सुझाव दिया था। देशमुख अध्ययन दल के अनुसार भारत सरकार की मशीनरी के लिए आवश्यक सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण था। कार्मिक विभागों से तकनीकी और व्यवस्थापन संबंधी अनेक सेवाओं को अधिक अधिकारियों को स्थान दिए जाने की वकालत इस अध्ययन दल ने की थी ताकि इस अभिकरण के नेतृत्व को मजबूत किया जा सके।

कार्मिक विभाग का संगठनात्मक ढांचा कुछ इस प्रकार था-

- नीति एवं नियोजन कक्ष
- प्रशिक्षण कक्ष/विभाग
- अखिल भारतीय सेवा कक्ष/विभाग
- व्यवस्था/संस्थान कक्ष/विभाग
- सतर्कता कक्ष/विभाग
- व्यवस्था अधिकारी का कक्ष विभाग

नीति और नियोजन कक्ष/विभाग को छोड़कर सारे कक्ष/विभाग अपने सारे उत्तरदायित्व हेतु पहले गृह मंत्रालय की ही भागते थे। 1970 की अगस्त में अलग कर कार्मिक विभाग की स्थापना की गई थी। नीति एवं नियोजन कक्ष/विभाग के जिम्मे भारत सरकार के कार्मिक प्रशासन क्षेत्र में नीति और नियोजन संबंधी गतिविधियों को निर्धारित करने तथा उसको रूप देने का कार्यभार सौंपा गया। इस प्रकार यह एक प्रकार का परिपार्श्व नियोजन का आधार था जिसमें कार्मिक प्रबंध और सार्वजनिक कार्मिक प्रबंध के समग्र पहलुओं पर सभी प्रकार का कार्य करना था। नीति निर्धारण कक्ष को प्रशासन पर रिपोर्ट में दी गई प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करने का कार्यभार सौंपा गया। दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को भी संचालित करना इसका उत्तर दायित्व था। समय के अनुसार अन्वेषण पर बल इसकी गतिविधियों में समाप्त हो गया और सरकार के अन्य कक्षों के रूप में इसका प्रारंभ हो गया। प्रशिक्षण के क्षेत्र में प्रशिक्षण विभाग ने निस्संदेह अच्छी भूमिका निभाई किंतु इस विभाग को अनेक दैनिक कार्यों को अपने प्रमुख कार्यों को रूप में करना पड़ा। जिससे इसकी छवि भी धूमिल हुई दूसरे कक्ष और विभागों के पास कोई नवीनतम कार्य नहीं थे। वे नए कार्मिक विभाग में भी वही कार्य संपादित करते रहे जो गृह मंत्रालय में कर रहे थे।

कर्मचारियों की उपलब्धता के मामले में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्य केंद्रीय सेवाओं जैसे परंपरागत स्रोतों पर निर्भर करने की पुरानी नीति वर्तमान ही रही। इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं आया। संरचनात्मक रूप में भी वही कार्य शैली अपनाई जाती रही और समय के साथ नूतन प्रयोग और नूतन कार्य विधि इस संरचना में स्थान नहीं ले पाई। ब्रिटेन की तुलना में भारत में यह प्रयोग संतोषजनक और सफल नहीं माना गया। प्रारंभ में उत्साह ज्यादा दिन तक भारत में बना नहीं रहा और मंत्रिमंडल सचिव के प्रधानमंत्री के संपर्क होने का अवसर का लाभ भी नहीं उठाया जा सका।

अप्रैल, 1977 में कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग को मंत्रिमंडल सचिवालय से गृह मंत्रालय में स्थानांतरित किया गया। मार्च, 1985 में कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के रूप में पूर्ण मंत्रालय बना दिया गया। 10 दिसम्बर, 1985 को कार्मिक तथा प्रशिक्षण, प्रशासनिक सुधार, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय को तीन विभागों क्रमश: कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग और पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण विभाग सहित कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय के रूप में पुनर्नामित किया गया।

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय प्रधानमंत्री के अधीन कार्य करता है तथा प्रधानमंत्री की सहायता हेतु राज्य मंत्री की नियुक्ति भी की जाती रही है। नौकरशाही के शीर्ष पर इस मंत्रालय का शीर्ष अधिकारी कार्मिक सचिव कहलाता है। कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय तीन विभागों में विभक्त है- कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग।

कार्मिक लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय कार्मिक मामलों के लिए विशेषकर भर्ती प्रशिक्षण कर्मचारियों से संबंधित कल्याण योजनाएं, प्रशासनिक सुधार, पेंशन आदि कामकाज से संबंधित है या विभाग भर्ती नियमों , पदोन्नति तथा वरिष्ठता निर्धारण, प्रतिनियुक्ति, सेवा शर्तों को अनुशासित करने वाले नियम एवं विनियम के लिए उत्तरदायी है। उच्च लोक सेवा की पदों पर कार्मिकों की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से की जाती है जबकि समूह- ग और सेना के राजपत्रित कर्मचारियों की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग के माध्यम से की जाती है । यह विभाग अखिल भारतीय सेवा संवर्गों भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा तथा तीनों सचिवालय सेवाओं- केंद्रीय सचिवालय सेवा, केंद्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा, केंद्रीय सचिवालय लिपिक सेवा के संबंध में प्रबंधन हेतु उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त यह विभाग गृह मंत्रालय तथा विदेश मंत्रालय के परामर्श से अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में नियम और भी नियमों का निर्माण करता है। यह उसमें समय- समय पर संशोधन भी करने का अधिकार रखता है और विभाग सेवा के संबंधों की समीक्षा हेतु भी जिम्मेदार है।

कार्मिक विभाग वरिष्ठ स्तर पर नियुक्तियां तथा भारत सरकार के कार्मिक नीतियों के संबंध में कार्य करता है। भारत सरकार के वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियां के प्रस्ताव पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है। इनके संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है। इनमें केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में नियुक्तियां, मंत्रालयों, विभागों में संयुक्त सचिवों और उप सचिवों के पदों पर केंद्रीय स्टाफिंग पैटर्न की नियुक्तियां शामिल होती है। इसके अतिरिक्त पदोन्नति द्वारा की जाने वाली सभी नियुक्तियों के मामले के संबंध में मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति का नियंत्रण होता है पर विभाग द्वारा कार्रवाई की जाती है।

कार्मिक विभाग सरकारी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने हेतु नोडल विभाग है। कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का प्रशिक्षण स्कंध प्रशिक्षण के क्षेत्रों की पहचान कर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार कर शिक्षकों और प्रशिक्षण क्षमताओं का तथा प्रशिक्षण में नई नीतियों का विकास करता है। लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख शिक्षण संस्थान हैं । संस्थान केंद्र सरकार के सभी अधिकारियों को समय-समय पर मानव संसाधन विकास की अपेक्षाओं को पूर्ण करते हैं। इसके अतिरिक्त विभाग भारतीय लोक प्रशासन संस्थान को लोक प्रशासन से जुड़े मुद्दों पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए सहायता प्रदान करता है। इसके साथ ही विभागीय नीति बनाने के लिए और क्रियान्वित करने के लिए कार्य करता है।

1. **कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग-** वैचारिक दृष्टि से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की भूमिका को दो भागों में बांटा जा सकता है। यह विभाग अपनी महती नोडल भूमिका में नीति-निरूपक तथा सरकार के सजग प्रहरी के रूप में कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि यथानिर्धारित, कतिपय स्वीरकृत

मानकों और मानदण्डतों का सभी मंत्रालयों/विभागों द्वारा भर्ती, सेवा-शर्तों के विनियमन एवं कार्मिकों की प्रतिनियुक्ति के साथ-साथ अन्य/सम्बद्ध मामलों में पालन किया जाए। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग केन्द्रीकय सरकार के सभी संगठनों को कार्मिक-प्रबंध के मुद्दों पर सलाह भी देता है। यह विभाग, भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) तथा केन्द्री य सचिवालय सेवा (सीसीएस) का संवर्ग-नियंत्रक प्राधिकारी होने के नाते सीधे रूप से उत्तसरदायी है। यह विभाग, केन्द्री य स्टारफिंग योजना का भी संचालन करता है, जिसके अंतर्गत अखिल भारतीय सेवाओं तथा समूह 'क' केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारियों में से उपर्युक्त अधिकारियों का चयन किया जाता है तथा उन्हें प्रतिनियुक्ति के आधार पर कार्यकाल विशेष हेतु उप सचिव/निदेशक तथा संयुक्ते सचिव के स्त्र के पदों पर तैनात किया जाता है। यह विभाग सार्वजनिक क्षेत्र के विभिन्नत उपक्रमों/उद्यमों, निगमों, बैंकों तथा वित्तीय संस्थाजनों के अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, पूर्णकालिक कार्यात्मकक निदेशकों/प्रबंध मण्डमल के सदस्यों के पदों पर नियुक्ति के मामलों को भी देखता है।

- **भर्ती अभिकरण-** संघ लोक सेवा आयोग और कर्मचारी चयन आयोग ऐसे दो संगठन हैं जिनके माध्यिम से यह विभाग केन्द्रआ सरकार के कामकाज के लिए कार्मिकों की भर्ती सुनिश्चित करता है। संघ लोक सेवा आयोग, संविधान के प्रावधान के अंतर्गत गठित हुआ है तथा इसकी जिम्मेदारी, अखिल भारतीय सेवाओं में भर्ती के साथ-साथ, संघ सरकार के अधीन उच्चमतर सिविल सेवाओं तथा सिविल पदों पर नियुक्ति हेतु परीक्षाएं संचालित करने की है। भर्ती की पद्धतियों, एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नातियां तथा स्थानांतरण किए जाने में अपनाए जाने वाले सिद्धांतों तथा अनुशासनिक मामलों से जुड़े सभी मसलों में आयोग से परामर्श किए जाने के अनिवार्य प्रावधान हैं। कर्मचारी चयन आयोग की जिम्मेदारी, सहायकों, आशुलिपिकों इत्याकदि अधीनस्थन कर्मचारियों की भर्ती करने की है।
- **प्रशिक्षण प्रभाग-** प्रशिक्षण प्रभाग राष्ट्री य प्रशिक्षण नीति, जो कि अप्रैल, 1996 में अंगीकार की गई थी, के कार्यान्वयन का समन्वटय करने का कार्य देखता है। यह विभाग केन्द्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों के लिए विभिन्न् श्रेणियों के कई विषयों पर कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी करता है। प्रशिक्षण प्रभाग राज्य सरकार के विभिन्न स्तर के कर्मचारियों के लिए विशेष पैकेज के अंतर्गत क्षमता निर्माण पहलों को विकसित करता है और इनका आयोजन करता है।

  इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियंत्रण में दो प्रमुख प्रशिक्षण संस्थाएं, लाल बहादुर शास्त्रीत राष्ट्री य प्रशासन अकादमी, मसूरी एवं सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थातन, नई दिल्ली है। पहली संस्था, मसूरी में स्थित अकादमी, मुख्यरत: भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अन्यी अखिल भारतीय सेवाओं और केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती किए गए अधिकारियों को प्रवेशकालिक प्रशिक्षण सुलभ करवाने के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों के लिए जिम्मेदार है। सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान, केन्द्रीय सचिवालय सेवा के सदस्यों को प्रवेशकालीन प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण मुहैया करवाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली जो कि एक स्वायत्तर संगठन है, को प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा अंशकालिक वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

2. **भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियां-** भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों के सभी प्रस्तावों की, जिनके सम्बन्ध में मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति का अनुमोदन लिया जाना अपेक्षित होता है, जांच-पड़ताल और उन पर यथोचित कार्रवाई, मंत्रिमण्डनल की नियुक्ति समिति के सचिव के रूप में कार्यरत स्थानपना अधिकारी के माध्यंम से की जाती है। इनमें, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र

के उपक्रमों में बोर्ड स्तर की नियुक्तियां तथा मंत्रालयों/विभागों में संयुक्तव सचिवों, निदेशकों और सचिवों की नियुक्तियां शामिल होती हैं।

- **प्रशासनिक सतर्कता-** कार्मिक प्रबंध का एक आवश्यक घटक है, नौकरशाही की व्यावसायिक आचार संहिता और मानकों को बनाए रखना। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, लोक सेवाओं की सत्यनिष्ठा बनाए रखने और भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए सरकार की नीति का निर्धारण करता है और उस क्षेत्र में मंत्रालयों/विभागों के विभिन्न क्रियाकलापों का समन्वय करता है। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों की यह जिम्मेवारी है कि वे निवारक उपाय करके कर्मचारियों के बीच अनुशासन और सत्य निष्ठा बनाए रखे और उनके कार्य के कार्यात्मयक संचालनात्मंक क्षेत्र में भ्रष्टाचार का उन्मूलन करें।
- **केंद्रीय सतर्कता आयोग-** केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा सभी सतर्कता मामलों पर सलाह प्रदान की जाती है। इसकी उन सभी मामलों में अधिकारिता और शक्तियां हैं, जिनमें केन्द्रीय सरकार की कार्यकारी शक्तियां हैं। आयोग को संघ लोक सेवा आयोग की तरह स्वतंत्रता और स्वारयत्ता प्राप्त है। आयोग का कार्यालय सतर्कता भवन, आई.एम.ए. कॉलोनी, नई दिल्ली में है।
- **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो-** केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो देश का अग्रिम अन्वेषण अभिकरण है और भष्टाचार की बढ़ती चुनौती को नियंत्रित करने और बैंकिंग, गैर-बैंकिंग तथा आर्थिक और अन्य परम्परागत अपराधों की एक बड़ी संख्या का अन्वेषण करने के लिए राष्ट्र प्रहरी है। इसके कार्यों में जुड़े नए कार्य हैं- आतंकवादी अपराधों और जानबूझकर किए गए सम्पत्ति-विध्वंस अथवा कला विध्वंस के अपराधों का अन्वेषण। राज्य सरकारों, उच्च न्यायालय तथा उच्चणतम न्यायालय की सहमति से इस अभिकरण को मामले भेजे जाते हैं और इस सामान्य धारणा, कि केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो अधिक सच्ची होती है, के कारण केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जांच करवाए जाने की मांग बढ़ती जा रही है।
- **संयुक्त परामर्शदायी तंत्र-** ऐसे सेवा मामले जिनका प्रशासन और सरकारी कर्मचारियों के सामान्य हितों से सरोकार है, के सम्बान्ध में केन्द्र् सरकार और इसके कर्मचारियों के बीच संयुक्त, परामर्श के लिए एक सुसंरचित तंत्र है। यह त्रि-स्तरीय तंत्र है जिसमें राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय कार्यालय परिषद् और श्रेत्रीय/कार्यालय परिषद् शामिल हैं। कर्मचारियों के हितों अथवा इसके विशिष्टप समूहों के हितों सम्बन्धी सेवा मामलों पर इस तंत्र द्वारा विचार किया जाता है।
- **केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण-** कार्मिक प्रबंधन को नियंत्रित करने वाले नियमों तथा विनियमों की विस्तृत व्यवस्था के बावजूद भी कुछ सरकारी कर्मचारी कभी-कभी सरकार के निर्णयों से व्यवथित हो सकते हैं। इन मामलों का निपटान करने में न्या यालयों को कई वर्ष लग जाते थे और मुकद्दमेबाजी बहुत महंगी थी। सरकार के निर्णयों से व्ययथित कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय मुहैया करवाने के प्रयोजन से, सरकार ने 1985 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण स्थापित किया था जो अब सेवा से सम्बन्धित ऐसे सभी मामलों पर विचार करता है जिन पर पहले उच्च न्यायालयों सहित उनके स्तर तक के न्यायालयों द्वारा कार्रवाई की जाती थी। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की दिल्ली में स्थित प्रधान न्यायपीठ सहित, अब इसकी 17 नियमित न्यायपीठें देश के विभिन्न भागों में कार्य कर रही हैं।
- **कर्मचारी कल्याण-** इस तथ्य के आलोक में कि कर्मचारियों के कामकाज की स्थिति तथा उनके और उनके परिवारों की रहन-सहन की स्थितियों में सुधार से उनकी कार्य कुशलता और उनका

मनोबल बढ़ता है यह विभाग विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों को सहायता प्रदान करता है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवारों के कल्याण हेतु स्थापित चार पंजीकृत समितियों के सम्बन्ध में नोडल अभिकरण (एजेंसी) है। ये समितियां हैं- केन्द्रीय सिविल सेवा सांस्कृतिक और खेल-कूद बोर्ड, गृह-कल्याण-केन्द्र, केन्द्रीय भण्डार और सिविल सेवा अधिकारी संस्थान हैं। ये चारों समितियां दिल्ली में अवस्थित हैं।

- **लोक उद्यम चयन बोर्ड-** इस मंत्रालय के तीन विभागों के अतिरिक्त, लोक उद्यम चयन बोर्ड, अगस्त 1986 से कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के हिस्से के रूप में कार्य कर रहा है। लोक उद्यम चयन बोर्ड, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में उच्चम प्रबंधकीय पदों के कार्मिकों के चयन और तैनाती का काम देखने वाला विशेषज्ञ निकाय है। बोर्ड का मूल रूप से 1974 में गठन किया गया था और इस उद्योग मंत्रालय (लोक उद्यम ब्यूरो) के प्रशासनिक नियंत्रण में रखा गया था। 1986 में बोर्ड का प्रशासनिक नियंत्रण, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग को अंतरित कर दिया गया।
- **केंद्रीय सूचना आयोग-** सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा-12 के अनुक्रम में केन्द्रीय सूचना आयोग का गठन केन्द्र सरकार द्वारा एक राजपत्र अधिसूचना द्वारा किया गया। आयोग में एक मुख्य सूचना आयुक्त और अधिकतम 10 सूचना आयुक्तक हैं, जिनकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

## 1.7 नवीन नीति परिदृश्य

कार्मिक नीति एक व्यापक गतिविधि है जिसके विभिन्न आयाम स्पष्ट होते हैं। किसी भी व्यवस्था में भर्ती या चयन से पूर्व ही कार्मिक प्रबंध का कार्य प्रारंभ हो जाता है। व्यवस्था की समस्त नियुक्ति नीति स्वयं भर्ती की प्रक्रिया पर प्रभाव डालती है। भर्ती के विविध पहलुओं का आकलन, पदोन्नति का आधार आदि ऐसे विषय हैं, जिनका निर्णय प्रारंभ में ही ले लिया जाता है। सीधी भर्ती का अनुपात, आयु ,अनुभव, पदोन्नति का आधार और अन्य नीति संबंधी मामले में प्रबंधकों को पूर्व में ही निर्णय लेने होते हैं। संवर्ग का दीर्घकालीन नियोजन शुरू में ही करने होते हैं और अधिकांश संस्थानों में इस हितकर कार्मिक सिद्धांत का पालन कराने का प्रयास किया भी जाता है। भर्ती और चयन प्रक्रिया के रीति विज्ञान संबंधी प्रश्न इस भर्ती योजनाओं की रूपरेखा के अनुसार होते हैं। रोजगार/ नियुक्ति नीति को प्रशिक्षण और विकास नीति, पदोन्नति नीति ,उत्साह बढ़ाने की नीति आदि से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ-साथ कर्मचारी कल्याण नीतियां, विवाद प्रबंध संबंधी नीति का निर्धारण भी समय के अनुसार होता है। एक व्यापक कार्मिक नीति मौलिक निर्माण स्तंभ के रूप में कार्य करते हैं परंतु अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें लापरवाही और तदर्थता अत्यधिक है। कार्मिक प्रगति और कार्मिक नीति के संदर्भ में मानवीय पहलुओं की हमेशा से उपेक्षा होती रही है और कार्यकुशलता पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता। भारत में सार्वजनिक संस्थान के कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने की बचनबद्धता का भाव दिखाई नहीं देता और न ही भविष्य कालिक हितों की ओर अपने ही लोगों के विकास की कोई चिंता है। बहुत सारे संस्थान मुख्य अधिकार के बिना काम कर रहे हैं। अधिकारियों और कर्मचारियों पर इससे प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लक्ष्य निर्धारित करने के बाद इनकी प्राप्ति प्रायः नहीं हो पाती और लक्ष्य प्राप्त न करने की स्थिति में अपमान भी नहीं समझा जाता है। इन सब का कारण यह है कि लक्ष्यों के बारे में सचेत न होना और परिणाम के प्रति हमारी कार्मिक नीति के ढांचे को मूल आधार नहीं माना जाना है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की स्थापना किस वर्ष की गई थी?

2. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?
3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग के पहले अध्यक्ष कौन थे?
4. सचिवालय प्रशिक्षण और प्रबंध संस्थान किस शहर में स्थापित किया गया है?
5. देश का अग्रिम अन्वेरषण अभिकरण क्या है?

## 1.8 सारांश

इस इकाई में लोकनीति की संकल्पना, भारत में कार्मिक प्रणाली के लिए अब तक किए गए प्रयासों और कार्मिक प्रणाली की समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। कार्मिक प्रबंधन लगातार उपेक्षा का शिकार हुआ है और इसके प्रति व्यवसायिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण विविध चुनौतियां भी विगत कुछ वर्षों में उभरी हैं। सार्वजनिक कर्मचारियों के प्रति उपेक्षा और विचार शून्यता अवहेलना लगातार प्रकाश में आती रही है। मानव संसाधन एक ऐसी संपत्ति है, जिसका मूल्य समय के साथ निरंतर बढ़ता जाता है और किसी संगठन की सफलता इस तत्व पर ही निर्भर करती है। अब तक के कार्मिक प्रणाली ने मानव तत्व को अधिक महत्व नहीं दिया है जो इस दिशा में बहुत बड़ी विसंगति को दर्शाता है। नीति निर्धारकों में सांप्रदायिकता, विभाजक प्रवृतियां, वंश परंपरा आदि भरे होने की शिकायतें लगातार मिलती रही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि मानव संसाधन प्रबंध नीति में संपूर्ण व्यवस्थात्मक एकता, वैज्ञानिक बुद्धिवाद तथा तथा भविष्यवाद जैसे गुण दर्शित होने चाहिए। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि नीति निर्धारक ऐसे कार्य करते हैं जिसका नीति निर्धारण से कोई संबंध नहीं होता। प्रोत्साहन नीति के अभाव में उपलब्धि, प्रेरणा, गतिशीलता या भविष्य के प्रति आशा आदि संगठन से विलुप्त होते जा रहे हैं। पुराने नियम और विनियम आज भी प्रचलित हैं और प्रणाली नकारात्मक विशेषताओं से जुड़ गई है। आवश्यकता एक उचित और उपयुक्त कार्मिक प्रणाली अपनाने की है। इस दिशा में प्रयास तात्कालिक तौर पर होने चाहिए ताकि संगठन की खामियों का यथाशीघ्र निवारण किया जा सके।

लोक सेवकों की कार्मिक नीति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गए हैं, जिसके लिए विशेष प्रयास और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है।

## 1.9 शब्दावली

नीति- सोच समझकर बनाये गये सिद्धान्तों की प्रणाली है जो उचित निर्णय लेने और सम्यक परिणाम पाने में मदद करती।

मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था।

विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग।

उपबंध- प्रावधान।

## 1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** 1985 में, **2.** मसूरी, **3.** के. हनुमंथप्पा, **4.** नई दिल्ली **5.** केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो

## 1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
2. माहेश्वरी, श्रीराम, 2010, भारतीय प्रशासन, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली।
3. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।

4. घोष, पी.,1969, पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन इन इंडिया, सुधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. गोयल, एस. एल., 1964, पब्लिक पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रैशन, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

## 1.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सैम्पसन, चार्ल्स, 1983, वैल्यूस, ब्यूरोक्रैसी एण्ड पब्लिक, यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ अमेरिका, लंदन।
2. कटारिया, सुरेन्द्र, 1997, कार्मिक प्रशासन, आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स , जयपुर।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

## 1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नीति निर्धारण के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. आधुनिक समय में कार्मिक प्रशासन के दायित्वों का मूल्यांकन कीजिए।
3. केन्द्रीय कार्मिक मंत्रालय की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. कार्मिक क्षेत्र में निर्धारित नवीन नीतियों का मूल्यांकन कीजिए।

## इकाई- 2 भर्ती (सेवाओं में आरक्षण)

**इकाई की संरचना**

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं
2.3 भर्ती का महत्व
2.4 भर्ती की प्रक्रिया
2.5 भर्ती के प्रकार
2.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ
2.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ
2.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्ते
2.9 भारत में भर्ती की पद्धति
2.10 आरक्षण
2.11 संवैधानिक सुरक्षा
2.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण
2.13 सारांश
2.14 शब्दावली
2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

### 2.0 प्रस्तावना

संपूर्ण कार्मिक तंत्र के ढांचे की आधारशिला भर्ती है। प्रशासनिक संरचना में भर्ती और चयन की प्रक्रिया का विशेष महत्व है। इसी से प्रशासन की उपयोगिता एवं समाज तथा प्रशासनिक तंत्र के संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती और चयन की प्रक्रिया शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है। प्रशासनिक संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसमें कार्य करने वाले कार्मिकों में वांछित योग्यता हो तथा उनकी योग्यता का परीक्षण उचित प्रकार की परीक्षा, साक्षात्कार आदि के द्वारा निर्धारित की जाए। योग्यता तथा निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था से ही कर्मठ व्यक्ति संगठन में सम्मिलित हो सकते हैं। भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों के विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छंटनी, परीक्षा आयोजन, साक्षात्कार आदि आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करवाना कार्मिक प्रशासन का प्रमुख कार्य है। चयन प्रक्रिया का प्रारंभ भर्ती प्रक्रिया से होता है। भर्ती प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिकों की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित करता है। भर्ती इस प्रकार मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के भर्ती हेतु व्यापक प्रावधान किए गए हैं।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को भर्ती के अर्थ, महत्व, भर्ती के उद्देश्य, भर्ती के प्रकार तथा भर्ती की पद्धतियाँ एवं तकनीक से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के भर्ती की अवधारणा, भर्ती की भारतीय प्रणाली, भारत मे भर्ती एजेंसियां और संस्थाएं, भर्ती की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन में भर्ती के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य को समझ सकेंगे।
- भर्ती की प्रक्रिया के विभिन्न चरण तथा भर्ती की विभिन्न पद्धतियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- भर्ती की अर्हता पद्धति के उद्भव एवं महत्व का वर्णन तथा उपयुक्तता की जांच कर सकेंगे।
- भारत में प्रचलित भर्ती प्रणाली का विश्लेषण कर सकेंगे। तथा
- भारत में लोक सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण से संबंधित आवश्यकताओं और प्रावधानों को समझ सकेंगे।

## 2.2 भर्ती का अर्थ एवं विशेषताएं

किसी संगठन में भर्ती या चयन कार्मिक प्रबंध का आधारभूत कार्य है। भर्ती की दूषित नीति के कारण प्रशासन में अस्थाई दुर्बलता जाती है और प्रशासन सुस्त और अयोग्य व्यक्तियों के लिए स्वर्ग बन जाता है। योग्य कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है।

नियुक्ति एवं अधिप्राप्ति एक व्यापक प्रक्रिया है। भर्ती एवं चयन इसके आवश्यक अंग हैं। भर्ती नियुक्ति का प्रथम चरण है। भर्ती अभ्यर्थियों की खोज, आवश्यकता और स्रोतों के निर्धारण तक सीमित है जबकि चयन इसके बाद की प्रक्रिया है। किसी संगठन को योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में भर्ती करना आवश्यक होता है। उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विविध क्रियाकलाप द्वारा कर्मचारियों की पूर्ति के इस कार्य को भर्ती द्वारा संपन्न किया जाता है। संगठन में भर्ती और चयन संबंधी कार्य कार्मिक प्रशासन का बुनियादी कार्य है। भर्ती, प्रत्याशित कर्मचारियों की खोज एवं उन्हें संगठन में आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है। भर्ती करते समय संगठनों को श्रम-बाजार की प्रकृति तथा मानव शक्ति के स्रोत को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। नियुक्ति के लिए आवेदनकर्ताओं की संख्या इस बात पर आश्रित रहती है कि कार्य प्रकृति क्या है एवं रिक्त पदों की संख्या कितनी है। विद्यमान आर्थिक स्थितियां, कौशल का उपलब्ध होना, भर्ती करने वाली कम्पनी की साख आदि अन्य तत्व हैं जो भर्ती को प्रभावित करते हैं।

भर्ती का सरल अर्थ हैं- रिक्त पद पर उपयुक्त कार्मिक की नियुक्ति। भर्ती प्रक्रिया में सम्मिलित गतिविधियों के आधार पर इसके संकुचित और व्यापक दो अर्थ होते हैं- संकुचित अर्थों में भर्ती, रिक्त पद पर योग्य उम्मीदवार की नियुक्ति तक सीमित है। व्यापक अर्थों में भर्ती रिक्त पद के लिए योग्य उम्मीदवार के चयन से लेकर उस पद पर उसकी सामर्थ्यपूर्ण स्थापना तक की कार्यवाहियों से संबंधित हैं। भर्ती को विविध विद्वानों ने परिभाषित किया है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

एल.डी.व्हाइट के अनुसार, ''रिक्त पदों के लिए आयोजित परीक्षाओं हेतु योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है।''

जे. डी. किंग्सले के शब्दों में, ''भर्ती का अर्थ है, लोक सेवाओं के लिए प्रार्थियों को प्रतियोगात्मक रूप से आकर्षित करना। यह व्यापक प्रक्रिया का एक अंग हैं। इसमें परीक्षा और प्रमाणन प्रक्रियाएं भी शामिल हैं।''

एडविन फिलप्पो के अनुसार, ''भर्ती सम्भावित कर्मचारियों की खोज करने तथा उन्हें संगठन कार्यों के लिए आवेदन करने के लिए उत्प्रेरित करने की प्रक्रिया है।''

क्लिंगर के अनुसार, ''भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है।''
प्रो. ब्यूल के अनुसार, ''किसी विक्रय पद के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध प्रार्थियों की सक्रिय खोज करना ही भर्ती है।''
एम.पी.शर्मा के शब्दों में, ''भर्ती का सीधा अर्थ है, योग्य तथा उपयुक्त व्यक्ति की रिक्त स्थान पर नियुक्ति।''
उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर्मचारियों की भर्ती वह क्रिया है जिसके द्वारा संस्था में विभिन्न रिक्त पदों के लिए व्यक्तियों की खोज की जाती है तथा उन्हें रिक्त पदों तथा उनके लिए आवश्यक योग्यता के संबंध में जानकारी देकर उन्हें संस्था में आवेदन करने के लिए प्रेरित किया जाता है, ताकि संगठन के लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके। किसी संगठन में भर्ती तथा चयन कर्मचारी संबंधी मूलभूत कार्य है। भर्ती द्वारा ही लोक सेवाओं का स्तर एवं योग्यता निश्चित होती है और इसी से शासन की उपयोगिता और समाज और शासन तंत्र के बीच संबंध निर्धारित होते हैं। भर्ती संपूर्ण कार्मिक प्रशासन के ढांचे की आधारशिला है। इस प्रकार भर्ती चयन की विस्तृत प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है, जो परीक्षा, साक्षात्कार एवं प्रमाणीकरण इत्यादि की प्रक्रिया को समाहित करता है।
भर्ती योग्य आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है। भर्ती की विशेषताएं निम्न हैं-

1. भर्ती प्रशासन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. भर्ती योग्य व्यक्तियों के खोज की प्रक्रिया है।
3. भर्ती एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसमें चयन अनुपात को बढ़ाने का उद्देश्य रहता है।
4. भर्ती वर्तमान तथा भावी दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जा सकती है।
5. इसमें व्यक्तियों को आवेदन करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जाता है।
6. इसमें भर्ती के विभिन्न स्त्रोतों का निर्धारण करके उन्हें बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।
7. भर्ती के द्वारा प्रत्येक कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में आवेदकों की पूर्ति उत्पन्न होनी चाहिये ताकि नियोक्ता को चयन की सुविधा हो। ।
8. भर्ती एवं चयन परस्पर सम्बद्ध हैं, यद्यपि दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है।

भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम चीन में अनुभव किया गया था और योग्यता के सिद्धांत पर आधारित भर्ती को अपनाने की ठोस नीति को मान्यता भी चीन में ही प्रारंभ की गई। आधुनिक समय में प्रशा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया था। भारत में योग्यता का सिद्धांत 1853 से प्रारंभ हुआ जबकि ब्रिटेन में इसे 1857 में स्वीकार किया गया है। अमेरिका में योग्यता सिद्धांत 1883 में आरंभ हुआ जबकि फ्रांस में प्रतियोगिता परीक्षाओं की शुरुआत 1847 से हुई थी। भर्ती के योग्यता सिद्धांत ने लूट सिद्धांत का स्थान लिया है लेकिन यह परिवर्तन धीरे-धीरे ही हुआ है। संयुक्त राज्य अमेरिका में लूट-खसोट की प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। राष्ट्रपति गारफ़ील्ड की हत्या के बाद इसमें परिवर्तन किया गया और 1883 में पहली बार प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से भर्ती का प्रावधान किया गया ।

## 2.3 भर्ती का महत्व

प्रशासनिक व्यवस्था में भर्ती सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। किसी संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या में पूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य कर सकें। लोक सेवाओं के गुण और कार्यकुशलता भर्ती और भर्ती संबंधी नीतियों पर निर्भर करते हैं। भर्ती सम्भावित कर्मचारियों के स्त्रोतों का निर्धारण करने, व्यक्तियों को कार्य अवसरों के बारे में सूचित करने तथा उन प्रार्थियों को संस्था में आकर्षित करने की प्रक्रिया है, जो कार्य को निष्पादित करने की वांछित योग्यता रखते हैं।
कर्मचारियों की पूर्ति के कार्य को भर्ती तथा चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। लोक सेवकों की योग्यता और नैतिक स्तर का निर्धारण भर्ती प्रक्रिया के द्वारा ही संभव है। समाज के प्रति सरकार और प्रशासन की प्रासंगिकता और उपयोगिता एक स्वस्थ एवं निष्पक्ष भर्ती प्रणाली पर ही निर्भर करती है। भर्ती पद्धति स्वस्थ एवं निष्पक्ष तथा

इसका क्रियान्वयन कुशलतापूर्वक एवं बिना भेदभाव के होना चाहिए। भर्ती कुशल व्यक्तियों के सिविल सेवा में प्रवेश हेतु प्रवेश द्वार खोलने का कार्य करता है। यह एक सुदृढ़ लोक सेवा का आधार स्तंभ भी है। स्टॉल के अनुसार भर्ती संपूर्ण सार्वजनिक कार्मिक रचना की आधारशिला है। प्रशासनिक आवश्यकता के लिए सर्वोत्तम, कुशाग्र बुद्धि और अत्यधिक कार्य दक्ष व्यक्तियों की पूर्ति भर्ती प्रणाली द्वारा ही संभव है। आधुनिक समय में लोकसेवा सबसे महत्वपूर्ण जीवन वृति सेवा है और जीवन वृति सेवा का कोई भी घटक भर्ती नीति से बढ़कर महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार भर्ती कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्य कुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों की भरने की संपूर्ण प्रक्रिया भर्ती से विस्तृत मालूम पड़ती है। फिर भी भर्ती को सामान्यतया उस प्रक्रिया के रूप में समझा जाता है जिसके द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए लोगों की सेवा में नियुक्ति की जाती है। प्रत्येक संगठन योग्य कार्मिको की भर्ती एवं चयन करके अपनी सफलता को सुनिश्चित कर सकता है। भर्ती एवं चयन मानव शक्ति नियोजन का एक महत्वपूर्ण अंग तथा मानव संसाधन विकास का एक आवश्यक कार्य है। प्रशासन में अनेक कारणों से मानव संसाधनों में परिवर्तन होते रहते हैं। नवीन तकनीकों में परिवर्तनों के कारण भी नये कर्मचारियों की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है। भर्ती एवं चयन संगठन में नयी मानव शक्ति जोड़ने की प्रक्रिया है तथा यह कर्मचारी नियोजन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

## 2.4 भर्ती की प्रक्रिया

भर्ती सभी देशों के प्रशासनिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अकुशल, अयोग्य और अनुपयोगी व्यक्तियों के सेवा में भर्ती हो जाने के पश्चात सबसे खर्चीला प्रशासन भी देश हित में कुछ नहीं कर सकता। शासन में सुयोग्य और कुशल व्यक्तियों का चयन उचित भर्ती व्यवस्था द्वारा ही संभव है। किसी भी देश की भर्ती पद्धति विशेषकर उस देश की संवैधानिक व्यवस्था तथा सामाजिक राजनीतिक नीतियों पर निर्भर करती है। भर्ती की पुरानी विधियां अब देश, काल, परिस्थिति के अनुसार पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गई हैं और लोक सेवा अधिकारी की भर्ती के लिए सभी देशों ने अर्हता पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

भर्ती प्रक्रिया रिक्त पदों के विज्ञापन या उद्-घोषणा के साथ ही शुरू हो जाती हैं। उच्चतर पदों पर लोक सेवा आयोग या विभिन्न अधीनस्थ पदों पर अन्य एजेन्सी द्वारा भर्ती विज्ञापन प्रकाशित करने के पूर्व संबंधित विभागों से रिक्त पदों की जानकारी प्राप्त की जाती हैं। अत: लोक सेवा में भर्ती का प्रथम चरण यही से शुरू होता है। विज्ञापन जारी होने के पश्चात अगला चरण आवेदन पत्रों की जांच होता है। उपयुक्त आवेदकों को परीक्षा या साक्षात्कार के लिए बुलावा भेजा जाता हैं। यदि परीक्षा में आवेदक की संख्या ज्यादा हुई तो उसके बाद रिक्त पदों के लिए निश्चित अनुपात (सामान्यतया 1 पद के विरूद्ध 3 उम्मीदवार) में साक्षात्कार हेतु प्रत्यशियों को आमंत्रित किया जाता है। योग्यता क्रम के अंकों के आधार पर प्रत्याशियों को चयनित घोषित किया जाता है। नियुक्ति देने के पूर्व चयनितों का चरित्र-सत्यापन और चिकित्सकीय परीक्षण भी करवाया जाता है। अन्तत: उन्हें पद पर स्थापित कर दिया जाता हैं। यद्यपि अधिकांश पदों पर व्यवहारिक पद स्थापना के पूर्व उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता हैं।

लोक सेवा के अधिकारी राज्य के पूर्णकालिक तथा पेशेवर कर्मचारी होते हैं तथा उनकी नियुक्ति एक विशेष प्रक्रिया द्वारा की जाती है, जिसे भर्ती की संज्ञा दी जाती है। भर्ती की प्रक्रिया विविध चरणों में संपन्न होती है। प्रमुख चरण निम्न हैं-

1. **पदों और नौकरियों की आवश्यकता-** सरकारी विभागों तथा अन्य संस्थाओं से अध्याचन के पश्चात यह निर्धारित होता है कि कितने कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी है अथवा प्रोन्नत किया जाना है। भर्ती

प्रक्रिया आरंभ करने से पहले यह सारी सूचनाएं भर्ती अधिकारी/अभिकरण द्वारा एकत्र की जाती है। तत्पश्चात रिक्त पदों का वर्गीकरण कर यह सुनिश्चित किया जाता है कि कितने पदों के लिए भर्ती प्रक्रिया शुरू करनी है। उसी समय रिक्त पदों के लिए अपेक्षित अर्हताएं , अनुभव इत्यादि के निर्धारण पर भी विचार किया जाता है।

2. **भर्ती नीति की शर्तों, अर्हता एवं अन्य पहलुओं का निर्धारण-** पदों एवं आवश्यकता निर्धारण के पश्चात दूसरा चरण अपेक्षित योग्यता और अन्य शर्तों का निर्धारण से संबंधित हैं, जिन्हें समाचार पत्रों, बुलेटिन, एवं अन्य माध्यमों के द्वारा सूचित किया जाता है। न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता, पूर्व अनुभव, उम्र सीमा, निवास, राष्ट्रीयता, शारीरिक उपयुक्तता इत्यादि के संबंध में निर्णय इसी दौरान लिया जाता है तथा अंतिम निर्णय लेने से पूर्व भर्ती संबंधी संवैधानिक व्यवस्था और सरकार की नीतियों पर भी विचार कर लिया जाता है।
3. **आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार करना-** अगले चरण के रूप में उपयुक्त आवेदन पत्र की रूपरेखा तैयार करना आवश्यक हो जाता है, जिन्हें अभ्यर्थियों को विभिन्न रिक्त पदों में आवेदन करने के लिए दिया जाता है। आवेदन पत्र में सभी स्तंभ होने चाहिए जो व्यक्ति के बारे में प्रासंगिक सूचना दे सके। विभिन्न पदों तथा परीक्षाओं या सेवाओं के लिए विविध प्रकार के आवेदन पत्रों की रूपरेखा तैयार की जाती है।
4. **पद एवं परीक्षा इत्यादि का विज्ञापन निकालना-** अपेक्षित अर्हता और शर्तों इत्यादि के निर्धारण के पश्चात विभिन्न माध्यमों द्वारा परीक्षाओं का विज्ञापन प्रकाशित किया जाता है ताकि अधिकाधिक योग्य अभ्यर्थियों को आवश्यक रूप से आकर्षित एवं प्रेरित किया जा सके। कभी-कभी समाचार पत्रों में भी आवेदन-पत्र का प्रारूप निकाल दिया जाता है ताकि अभ्यर्थियों को आवेदन करने में सहूलियत हो । संघ लोक सेवा आयोग द्वारा प्रत्येक शनिवार को अपने विज्ञापनों का प्रकाशित किया जाना इसी भर्ती प्रक्रिया का एक प्रमुख सोपान है।
5. **आवेदन पत्रों का सूक्ष्म परीक्षण करना-** निर्धारित तिथि के अंतर्गत प्राप्त आवेदनों को सूक्ष्म परीक्षण के बाद छटनी की जाती है तथा आवेदक को इस विषय के बारे में सूचित भी किया जाता है। तत्पश्चात परीक्षा की तिथि अथवा साक्षात्कार के लिए बुलावा पत्र प्रेषित किया जाता है जिस पर परीक्षा की तिथि, समय, स्थान इत्यादि आवश्यक जानकारियां दर्ज की गई होती है। इस अवस्था में आकर बहुत सारे अयोग्य और अक्षम अभ्यर्थियों का नाम भर्ती प्रक्रिया से निकाल दिया जाता है।
6. **परीक्षा, साक्षात्कार एवं अन्य जांचों को आयोजित करना-** सुयोग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के चयन के लिए उनकी योग्यता और क्षमता की जांच आवश्यक है और यह कार्य लिखित परीक्षा या साक्षात्कार या किसी दूसरे प्रकार के जांच के द्वारा ही संभव है। यह परीक्षाएं किसी व्यक्ति की अर्हता जांच करने की औपचारिक प्रक्रिया है। प्रक्रियाओं के माध्यम से अर्हता अभ्यर्थी की श्रेणी, अभ्यर्थी का क्रम और योग्य अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है। परीक्षा के पश्चात सफल अभ्यर्थियों की एक सूची प्रकाशित की जाती है । साक्षात्कार में भी एक समरूप प्रक्रिया ही अपनाई जाती है और सफल या योग्य अभ्यर्थियों की सूची प्रकाशित होती है।
7. **प्रमाणीकरण-** परीक्षा, साक्षात्कार तथा विभिन्न प्रकार के जांच के पश्चात सफल अभ्यर्थियों का नाम या क्रमांक समाचार पत्रों या सूचना पट्ट पर घोषित कर दी जाती है। सफल एवं योग्य अभ्यर्थियों की सूची कार्मिक संस्था द्वारा प्रमाणित की जाती है और यह सूची सरकार को इस अनुमोदन के साथ भी जाती है कि अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति की अंतिम सूची से किया जाए। संघ लोक सेवा आयोग जैसी संस्था का यह अंतिम कार्य है। सामान्यतया योग्य अभ्यर्थियों का चयन एवं नियुक्ति सरकार द्वारा केवल इसी

प्रमाणित सूची से की जाती है, लेकिन कुछ आपत्तियों के आधार पर इस सूची से किसी भी अभ्यर्थी का नाम सरकार हटा भी सकती है।

8. **चयन-** उपलब्ध योग्य एवं प्रतिभावान अभ्यर्थियों में से अभ्यर्थियों को चुनने की प्रक्रिया के नाम चयन है। यदि भी अभ्यर्थियों की योग्यता की जांच लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार द्वारा की जाती है तथा कार्मिक संस्थाओं द्वारा योग्य अभ्यर्थियों को प्रमाणित भी किया जाता है। फिर भी अंतिम चयन सरकार का उत्तरदायित्व है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में सामान्यतया सरकार संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अनुमोदित अभ्यर्थियों की सत्यापित सूची में से ही नियुक्तियां करती है लेकिन किसी विशेष कारण से यदि किसी अभ्यर्थी का नाम निरस्त किया जाता है तो सरकार इसका कोई ठोस उपयुक्त और समुचित कारण संसद में प्रस्तुत करती है क्योंकि प्रजातंत्र में अंतिम रूप से सरकार को ही जनता को उत्तर देने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है।
9. **नियुक्ति-** उपयुक्त और योग्य अभ्यर्थियों के चयन के पश्चात औपचारिक नियुक्ति सरकार के द्वारा की जाती है। समस्त नियुक्तियां एक सुयोग्य कार्यकारी अधिकारी के द्वारा की जाती हैं। भारत में केंद्र सरकार की सभी नियुक्तियां राष्ट्रपति के नाम से तथा राज्य सरकारों की नियुक्तियां राज्यपाल के नाम से की जाती है। सरकार द्वारा प्रेषित नियुक्ति पत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे स्थाई नियुक्ति, अल्पकालिक नियुक्ति ,परिविक्षाधीन नियुक्ति तथा अनिश्चितकालीन नियुक्ति आदि। आरंभ में किसी भी अभ्यर्थी को स्थाई नियुक्ति पत्र नहीं दिया जाता है। सामान्यतया चयनित अभ्यर्थियों को परिवीक्षा के आधार पर नियुक्त किया जाता है। यह अवधि 6 महीना, 1 वर्ष या 2 वर्ष हो सकती है। परिवीक्षा की अवधि में अभ्यर्थियों से विविध पदों पर कार्य करने को कहा जाता है। जिसके मूल्यांकन के पश्चात उसकी सूचना नियुक्ति अधिकारी को दी जाती है। सफलतापूर्वक परिवीक्षा की अवधि पूर्ण करने के पश्चात अभ्यर्थियों को सेवा में स्थाई कर लिया जाता है।
10. **पदस्थापन-** परिवीक्षा की अवधि पूर्ण होने के पश्चात सेवा का पुष्टिकरण किया जाता है और उसे समुचित पद पर पदस्थापित किया जाता है, जिसे नियोजन या पदस्थापन कहा जाता है। उसे उस पद से संबंधित किसी विशेष प्रकार के कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। कुछ वर्षों तक कार्य करने के अनुभव के पश्चात नियुक्त अधिकारी उस पद के दायित्वों का निर्वहन करता है।

## 2.5 भर्ती के प्रकार

भर्ती के संबंध में विविध विधियों का प्रयोग दुनिया के देशों में किया जाता है। विभिन्न देशों में भर्ती के विविध प्रकार या विधियों को अपनाया गया है, उनमें हैं-

1. **प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भर्ती-** भर्ती की दो विधियां हैं- आंतरिक भर्ती यानी प्रोन्नति से भर्ती करना और बाह्य उपलब्ध लोगों से भर्ती करना। बाहर उपलब्ध और योग्य अभ्यर्थियों द्वारा जब रिक्त पदों पर भर्ती की जाती है तो उसे प्रत्यक्ष भर्ती कहते हैं लेकिन जब पहले से ही सेवारत उपयुक्त और अनुभवी अभ्यर्थियों के द्वारा रिक्त पद भरा जाता है तो उस प्रोन्नति को अप्रत्यक्ष भर्ती कहा जाता है। आंतरिक स्रोत से आशय उपक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों की उच्च पदों पर पदोन्नति, स्थानान्तरण व समायोजन से है। बाह्य स्रोत से भर्ती निम्न वर्गीय कर्मचारियों की जाती है। भर्ती की दोनों विधियों के कुछ लाभ और कुछ हानियां हैं लेकिन विश्व के लगभग सभी देशों में यही दो विधियां अपनाई जाती हैं। सामान्यतया निर्णय स्तरीय पदों को प्रत्यक्ष भर्ती तथा उच्च स्तरीय पदों को पदोन्नति यानी अप्रत्यक्ष भर्ती के द्वारा भरा जाता है। विभिन्न देशों में उनके राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों के अनुसार विवेक सम्मत और व्यवहारिक दोनों प्रकार की भर्ती नीतियों के सम्मिश्रण को अपनाया जाता है।

प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के लाभ के साथ साथ हानियाँ भी बहुत हैं। प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली योग्य उम्मीदवारों को शुभ अवसर प्रदान करता है। अतः प्रजातांत्रिक सिद्धांत है। इसमें आपूर्ति के स्रोत विस्तृत हैं तथा इसके द्वारा युवा और अति योग्य अभ्यर्थी सिविल सेवा में आते हैं। इसमें नए चेहरे, नए विचार, परिवर्तन, तकनीकी, प्रशासकीय, सामाजिक, राजनीतिक अवस्थाओं का सेवाओं में प्रति भी मन होता है। इसमें परिवर्तनशील अवस्था और तकनीकों के साथ सेवा प्रगति कर सकती हैं तथा कर्मचारीगण अपनी अर्हता बढ़ाने के लिए कठिन परिश्रम भी करते हैं।

वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली की हानियाँ भी है। इसमें उत्तरदायी पदों पर अनुभव ही नहीं युवकों को भर्ती किया जाता है जिनमें कम से कम आरंभ में अपने कर्तव्य निर्वाह के लिए दक्षता और आत्मविश्वास का अभाव रहता है। प्रत्यक्ष विधि के द्वारा नियुक्त अनुभवहीन युगों के लिए प्रशिक्षण परम आवश्यक हो जाता है। इस भर्ती पद्धति में सरकारी सेवाओं में पहले से कार्य कर रहे लोगों की प्रोन्नति व्यवसाय अवरुद्ध हो जाते हैं । इससे उनकी कार्यकुशलता और निष्ठा पर बुरा असर पड़ता है। यह लोक सेवाओं का कार्यभार अत्यधिक बढ़ा देता है। भविष्य में उन्नति के अवसर नहीं दिखने पर कर्मचारियों और अन्य योग्य और कुशल लोगों में विश्वास पैदा करता है। इसमें कर्मचारी के अनुभव, कठिन परिश्रम और कार्यकुशलता पूर्ण हो जाते हैं तथा अधिक समय नष्ट करने वाली और अधिक खर्चीली भी है।

दूसरी ओर अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली में नियुक्त व्यक्तियों को प्रशासनिक और सरकारी कार्यों का अपेक्षित अनुभव रहता है तथा वह भी अपने कर्तव्य निर्वाह पूर्ण विश्वास और उत्तरदायित्व के साथ करते हैं तथा इस विधि के द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के लिए दीर्घावधि प्रशिक्षण आवश्यक नहीं है। यह कर्मचारियों में सेवा में प्रगति और तरक्की का अवसर प्रदान करता है तथा कठिन परीक्षण करने हेतु प्रोत्साहित भी करता है। अप्रत्यक्ष भर्ती लोक सेवा आयोग का कार्यभार काफी हद तक कम कर देता है तथा इसके माध्यम से कर्मचारी के कार्यकुशलता, अनुभव का उपयोग देश की प्रगति किया जाता है। अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली कम समय नष्ट करने वाला और कम खर्चीला है। वहीं दूसरी और अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली के हानियां भी कम नहीं हैं। इस भर्ती प्रणाली में सेवा में पूर्व से विद्यमान सीमित अभ्यर्थियों को अवसर प्रदान किया जाता है जो अप्रजातांत्रिक है। इसमें आपूर्ति के स्रोत और प्रतिबंधित होते हैं तथा इसके द्वारा सक्षम अभ्यर्थियों को सिविल सेवा में प्रवेश के अवसर को नकारा जाता है। इस प्रकार यह भय पैदा करता है। नए चेहरे ,नए विचारों को प्रवेश करने से रोकता है। इसमें शीघ्र परिवर्तनशील संसार के साथ सिविल सेवा प्रगति नहीं कर पाती है तथा प्रोन्नति की अवसर की प्रतीक्षा कर्मचारी हमेशा करते ही रह जाते हैं।

दोनों प्रकार की भर्तियों के गुण और दोषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पद्धति के कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक पहलू हैं श्रेष्ठ पद्धति दोनों विधियों को अपनाकर निर्मित की जाती है।

2. **सकारात्मक और नकारात्मक भर्ती-** जब भर्ती के अभिकरण सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए सक्रिय रूप से सर्वाधिक योग्य और अत्यधिक का कार्य कुशल अभ्यर्थियों की खोज करते हैं तो इसे भर्ती की सकारात्मक विधि कहा जाता है। इसके विपरीत अभ्यर्थियों का ध्यान आकर्षित किए बगैर अयोग्य और अनुपयुक्त अभ्यर्थियों को बाहर रखने के लिए भर्ती की नकारात्मक विधि का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में अभ्यर्थियों को आगे लाने हेतु आकर्षित करने के लिए अनेक देशों में सकारात्मक समाचार पत्रों में विज्ञापन प्रचार साहित्य, सिनेमा इत्यादि को अपनाया जाता है।
3. **सामूहिक और व्यक्तिगत भर्ती-** एक बड़ी संख्या में गैर-तकनीकी और सामान्य सेवाओं के रिक्त पदों को भरना सामूहिक भर्ती की तकनीक है। सरकारी में भारी संख्या में रिक्त पदों को भरने के लिए जनसंचार माध्यमों के द्वारा विज्ञापन निकाला जाता है। तत्पश्चात परीक्षा और साक्षात्कार की कठिन विधि अपनाई जाती है। लोक सेवा आयोग भारत में इन्हीं विधियों को दोनों विधियों को प्रयोग में लाते हैं।

## 2.6 भर्ती की अर्हता पद्धतियाँ

लोक सेवाओं के कर्मचारियों के लिए आवश्यक अर्हता संबंधी प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन्हीं बिंदुओं पर लोक सेवाओं की कार्यकुशलता निर्भर करती है। लोक सेवाओं के लिए अर्हता पद्धतियाँ दो प्रकार की होती हैं- सामान्य और विशेष। सामान्य अर्हता सभी लोग कर्मचारियों पर लागू होते हैं और एक प्रकार से सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में आने वाली होती हैं। सामान्य अर्हताएं- नागरिकता, अधिवास, लिंग भेद और आयु से संबंध रखते हैं। विशेष अर्हताएं- शिक्षा, अनुभव, प्राविधिक ज्ञान ,व्यक्तिगत विशेषताओं से संबंधित होती हैं। आईये इनका विस्तृत अध्ययन करते हैं-

1. **नागरिकता-** लोक सेवा के पदों के लिए आवेदन करने वालों को राज्य का नागरिक होना आवश्यक है। विदेशियों को लोक सेवा में कोई पद नहीं दिया जा सकता। यदि कोई विदेशी नियुक्त कर भी लिया जाता है तो उसका कार्यकाल थोड़े समय के लिए ही होता है। भारत में नेपाल के परिजनों के लिए लोक सेवाओं के पदों पर नियुक्ति की सुविधाएं हैं क्योंकि भारत के साथ इस देश के दृढ़ ऐतिहासिक संबंध है।
2. **अधिवास या निवास-** अधिवास संबंधी अर्हता को संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा स्थापित की गई थी, जहां आज भी संघीय राज्यों को राष्ट्रीय सेवाओं में यथोचित प्रतिशत स्थान दिया जाता है। भारत में अधिवास संबंधी नियम 1957 तक लागू थे। राज्य पुनर्गठन आयोग ने भारत की लोक सेवाओं की पात्रता के लिए इन प्रावधानों पर आपत्ति की थी और इन्हीं आलोचनाओं के केंद्र सरकार ने लोक सेवा अधिनियम 1957 पारित किया, जिसके द्वारा राज्य की लोक सेवाओं में प्रवेश पाने के संबंध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके देश की एकता को सुदृढ़ बनाया गया।
3. **लिंग भेद-** कुछ समय पूर्व तक अधिकतर देशों में महिलाओं को लोक सेवा में नौकरी करना निषिद्ध था। अब यह लगभग समाप्ति की ओर है। भारतीय संविधान निर्धारित करता है कि सभी नागरिकों को राज्य के पदों पर नियुक्ति संबंधी मामलों में समान अवसर प्राप्त होंगे।
4. **आयु-** भारत, ब्रिटेन और अन्य देशों में लोक सेवा में नव युवकों की भर्ती की जाती है, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिक परिपक्व स्त्री पुरुषों को ही नौकरी में लिया जाता है। इसका सरकार के सभी वर्ग संबंधी ढांचे पर प्रभाव पड़ता है। आधुनिक समय में जबकि प्रशासनिक कार्यों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, उच्चतर आयु समूह के व्यक्तियों को ही लोक सेवा में प्रवेश पाने से वंचित नहीं किया जा सकता। भारत में 18 से 30 वर्ष तक की आयु के युवक लोकसेवा प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं और जाति जनजाति में यह सीमा 5 वर्ष स्थापित की गई है जबकि पिछड़े वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए 3 वर्ष की छूट है। अमेरिका की भर्ती प्रणाली की एक विशेषता यह है कि कोई भी व्यक्ति अमेरिकी लोक सेवा में लगभग किसी भी स्तर पर तथा किसी भी आयु में प्रवेश पा सकता है।
5. **शिक्षा संबंधी अर्हता-** इस संबंध में दो प्रकार की नीतियां प्रचलित है। लोक सेवा में प्रवेश पाने के लिए निश्चित शिक्षा संबंधी योग्यता निर्धारित की गई है। वहीं अमेरिकी में शिक्षा संबंधित प्रावधान नहीं है। भारत में लोक सेवा के लिए प्रणाली की सामान्य व्यवस्था के अनुसार अनिवार्य न्यूनतम अर्हता स्नातक उपाधि होती है।
6. **अनुभव-** संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सेवा में किसी भी आयु के प्रवेश दिया जा सकता है। कार्य के वास्तविक अनुभव का बहुत अधिक महत्व है तथा उसकी बहुत मांग रहती है। भारतीय प्रणाली में महाविद्यालयों/विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त युवकों की भर्ती की जाती है। फिर भी विधिक सेवाओं के लिए अनुभव को मांगा जाता है।

7. **व्यक्तिगत अर्हता-** लोक सेवकों में निष्पादन की योग्यता, चातुर्य, युक्ति, ईमानदारी, क्षमता, सच्चाई और मिलजुल कर कार्य करने की योग्यता होना आवश्यक है।
8. **प्राविधिक योग्यता अनुभव-** विकास उन्मुख सरकार के लिए अर्थशास्त्री, कानूनी परामर्शदाता, इंजीनियर, वैज्ञानिक और ऐसे ही अनेक प्राविधिक कर्मचारियों को अधिकाधिक शासकीय सेवा में भर्ती करना आवश्यक है।

दुनिया के सभी प्रजातांत्रिक देशों में भर्ती की अर्हता पद्धति को अपनाया गया है। अर्हता पद्धति के अनुसार खुली प्रतियोगिता के द्वारा चयनित योग्य और उपयुक्त अभ्यर्थियों के द्वारा सरकारी सेवाओं में रिक्त पदों को भरा जाता है। खुली प्रतियोगिता का उद्देश्य अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को आंकना होता है और यह कार्य प्रायः लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, साक्षात्कार, कार्य निष्पादन परीक्षा, पूर्व अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के द्वारा किया जाता है।

प्राचीन भारत एवं चीन में कर्मचारियों का चयन योग्यता के आधार पर किए जाने के प्रमाण मिलते हैं, किंतु आधुनिक काल में अर्हता सिद्धांत अपेक्षाकृत नवीन है। सबसे पहले यह भारत और ब्रिटेन में क्रमशः 1854 और 1855 में प्रारंभ किया गया, किंतु अमेरिका में अर्हता सिद्धांत सबसे पहली बार 1833 के पेंडलटन एक्ट के द्वारा लागू किया गया। जब एक बेरोजगार एवं हतोत्साहित युवक ने लूट-खसोट प्रणाली के खिलाफ राष्ट्रपति गारफील्ड की हत्या कर दी थी। अर्हता सिद्धांत अपनाने से पूर्व विश्व में तीन पद्धतियां विद्यमान थीं- कार्यालयों का विक्रय, क्रय पद्धति तथा इनामी पद्धति।

फ्रांस की क्रांति से पहले वहां सार्वजनिक नीलामी के द्वारा ऊंची बोली लगाने वालों के हाथों बेचा जाता था जिससे राज्य के लिए राजस्व भी प्राप्त होता था और धन वालों को सरकारी पद प्राप्ति हेतु अवसर भी प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार सरकार के प्रति पक्षपात एवं राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने वाली यह व्यवस्था थी। ब्रिटेन तथा अन्य देशों में प्रश्रय प्रणाली को अपनाया गया था जिसके अनुसार सरकारी सेवा में अभ्यर्थियों की नियुक्ति नियुक्ति अधिकारी के द्वारा चयन के आधार पर की जाता था। जिससे वह व्यक्तिगत या राजनीतिक आधार पर सहायता करना चाहता था। परिवार और रिश्तेदारी, व्यक्तिगत निष्ठा, राजनीतिक संबंध, सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद भर्ती के इस प्रणाली में शामिल थे। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक यह पद्धति भारत और यूरोप में भी प्रचलित थी। इनामी पद्धति अमेरिका में प्रचलित थी, जहां निर्वाचन में जीतने वाले पार्टी के द्वारा इनाम के रूप में सरकारी सेवा में नियुक्तियां की जाती थी। जब भी कोई नई पार्टी सत्ता में आती थी तो वह अपने समर्थकों को पद पर भर्ती थी और पूर्व सरकार द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारियों को बर्खास्त कर देती थी। इस प्रकार सत्ताधारी पार्टी में निष्ठा अनुभूति रखने वाले नवनिर्वाचित राष्ट्रपति के प्रति व्यक्तिगत रूप से निष्ठावान रहते थे। उन्हें सरकारी तौर पर लोक सेवकों को नियुक्त किया जाता था। अमेरिका में यह पद्धति 1833 के एक्ट के पास होने तक एक शताब्दी से भी अधिक समय तक प्रचलित रहा।

प्रजातांत्रिक भावनाओं की वृद्धि तथा प्रशासन की जटिलताओं के कारण उपरोक्त भर्ती की प्रविधियां पुरानी हो गई हैं। योग्यता और अर्हता के आधार पर भर्ती करना विश्व के सभी देशों में प्रारंभ हो चुका है। इनामी प्रणाली कहीं भी प्रचलन में नहीं है।

## 2.7 अर्हता निर्धारण की विधियाँ

अधिकांश देशों में लोक सेवा के अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है। प्रशासन में भर्ती हेतु योग्यता सिद्धांत के अंतर्गत एक केंद्रीय निष्पक्ष और गैर-राजनीतिक तथा स्वतंत्र केंद्रीय कार्मिक संस्था जैसे लोक सेवा आयोग इत्यादि आवश्यक होते हैं। अभ्यर्थियों की अर्हता सरकार द्वारा नियुक्त

केंद्रीय कार्मिक संस्था के द्वारा ही हो पाती है। सामान्यतया अभ्यर्थियों की अर्हता की जांच के लिए किया निम्नांकित विधियों के संयोजन से की जा सकती है। ये विधियां हैं-

1. **लिखित परीक्षा-** बुद्धि, स्मरण शक्ति, ज्ञान तथा सूचनाओं की तर्कसंगत प्रस्तुति के लिए कल्पना और क्षमताओं की जांच हेतु लिखित परीक्षा एक सामान्य विधि है। लिखित परीक्षाएं दो प्रकार की होती हैं- निबंधात्मक तथा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ। भारत में निबंधात्मक परीक्षाएं सामान्य है। प्रश्न पत्र में से दिए गए कुछ प्रश्नों का उत्तर दो से तीन घंटे में पूर्ण रूप से विस्तृत निबंधात्मक रूप से अभ्यर्थियों को लिखने हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि से अभ्यर्थियों की सामान्य बौद्धिक क्षमता, तथ्यपरक सूचना अभिव्यक्ति की क्षमता, स्मरणशक्ति, तर्कपूर्ण विवेचन की योग्यता तथा विचारों की स्पष्टता इत्यादि के संबंध में जांच की जाती है। लेकिन निबंधात्मक परीक्षा पद्धति में मूल्यांकन कठिन और व्यक्तिपरक होता है। दूसरी प्रकार की परीक्षा लघु उत्तरीय या वस्तुनिष्ठ होती है। इस प्रकार के प्रश्न पत्र में बहुत सारे प्रश्न होते हैं जिसे एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर उत्तर देना होता है। कभी-कभी रिक्त स्थानों की पूर्ति अथवा सही या गलत कथन के रूप में भी प्रश्न पूछे जाते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रणाली अभ्यर्थी की तथ्यात्मक सूचना और सही ज्ञान को परखने में उपयोगी सिद्ध होता है। इसे तत्काल अभ्यर्थी की निर्णय लेने की क्षमता और स्मरण शक्ति की जांच होती है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का निर्माण तथा मूल्यांकन भी वस्तुनिष्ठ नहीं होता है तथा इसमें परीक्षक किए आत्म मूल्यांकन के लिए कोई स्थान नहीं होता। फिर भी बड़ी संख्या में अभ्यर्थियों की योग्यता और क्षमता को जांचने के लिए यह सर्वाधिक सरल विश्व सनीय निधि हैं।

   अनेक देशों में दोनों प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन है। उच्च स्तर पर जहां ज्ञानी व्यक्ति और तार्किक चिंतन आवश्यक है वही निबंधात्मक प्रश्नों को ही प्रमुखता दी जाती है। निम्न स्तर पर जहां अभ्यर्थियों की संख्या बहुत बड़ी होती है, वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली को प्रमुखता दी जाती है। इस परीक्षा में अभ्यर्थियों की सामान्य ज्ञान, योग्यता और बौद्धिक क्षमता आँकने के लिए लिखित परीक्षा भी आयोजित की जाती है। भारत और ब्रिटेन में कुछ अनिवार्य सामान्य पत्र जैसे सामान्य निबंध, सामान्य ज्ञान तथा सामान्य अंग्रेजी इत्यादि में लिखित परीक्षाएं ली जाती है। साथ ही अभ्यर्थियों की रूचि के अनुसार कुछ शैक्षिक वैकल्पिक प्रश्न पत्रों की भी परीक्षाएं होती है जो प्रायः महाविद्यालय या विश्वविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों से लिया जाता है। इस प्रकार की परीक्षा के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि प्रशासन में विशिष्ट ज्ञान की अपेक्षा बौद्धिक क्षमता अधिक आवश्यक है और एक तेज और तीक्ष्ण बुद्धि वाला व्यक्ति सभी प्रकार के प्रशासनिक कार्यों के लिए उपयोगी है।
2. **पूर्व कार्य के रिकार्डों का मूल्यांकन-** शासकीय सेवाओं में बहुत सारे ऐसे पद होते हैं, जिनके लिए लिखित परीक्षा या साक्षात्कार सही प्रणाली सिद्ध नहीं होती। वकालत, चिकित्सा, इंजीनियरिंग एवं वैज्ञानिक तथा इसी प्रकार की ढेर सारी सेवाओं में विशिष्ट एवं तकनीकी पदों के रिक्त स्थानों को अभ्यर्थियों के अर्हता, अनुभव कार्य के पूर्व रिकार्डों के परीक्षण के पश्चात ही भरा जाता है। न्यूनतम अर्हता को पूर्ण करने वाले आवेदकों को अपने प्रस्तुत किए गए रिकॉर्ड के आधार पर विशेषज्ञों के एक बोर्ड द्वारा जांच की जाती है और सभी गुणों के आधार पर उनका चयन किया जाता है। सरकारी सेवाओं में उच्च स्तरीय वैज्ञानिक तकनीकी एवं विशिष्ट पदों की नियुक्ति में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है तथा विश्व विद्यालयों में अध्यापकों की भर्ती भी इसी विधि से की जाती है।
3. **शारीरिक जांच परीक्षण-** लोक सेवकों के लिए यह आवश्यक है कि वह शारीरिक तौर पर पूरी तरह स्वस्थ हो। साथ ही सेवा प्रारंभ करने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति इस संबंध में एक प्रमाण पत्र भी देना पड़ता है। शारीरिक योग्यता का यह प्रमाण पत्र पुलिस, सशस्त्र बलों तथा अन्य क्षेत्रीय सेवाओं में अनिवार्य है।

4. **मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण-** उच्च स्तरीय पदों पर भर्ती हेतु अभ्यर्थियों की बुद्धि, मानसिक योग्यता इत्यादि की जांच के लिए मनोवैज्ञानिक जांच परीक्षण आवश्यक समझा जाता है। इस जांच को अपनाने से अभ्यर्थियों की क्षमता की जांच की जाती है तथा यह जांच अन्य जांचों की मात्र पूरक ही है। यह चयन करने के कोई पूर्ण और स्वतंत्र विधि नहीं है।

इस प्रकार सरकारी नौकरियों में उपयुक्त में योग्य अभ्यर्थियों को भर्ती के लिए इन सभी विधियों का उपयोग किया जाता है। सिविल सेवा में सर्वोत्तम और योग्य व्यक्तियों को पाना ही इन सब का चरम उद्देश्य हैं। कार्मिक चयन में वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता लाने के लिये लोक सेवा के बाहर के अभिकरण आवश्यक समझे गए और इस प्रकार स्वतंत्र लोक सेवा आयोग का जन्म हुआ। सर्वप्रथम ब्रिटेन में 1855 में लोकसेवा आयोग (3 सदस्यीय) गठित हुआ था, जो 1968 से लोकसेवा विभाग (फुल्टन सिफारिश) का अंग बनकर कार्य कर रहा है, तथा इसमें अब 6 सदस्य हैं। अमेरिका में 1871-1872 में लोकसेवा आयोग गठित हुआ, लेकिन 1883 के पेण्डलटन अधिनियम द्वारा स्थापित होकर 01 जनवरी 1979 तक कार्यशील रहा। 1979 से उसका स्थान विभिन्न पृथक संस्थाओं ने ले लिया हैं। भारत में संघ, राज्य और राज्यों के संयुक्त लोकसेवा आयोग के प्रावधान अनुच्छेद- 315 में किये गये हैं। साथ ही अधीनस्थ पदों पर भर्ती हेतु केन्द्र में स्टाफ चयन बोर्ड कार्यरत है। इसके अलावा रेलवे बोर्ड और बैकिंग भर्ती बोर्ड हैं जो क्रमश: रेलवे और बैंक में भर्ती करते हैं।

## 2.8 श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें

भर्ती कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। भर्ती की नीति यदि अच्छी नहीं है तो सक्षम और अयोग्य लोग लोक सेवाओं में चले आते हैं और शासन व्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि भर्ती की नीति सुनियोजित और निष्पक्ष हो। भर्ती की नीति में गतिशीलता, लोचशीलता, ईमानदारी, विशेषज्ञता आधारित होना चाहिए। श्रेष्ठ भर्ती निधि की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

1. भर्ती की नीति सकारात्मक होनी चाहिए और इसकी योजना सरकारी सेवाओं में सर्वोत्तम, अत्यधिक कार्यसक्षम और योग्य लोगों को आकर्षित करने के लिए होनी चाहिए।
2. भर्ती की नीति प्रजातांत्रिक होनी चाहिए और जिससे अत्यधिक योग्य लोगों को अवसर प्रदान होने चाहिए तथा सरकारी सेवाओं में रिक्त स्थानों के बारे में आपूर्ति करने वाले सभी स्रोतों द्वारा सूचित होना चाहिए।
3. भर्ती की नीति आकर्षक होनी चाहिए तथा सरकारी सेवाओं के लिए अस्थाई रूप से से अच्छी रोजगार क्षेत्र का निर्माण करना चाहिए। सभी प्रतिभाशाली लोगों को सरकारी सेवाओं में लाने के लिए आकर्षक साहित्य प्रचार तकनीक का प्रयोग करना चाहिए तथा यह निरंतर चलता रहना चाहिए।
4. भर्ती विधि निष्पक्ष और अराजनीतिक होनी चाहिए। भर्ती लोक सेवा आयोग जैसे एक स्वतंत्र निष्पक्ष और राजनीतिक संस्था के द्वारा ही होनी चाहिए। सिविल सेवा अधिकारी की भर्ती में सरकार या राजनेताओं का किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।
5. भर्ती अर्हता सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए तथा अर्हता एवं योग्यता की जांच के पश्चात केवल योग्य, गुणवान एवं प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को ही भर्ती किया जाना चाहिए।
6. भर्ती करने वाली संस्थाओं को अर्हता जांच की आधुनिक और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाना चाहिए और समय-समय पर इन पद्धतियों का पुनरावलोकन भी आवश्यक है ताकि नए आधुनिक पद्धतियों को अपनाया जा सके।
7. भर्ती नीति में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भर्ती पद्धतियों का सुंदर मिश्रण होना चाहिए अर्थात पहले से कार्यरत और प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को प्रोन्नति दिया जाना चाहिए और उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त भी किया

जाना चाहिए। वहीं दूसरी ओर प्रतिभा संपन्न नवयुवकों को भर्ती कर सर्वोत्तम सफलता और सुंदर भर्ती नीति हेतु दोनों पद्धतियों को संयुक्त किया जाना चाहिए।

8. भर्ती नीति नवीन रीतियुक्त होना चाहिए। नवीनतम परिवर्तनों तथा सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक बदलाव को समाहित करते हुए नीतियों का निर्माण आवश्यक है।
9. उचित व्यक्ति का उचित पद पर पदस्थापन भर्ती का एक महत्वपूर्ण आयाम है। चयन प्रक्रिया की समाप्ति के पश्चात अभ्यर्थियों को इस प्रकार से पदस्थापित किया जाना चाहिए जिससे कि उचित व्यक्ति को उचित सेवा में पदस्थापन हो सके।

## 2.9 भारत में भर्ती की पद्धति

भारत में ब्रिटिश प्रतिमान पर आधारित योग्यता पद्धति भर्ती में अपनाई गई है। अभ्यर्थियों की सामान्य योग्यता तथा बुद्धि परीक्षण खुली प्रतियोगिता के अंतर्गत अर्हता पद्धति पर आधारित है। भारतीय संविधान के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं में भर्ती का अधिकार संघ लोक सेवा आयोग को सौंपा गया है परंतु अंतिम भर्ती राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्य सेवाओं के लिए भर्ती का कार्य राज्य लोक सेवा आयोग करता है और नियुक्ति पत्र राज्यपाल के नाम से निर्गत किया जाता है।अखिल भारतीय सेवाओं तथा उच्च केंद्रीय सेवाओं के लिए संघ लोक सेवा आयोग संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित करता है। भर्ती के लिए लिखित और मौखिक परीक्षाओं का एक सुव्यवस्थित आयोजन संघ लोक सेवा आयोग द्वारा किया जाता है जिसमें उच्च स्तरीय पदों के लिए स्नातक को ही प्रतियोगिता में बैठने सम्मिलित होने का अधिकार मिलती है। भारतीय प्रणाली पर ब्रिटिश प्रणाली का छाप है और प्रशासकीय सेवा में प्रवेश पाने के लिए भारत में अनिवार्य न्यूनतम अर्हता कला, विज्ञान, तकनीकी प्रबंधन या चिकित्सा विषयों में विश्व विद्यालय की उपाधि होती है। लिपिकीय सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए न्यूनतम अर्हता 2010 से 12वीं या उसके समकक्ष निर्धारित की गई है।

संघ लोक सेवा आयोग विविध चरणों में अर्हता परीक्षा संपन्न करता है। सिविल सेवा प्रतियोगी परीक्षा की 1978 तक प्रचलित प्रणाली में समस्त अभ्यर्थी एक संयुक्त परीक्षा में बैठते थे और छटनी की कोई व्यवस्था इन सेवाओं हेतु नहीं थी। अनंतर डॉ. दौलत सिंह कोठारी समिति की अनुशंसाओं के आधार पर भर्ती की नई प्रणाली 1979 से प्रारंभ की गई। इस नई प्रणाली के अंतर्गत सिविल सेवा परीक्षा दो चरणों में संपन्न करने का प्रावधान था- प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा और सिविल सेवा प्रधान परीक्षा।

प्रारंभिक सिविल सेवा परीक्षा में वस्तुपरक प्रकार के दो प्रश्न पत्र होते थे- सामान्य अध्ययन का प्रथम प्रश्न पत्र 150 अंक तथा ऐच्छिक विषयों में से चुना गया एक प्रश्न पत्र 300 अंकों का होता था। इस प्रकार कुल मिलाकर 450 अंकों में से केवल यही उम्मीदवार प्रारंभिक परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर लेते थे। उक्त वर्ष की मुख्य परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होते थे। मुख्य परीक्षा में लिखित परीक्षा व साक्षात्कार प्रश्न होता था। लिखित परीक्षा में परंपरागत निबंधात्मक शैली की प्रश्न होते थे। उम्मीदवारों को मुख्य परीक्षा लिखित एवं साक्षात्कार में प्राप्त किए गए आधार पर अंतिम योग्यता निर्धारित किया जाता था ।

1988 में सतीश चंद्र की अध्यक्षता में एक अन्य समिति नियुक्त की गई जिसमें प्रतियोगी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में कुछ विषयों को सम्मिलित करने की सिफारिश की। मुख्य परीक्षा में निबंध का प्रश्न पत्र सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई और व्यक्तित्व परीक्षा के अंक 250 से बढ़ाकर 300 कर दिए गए और यह प्रावधान 1993 की परीक्षाओं से प्रारंभ कर दिया गया। सिविल सेवा परीक्षा की समीक्षा हेतु संघ लोक सेवा आयोग ने 19 जुलाई 2000 को एक समिति योगेंद्र कुमार अलघ के नेतृत्व में गठित की जिसने अपनी रिपोर्ट 22 अक्टूबर 2000 को आयोग के अध्यक्ष को सौंपी थी। समिति के अनुसार अभ्यर्थियों की योग्यता, ज्ञान, कौशल, समाज और मूल्यों को

बढ़ावा देने के लिए सही पद्धति लागू की करने की सलाह दी गई। 2004 में पी. सी. होता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने सिविल सेवाओं में सुधार की अनुशंसा की।

सिविल सेवा परीक्षा प्रारंभिक प्रणालियों पाठ्यक्रम का नया स्वरूप 18 अक्टूबर 2010 को भारत सरकार द्वारा संघ लोक सेवा आयोग की सलाह पर जारी किया गया था, जिसके अनुसार वर्ष 2011 से केवल प्रारंभिक परीक्षा के स्तर में बदलाव किया गया। मुख्य परीक्षा और साक्षात्कार के अवसर पर नया विस्तृत बदलाव 2013 में लागू किया गया था। द्वितीय प्रशासनिक आयोग द्वारा भी भर्ती की प्रणाली की समीक्षा की गई थी। नवीन परीक्षा की रूपरेखा के अनुसार प्रधान परीक्षा के चयन हेतु सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा आयोजित की जाती है जो वस्तुपरक होती है। अब इस परीक्षा में दो अनिवार्य पत्र होते हैं जिसमें एक प्रश्न पत्र 200 अंकों का होता है और दोनों प्रश्न पत्रों का सारांश एक समान होता है। यह बदलाव 15 मई 2011 को आयोजित परीक्षा से लागू किया गया था किंतु 2015 से इन प्रश्न पत्रों के प्रणाली में बदलाव किया गया । प्रधान परीक्षा हेतु अभ्यर्थी एक वैकल्पिक विषय का चयन कर सकता है। प्रश्न पत्र हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में तैयार किए जाते हैं और उत्तर दोनों में से किसी एक भाषा में लिखा जा सकता है। मुख्य परीक्षा में सफल अभ्यर्थियों का साक्षात्कार एक बोर्ड द्वारा किया जाता है जो न केवल बौद्धिक गुणों को अपितु उसके सामाजिक लक्षणों और सामाजिक घटनाओं में उसकी रुचि का भी मूल्यांकन करता है। इसमें उम्मीदवार की मानसिक सतर्कता, आलोचनात्मक ग्रहण शक्ति, स्पष्ट और तर्कसंगत प्रतिपादन की शक्ति, संतुलित निर्णय की शक्ति, चिंतन की विविधता और नेतृत्व और सामाजिक संगठन की योग्यता, बौद्धिक और नैतिक ईमानदारी की भी जांच करती है। अंतिम परीक्षा परिणाम लिखित और मौखिक परीक्षा के प्राप्त अंकों के आधार पर घोषित किया जाता है। पदों की विवरण नियुक्ति और अंतिम पदस्थापन हेतु अंतिम सूची केंद्रीय गृह मंत्रालय को प्रेषित की जाती है।

निम्न स्तरीय केंद्रीय सेवाओं तथा तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के चयन का कार्यभार कर्मचारी चयन आयोग को सौंपा गया है जो विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा इनका चयन करता है। राज्यों में राज्य लोक सेवा आयोग का गठन किया गया है, जो उच्च स्तरीय राज्य सेवाओं की भर्ती हेतु संघ लोक सेवा आयोग की चयन विधि का अनुसरण करते हैं। राज्य की निम्न स्तरीय सेवाओं के लिए बहुत से राज्यों में राज्य कर्मचारी चयन बोर्ड या क्षेत्रीय चयन बोर्ड या अधीनस्थ चयन बोर्ड का गठन किया गया है। भारत में रेलवे लेखा और अंकेक्षण विभाग, औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा सार्वजनिक संस्थाओं की अपनी अलग अलग भर्ती की व्यवस्था है। यह सब संघ लोक सेवा आयोग के अंतर्गत केंद्रीय भर्ती योजना से बाहर रखे गए हैं।

भारत में प्रचलित भर्ती पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं। इस प्रणाली में कल्पनाशीलता का अभाव प्रतिबिंबित होता है। एपेलबी के शब्दों में, ऐसा लगता है कि रिक्त पदों के विज्ञापन वकीलों ने लिखे हैं। भर्ती पद्धति पुरानी घिसी-पिटी पद्धति तथा रटंत विधा पर आधारित है तथा इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का अभाव है। गोरेवाला ने साक्षात्कार के स्थान पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की वकालत की। साक्षात्कार पद्धति की भी आलोचना की जाती रही है, यह दोषपूर्ण प्रतीत होती है।

## 2.10 आरक्षण

भारत में कुछ विशेष समुदाय के लोग विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, निम्न स्तरीय जातीय, विभिन्न उप-जातियों सदियों से विविध सुविधाओं से दूर-दूर थी। शताब्दियों का बहिष्कार, गरीबी उत्पीड़न, दमन और सभी प्रकार का शोषण इन समुदायों पर इतिहास के पन्नों में दर्ज है। इतिहास ने इन्हें स्थाई असुविधा के गर्त में धकेल दिया था तथा आर्थिक शैक्षणिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी परिस्थिति में ही इन्हें रखा था। इसलिए उन लोगों के प्रति विशेष व्यवहार अतीत के पक्षपात के आधार पर और भविष्य में उन्नति के लिए न्याय संगत माना गया और इस प्रकार के विशेष व्यवहार से आशा की जाती है कि अवरुद्ध समानता और अतीत के दमन के प्रभावों

को न्यूनतम कर देगा। सरकारी सेवाओं व संस्थानों में पर्याप्त भागीदारी नहीं रखने वाले पिछड़े जाति, समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सरकार अपने कानून के तहत सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में आरक्षण देती है। भारत के संसद में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधित्व के लिए भी आरक्षण नीति को विस्तारित किया गया है। आम आबादी में उनकी संख्या के अनुपात के आधार पर उनके बहुत ही कम प्रतिनिधित्व को देखते हुए शैक्षणिक परिसरों और कार्यस्थलों में सामाजिक विविधता को बढ़ाने के लिए कुछ समूहों के लिए प्रवेश मानदंड को नीचे किया गया है। कम प्रतिनिधित्व समूहों की पहचान के लिए सबसे पुराना मानदंड जाति है।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के संविधान ने पहले के कुछ समूहों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध किया। संविधान निर्माताओं का मानना था कि जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति ऐतिहासिक रूप से पिछड़े रहे और उन्हें भारतीय समाज में सम्मान तथा समान अवसर नहीं दिया गया और इसीलिए राष्ट्र-निर्माण की गतिविधियों में उनकी हिस्सेदारी कम रही। संविधान निर्माताओं ने बड़ी ही सूझबूझ एवं अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए संविधान की प्रस्तावना में ही सभी नागरिकों को सामान आधिकार देने की बात कही है, चाहे वह सामाजिक आधार हो, राजनीतिक आधार हो या फिर आर्थिक आधार। इसके आधार पर संविधान के सोलहवें अध्याय के अनुच्छेद 330 से 335 के तहत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए लोकसभा और विधानसभा में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। अनच्छेद-335 में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए केंद्र और राज्य सरकारों की नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। राजनीति और प्रशासन में आरक्षण का प्रावधान किया गया ताकि इन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में पुनः जोड़ सके। जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान देश की सांस्कृतिक सहिष्णुता और सभी वर्गों के नागरिकों को सामान रूप से प्रशासन और सत्ता में भागीदारी के अवसर प्रदान करने की राष्ट्रीय नीति का परिचायक है।

## 2.11 संवैधानिक सुरक्षा

संविधान सरकारी नौकरियों में सभी को समान अवसर प्रदान करता है। साथ ही संविधान का अनुच्छेद-16 (4) यह प्रावधान करता है कि किसी भी पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए सरकार नौकरियों में स्थान या पद आरक्षित कर सकती है। इसके साथ ही संविधान का अनुच्छेद- 355 सरकार को यह अधिकार देता है कि समाज के पिछड़े और दलित वर्ग के लोगों को विशेष सुविधा प्रदान कर सकती है। हालांकि संविधान में पिछड़े वर्ग की परिभाषा नहीं दी गई है, संविधान में पिछड़े समुदायों के लिए नौकरी में आरक्षण की कोई निश्चित सीमा नहीं है। लोक सेवाओं से आरंभ होकर विधायक प्रतिनिधि संस्थाओं में सैनिक संस्था में प्रवेश हेतु प्राथमिकता से पेशेवर के आर्थिक उन्नति के लिए प्रेरणा स्रोत विभिन्न सुधारक कार्रवाई में सही में स्थान का आरक्षण उपलब्ध है। इस प्रकार आरक्षण तीन क्षेत्रों में होता हैं- विधायी, शैक्षणिक संस्थाओं और सरकारी सेवा में। प्रथम क्षेत्र में आरक्षण का प्रावधान संविधान में स्वयं किया गया है, जबकि द्वितीय संसद द्वारा बनाए गए हैं और तृतीय आरक्षण नौकरियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की प्रतिष्ठा से संबंधी कार्रवाई संस्था द्वारा प्रदान किया गया । आरंभ में आरक्षण और विशेष सुविधाएं केवल 10 वर्षों के लिए प्रदान की गई थी जिसे क्रम से बढ़ाया जा रहा है।

संविधान के भाग तीन में समानता के अधिकार की भावना निहित है। इसके अंतर्गत अनुच्छेद- 15 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति, प्रजाति, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद-15(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है तो वह सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। अनुच्छेद- 16 में अवसरों की समानता की बात कही गई है। अनुच्छेद- 16(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है कि सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों को

पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उनके लिए पदों को आरक्षित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार अधिकतम आरक्षण की सीमा 50प्रतिशत है लेकिन कुछ राज्यों में यह सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा है। आरक्षित वर्ग के व्यक्तियों को भारत सरकार के नौकरी एवं शिक्षण संस्थाओं में 49.5प्रतिशत तक का आरक्षण प्राप्त है। वर्तमान में केंद्र सरकार का आरक्षण प्रणाली इस प्रकार है -अनुसूचित जाति- 22.5प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति- 15प्रतिशत, पिछड़ा वर्ग- 27प्रतिशत। राज्यों में प्रतिनिधित्व अनुपात अलग-अलग हैं, इनके निर्धारण का आधार संबंधित राज्य की जनसंख्या है।

## 2.12 लोक सेवाओं में पदों का आरक्षण

भारत में जाति और समुदाय के आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण काफी समय से प्रचलित प्रणाली है। विशेष रूप से गैर ब्राह्मण समुदाय और जातियों के द्वारा सभी सरकारी सेवा में सभी जातियों की पर्याप्त एवं उचित प्रतिनिधित्व के लिए कई बार आंदोलन और प्रदर्शन भी किए गए हैं। 1919 में मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार में गैर-ब्राह्मण वर्ग के लोगों के लिए सरकारी सेवाओं में कुछ निश्चित और विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया था। लोक सेवाओं में असंतुलित प्रतिनिधित्व को हटाने की मांग को लेकर यह असुविधा प्राप्त वर्ग के लोगों को आगे बढ़ाने का प्रयास था। 1925 में भारत सरकार ने सरकारी सेवाओं में अल्पसंख्यक समुदाय के लिए कुछ प्रतिशत पद आरक्षित करने का कार्य आरंभ किया था। 1934 में यह आदेश भी जारी किया गया था कि सभी रिक्त पदों में 25प्रतिशत स्थान मुसलमानों के लिए आरक्षित होगा, जिन्हें प्रत्यक्ष नियोजन कैसे भरा जाएगा तथा 8.5 प्रतिशत स्थान अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिए आरक्षित होगा। 1943 में सरकार ने रिक्त पदों में से 8.5 प्रतिशत पद अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कर दिया तथा 1946 में इसे 12.5 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया, किंतु अनुसूचित जनजातियों को ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी प्रकार का कोई प्रश्न ही आरक्षण नहीं दिया गया और जनजातियों को नौकरी में आरक्षण को आरक्षण की मांग को स्वतंत्रा के पश्चात सरकार द्वारा स्वीकार किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत इन तथ्यों को समाहित किया तथा संपूर्ण आरक्षण नीति का पुनरावलोकन भी किया। अनुसूचित जाति के समुदाय के छोड़कर शेष अन्य वर्गों के लिए खुली प्रतियोगिताओं में आरक्षण व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अनंतर 1951 में संविधान संशोधन कर अनुच्छेद- 15(4) में यह प्रावधान किया गया कि जिन सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व इन वर्गों का नहीं है, ऐसे सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े लोगों के विकास के लिए विशेष प्रबंध किया जाए। भारत सरकार की तरह राज्य सरकारों ने भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया है। आरक्षण नीति को लागू करने के लिए नियम और विनियम बनाए गए हैं और अनुसूचित जातियों के लिए 12.25 प्रतिशत स्थान आरक्षित थी जिसे 1970 में बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। वर्तमान समय में 15 प्रतिशत नौकरियां अनुसूचित जाति एवं 7.5 प्रतिशत नौकरी अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किया गया। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 वर्षों के लिए आरक्षण दिया गया था जिसे लगातार बढ़ाया जा रहा है।

1953 में गठित काका कालेलकर आयोग का मुख्य काम सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन था। पिछड़ी जाति शब्द का जन्म भी इसी कमेटी से हुआ था, परंतु पिछड़ी जाति से संबंधित सिफारिशों को सरकार ने अस्वीकार किया था। लेकिन अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति से संबंधित सभी सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया। अनंतर 1979 में सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति के मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग का गठन हुआ था, परंतु काफी लंबे समय तक इसकी सिफारिशें ठंढे बस्ते में पड़ी रहीं। 1990 में मंडल आयोग की सिफारिशों को तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने सरकारी नौकरियों में लागू किया था। वर्ष 2006 से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरू हुआ और कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत तक चला गया। 1992 में सुप्रीम कोर्ट ने साफ-साफ कहा गया था कि

आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। भारत के कुछ राज्यों को छोड़कर (जैसे- तमिलनाडु) बाकी सभी राज्यों में 50 सीमा लागू है।

भारत में आरक्षण की शुरूआत सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को समृद्ध बनाने के लिए हुई थी लेकिन समय के साथ आरक्षण वोट बैंक की राजनीति का शिकार बनती चली गई। वर्तमान समय में हर राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के लिए आरक्षण शब्द का उपयोग कर रहे हैं, जिसके कारण आरक्षण का मूल उद्देश्य समाप्त होता जा रहा है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. भर्ती की ठोस नीति की आवश्यकता को सर्वप्रथम किस देश ने अनुभव किया था?
2. आधुनिक समय में कौन सा सबसे पहला देश है जिसने भर्ती प्रणाली का विकास किया?
3. भारत में योग्यता का सिद्धांत कब प्रारंभ हुआ?
4. इनामी पद्धति किस देश में प्रचलित थी?
5. काका कालेलकर आयोग कब गठित किया गया था?

## 2.13 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की भर्ती एवं चयन कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया है, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों की भर्ती प्रणाली निष्पक्ष एवं पारदर्शी होनी चाहिए। प्रशासकीय संरचना में भर्ती की प्रक्रिया संपूर्ण प्रशासन तंत्र की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। लोक प्रशासन में भर्ती देश की संवैधानिक आवश्यकता और राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुकूल होना आवश्यक है जबकि निजी प्रशासन के समक्ष ऐसी कोई सीमा नहीं होती। संगठन को ऐसे योग्यता प्राप्त कर्मचारियों को पर्याप्त संख्या में आपूर्ति की व्यवस्था करना आवश्यक होता है जो उसके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक विभिन्न कार्य संपादित कर सकें । कर्मचारियों की इस आपूर्ति के कार्य को भारतीय चयन द्वारा संपन्न किया जाता है। कार्मिक प्रशासन में भर्ती पहला और सबसे महत्वपूर्ण चरण है। यदि भर्ती पद्धति दोषपूर्ण है तो अयोग्य और असक्षम एवं अयोग्य लोग लोक सेवाओं में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे प्रशासन का पतन हो जाता है।

## 2.14 शब्दावली

मानदंड- नियम या आधार, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, विचारधारा- विचारों का समूह जो निहित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आधार होता है, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, आंदोलन- असंतोष की अभिव्यक्ति का माध्यम, उपबंध- प्रावधान

## 2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** चीन, **2.** प्रशा, **3.** 1853 से, **4.** अमेरिका में, **5.** 1953 में

## 2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची प्रतिशत

1. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
2. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।

## 2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
2. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
3. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

## 2.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भर्ती के अर्थ एवं महत्व का वर्णन कीजिए।
2. भर्ती के उद्देश्य एवं इसके प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. भर्ती की अर्हता पद्धतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. अर्हता निर्धारण की विधियों का मूल्यांकन कीजिए।
5. श्रेष्ठ भर्ती नीति की आवश्यक शर्तें क्या हैं? विश्लेषण कीजिए।
6. भारत में भर्ती की पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
7. आरक्षण क्या है? लोक सेवाओं में पदों के आरक्षण का मूल्यांकन कीजिए।

# इकाई- 3 पदोन्नति

**इकाई की संरचना**

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 पदोन्नति का अर्थ
3.3 पदोन्नति का महत्व
3.4 पदोन्नति के प्रकार
3.5 पदोन्नति के सिद्धांत
3.6 पदोन्नति के लिए अर्हता- जांच पद्धतियाँ
3.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें
3.8 भारत में पदोन्नति पद्धति
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 3.0 प्रस्तावना

पदोन्नति आधुनिक कार्मिक प्रशासन का महत्वपूर्ण आयाम है। लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति में निहित है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। इसीलिए पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' शब्द का भी प्रयोग किया जाता रहा है। लोक सेवक और कार्मिक प्रशासन पदोन्नति व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं। पदोन्नति के फलस्वरुप लोक सेवा के कार्य और दायित्व बढ़ते हैं तथा कार्मिक प्रशासन को उपयुक्त पद हेतु उपयुक्त कार्मिक मिल जाता है। विलोबी ने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है। इसका कारण यह है कि पदोन्नति कार्य के सफल और संतोषजनक क्रियान्वयन के द्वारा ही संपूर्ण कार्मिक व्यवस्था की सफलता निर्धारित की जाती है। किसी भी संगठन में कार्यरत कार्मिकों की कार्यकुशलता उनकी संतुष्टि तथा मनोबल के स्तर से भी प्रभावित होती है। पदोन्नति पद, स्तर, सम्मान में वृद्धि करने तथा योग्यता के आधार पर आगे बढने से सम्बद्ध है। यह सरकारी कर्मचारी को श्रम एवं निष्ठा से कार्य करने के लिए एक पुरस्कार के रूप में दी जाती है । कार्य कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा अधिकारी की प्राप्ति तथा कर्मचारियों के जीवन में प्रगति और विकास करने की स्वभाविक मानवीय अभिलाषा को पदोन्नति पूर्ण करती है। वहीं दूसरी ओर सरकार के लिए पदोन्नति अप्रत्यक्ष भर्ती की एक पद्धति है जिसके माध्यम से सेवारत लोगों में से योग्य और प्रतिभाशाली लोगों के चयन के द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरा जाता है।

इस इकाई के माध्यम से पाठकों को पदोन्नति के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है। साथ ही पदोन्नति सिद्धांत जैसे अर्हता का सिद्धांत बनाम वरिष्ठता सिद्धांत, पदोन्नति के प्रकार एवं विधियों, अतीत में अपनाई गई तथा वर्तमान में प्रचलित पदोन्नति पद्धति की व्याख्या भी करेंगें। साथ ही इसमें

लोक सेवकों के पदोन्नति की अवधारणा, पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी चर्चा होगी।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- पदोन्नति के अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही पदोन्नति के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- भारत में पदोन्नति की प्रणाली को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- पदोन्नति की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

## 3.2 पदोन्नति का अर्थ

लोक सेवकों को कार्यकुशल एवं दक्ष बनाये रखने की सबसे बड़ी प्रेरणा उनकी पदोन्नति है। पदोन्नति का सम्बन्ध केवल उन्हीं कार्मिकों से होता है जो कि पहले से संगठन में किसी पद पर होते हैं। पदोन्नति के लिए 'भीतर या अन्दर से भर्ती' का भी प्रयोग किया जाता रहा है। पदोन्नति का अर्थ है- दायित्वों एवं वेतनमान में वृद्धि होना। पदोन्नति का सम्बन्ध प्रत्येक वर्ष होने वाला वार्षिक वेतन वृद्धि से नहीं है वरन् इसका अर्थ कर्मचारी की पद सम्बन्धी प्रस्थिति में वृद्धि से भी है।

पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द प्रमोट (promote) का पर्यायवाची है, जबकि आंग्ल भाषा शब्द प्रमोट लैटिन भाषा के शब्द प्रिमोवीर (promovere) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- आगे बढ़ाना। वस्तुतः पदोन्नति से अर्थ पद और स्तर में वृद्धि से है। पदोन्नति को विभिन्न विद्वानों ने निम्न शब्दों में परिभाषित किया है-

विलियम जी. टॉरपे के अनुसार, ''पदोन्नति पदाधिकारी के एक पद से दूसरे पद पर पहुँचने की ओर संकेत करती है जो उच्चतर श्रेणी या उच्चतर न्यूनतम वेतन वाला होता है। पदोन्नति का अर्थ कर्मचारी के कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों में वृद्धि करना है।"

विलोबी के शब्दों में, ''वेतन वृद्धि का अर्थ केवल यह है कि कर्मचारी के वर्तमान पद अथवा उसके कार्य की प्रकृति में कोई परिवर्तन किये बिना उसके वेतन में वृद्धि कर दी गयी है। पदोन्नति का अर्थ है कि कर्मचारी को निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर नियुक्त कर दिया गया है।"

एल. डी. ह्वाइट के शब्दों में, ''पदोन्नति का अर्थ है- किसी एक पद से दूसरे पद पर नियुक्ति ऐसा पद जो कि उच्चतर श्रेणी का है तथा जिसमें जटिलतर प्रकृति एवं अधिक बड़े उत्तरदायित्व का कार्य करना पड़ता है। इसमें पदनाम परिवर्तन व वेतन वृद्धि शामिल हैं।"

पॉल पिगर्स एवं चार्ल्स ए. मेयर्स के अनुसार, ''पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक निपुणताओं तथा विशेष रूप से बढ़ी हुई आय अथवा वेतन दर से प्रदान करना है।''

फिलप्पो के अनुसार, ''पदोन्नति किसी में एक कार्य से दूसरे कार्य पर परिवर्तन शामिल है जो ऐसे बेहतर स्तर एवं उत्तरदायित्व प्रदान करता है।"

स्कॉट एवं स्प्रीगल के अनुसार, "पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानांतरण है जो पहले से अधिक धन अथवा ऊंचा स्तर प्रदान करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पदोन्नति में निम्नलिखित तीन तत्त्व सम्मिलित हैं- बेहतर कार्य एवं स्तर, अधिक उत्तरदायित्व तथा अधिक वेतन। स्पष्ट होता है कि पदोन्नति द्वारा विभाग के अन्दर ही एक उच्चतर पद पर पदस्थापना होती है। पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित

गतिविधि है। यह कर्मचारी को उच्च पद की जिम्मेदारी सौंपे जाने की प्रक्रिया है। उच्च पद रिक्त होने पर विभाग के निम्न स्तरीय कर्मचारियों में से उसकी पूर्ति की जाती है। इस उच्च पदस्थिति में उत्तरदायित्वों व कार्यों में वृद्धि हो जाती है तथा उसके अनुसार ही वेतन वृद्धि भी होती है। शासन के लिए पदोन्नति प्रत्यक्ष पद्धति है, अर्थात पूर्व से सेवारत लोगों में से योग्य एवं प्रतिभावान लोगों के चयन द्वारा उच्च स्तरीय रिक्त पदों को भरना है। वही सरकारी कर्मचारियों के लिए पदोन्नति निम्न स्तरीय पद, वर्ग या सेवा से उच्च कार्य, अधिकार एवं उत्तरदायित्व सहित उच्च स्तरीय पद वर्ग या सेवा में एक तरक्की है। इसका अर्थ कर्मचारियों के लिए पद, प्रतिष्ठा तथा वेतन में वृद्धि से भी है। समान पद या उत्तरदायित्व वाली सेवा में एक पद से दूसरे पद पर स्थानांतरण को पदोन्नति नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार वेतन में वार्षिक वृद्धि भी पदोन्नति नहीं है। पदोन्नति का अर्थ पद और वेतनमान दोनों में परिवर्तन से है।

अत: पदोन्नति एक कर्मचारी की उच्च स्तर पर प्रगति है जहाँ पर उसके कौशल ज्ञान एवं सेवाओं का बेहतर उपयोग किया जा सकेगा। किन्तु सभी पदोन्नतियों में से सभी गुण नहीं पाए जाते। कई बार पदोन्नति में उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत व अधिक जिम्मेदारी तो मिलती है पर वेतन में वृद्धि नहीं। ऐसी पदोन्नति को 'शुष्क पदोन्नति' कहा जाता है। इसी प्रकार, कभी-कभी कर्मचारी की वेतन वृद्धि तो कर दी जाती है परन्तु उच्च पद, बेहतर प्रतिष्ठा व जिम्मेदारी नहीं मिलती, इसे उच्चीकरण कहा जाता है। अत: पदोन्नति कर्मचारी की कार्यकुशलता एवं संगठन के प्रति वफादारी का पुरस्कार है। यह कर्मचारी की ऐसे पद पर प्रगति है जहाँ पर उसके ज्ञान कौशल एवं सेवाओं का बेहतर प्रयोग हो सकेगा।

पदोन्नति की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट है कि इसके निम्नलिखित महत्व पूर्ण तत्त्व हैं-

- प्रगति- पदोन्नति में संगठनात्मक ढांचे को उच्च स्तर के पद पर पहुँचना शामिल है। यह एक कर्मचारी के निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर पहुँचने की प्रक्रिया है। इससे कर्मचारी के स्तर में वृद्धि होती है।
- अधिक वेतन- प्रमोशन का एक अन्य महत्व पूर्ण तत्त्व, कर्मचारी को अधिक आय अथवा वेतन में लाभ है। परन्तु कभी-कभी कर्मचारी को उच्च पद एवं जिम्मेदारी तो सौंप दी जाती है पर वेतन वृद्धि नहीं की जाती है। इससे 'शुष्क पदोन्नति' कहा जायेगा। इसी प्रकार अपग्रेडेशन में कर्मचारी के वेतन में वृद्धि कर दी जाती है, परन्तु उसे उच्च पद एवं जिम्मेदारी नहीं सौंपी जाती।
- बेहतर जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद- पदोन्नति से कर्मचारी की जिम्मेदारी, प्रतिष्ठा एवं पद में वृद्धि होती है। यह एक ऐसा पद है जिसके साथ बेहतर प्रतिष्ठा एवं उच्च जिम्मेदारी जुड़े होते हैं।
- पदोन्नति के अन्य तत्त्वों में बेहतर सुविधाएं, अच्छी कार्य दशाएँ, उच्च पद की चुनौतियाँ, कौशल, ज्ञान व गुणों के बेहतर उपयोग के अवसर एवं कर्मचारी का विकास शामिल है।

राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए पदोन्नति अत्यावश्यक है। आज पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। पदोन्नति की विशेषताएँ या लक्षण निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति में पद का नाम परिवर्तित हो जाता है। पदोन्नति से प्राप्त पद अधिक श्रेष्ठ, सम्मानजनक और चुनौतीपूर्ण होता है।
- यह निम्न पद से उच्च पद पर पहुचंने की प्रक्रिया है।

- पदोन्नति से कार्मिक का वेतन भी बढ़ जाता है। यह मात्र वेतन वृद्धि नहीं है अपितु इसका पहला तत्व ऊंचे पद की प्राप्ति है और वेतनवृद्धि इसका परिणाम है।
- पदोन्नति प्रतिष्ठा तथा सम्मान का सूचक है । पदोन्नति में कार्मिक के दायित्व उच्च तथा अधिक हो जाते हैं।
- यह संगठन की आंतरिक प्रक्रिया है। अर्थात संगठन में पहले से कार्यरत कार्मिकों में से ही पदोन्नति होती है।
- पदोन्नति का निर्णय स्वयं कार्मिक नहीं करता अपितु उच्चाधिकारी करते हैं, लेकिन पदोन्नति लेने या अस्वीकार करने का अधिकार संबंधित कार्मिक का होता है।

## 3.3 पदोन्नति का महत्व

पदोन्नति जीवन-वृति सेवा का एक अनिवार्य अंग है। कार्मिक प्रशासन में सर्वोत्तम लोगों को भर्ती करना प्रथम एवं प्रमुख सोपान है। इसके साथ ही प्रतिभाशाली लोगों को सेवा में बनाए रखना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के अवसर से ही उत्तम योग्य एवं कार्य कुछ लोगों को सिविल सेवा में बनाए रखना संभव है। लोक सेवा के लिए चुने गए कर्मचारी एक लंबे समय तक सेवा में उन्नति एवं विकास करते हैं। पदोन्नति की विशेष योजना श्रेष्ठ एवं प्रतिभाशाली लोगों को इस सेवा में आने के लिए आकर्षित करती है। कार्यकुशलता ,कठिन श्रम एवं निष्ठावान तथा परिश्रम से कार्य करने के लिए पदोन्नति एक संभावित पुरस्कार है। प्रत्येक मनुष्य जीवन में प्रगति और विकास चाहता है और दूसरों में अपनी पहचान बनाना चाहता है। विकास और पहचान की आधारभूत इच्छाओं की पूर्ति पदोन्नति के साधन द्वारा की जा सकती है। पदोन्नति की एक अच्छी पद्धति कर्मचारियों में अपनी सेवा के प्रति लगाव की भावना को बढ़ाती है तथा संगठन के नीतियों और कार्यक्रमों में निरंतरता बनाए रखने में योगदान देती है। सिविल सेवा में अच्छी प्रथा एवं परंपरा का निर्माण करने के लिए पदोन्नति अवसर भी प्रदान करती है। सरकारी सेवा के रिक्त पदों को बाह्य अभ्यर्थियों की प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा तथा पहले से सेवारत कर्मचारियों को पदोन्नत कर भरा जाता है। भर्ती की प्रत्यक्ष विधि को पदोन्नति पद्धति कहा जाता है। विश्व के लगभग सभी देशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियों को स्वीकार किया गया है।

पदोन्नति प्रक्रिया की उपयोगिता निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण है। पदोन्नति के कारण एक तरफ संगठन की जीवन्तता बनी रहती है तो दूसरी ओर कर्मचारियों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। सरकारी सेवा के कर्मचारियों के निष्ठा पूर्वक कार्य करने के लिए पदोन्नति एक पुरस्कार के रूप में प्रदान की जाती है। पदोन्नति के अभाव में कर्मचारी लाभ एवं अभिप्रेरण से वंचित हो जाता है। पदोन्नति प्रतिभाशाली युवाओं को सरकारी सेवा में अभिप्रेरित करने का एक सशक्त माध्यम है। कुशल, सुयोग्य और संतुष्ट सिविल सेवा कर्मचारियों की प्राप्ति हेतु पदोन्नति एक आवश्यक तथ्य है। जीवन में प्रगति एवं विकास की स्वभाविक मानसिक लालसा पदोन्नति से ही पूर्ण होती है तथा पदोन्नति सरकारी कर्मचारियों की नैतिकता को भी प्रोत्साहित करती है। पदोन्नति के महत्व निम्न हैं-

1. सिविल सेवा में अच्छी प्रथा और परंपरा का निर्माण करने के लिए तथा सरकार की इस सद्भावना से जुड़ने में पदोन्नति पद्धति सहायक होती है।
2. यह अनुभवी कर्मचारियों को संगठन में बनाए रखती है।
3. सेवा में कर्मचारियों की निरंतरता, उनको उच्च से उच्चतर स्तर के उत्तरदायित्व निभाने की योग्य बनाती है तथा कार्यों द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव और क्षमता का सदुपयोग पदोन्नति देने के लिए किया जाता है।
4. उच्च स्तरीय सरकारी सेवा में पदोन्नति के पर्याप्त अवसर प्रशासन की कार्य कुशलता में वृद्धि करते हैं।

5. पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का अवसर प्रदान करती है और कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देता है।
6. पदोन्नति प्रत्येक कर्मचारी के लिए व्यापक प्रेरणा का स्रोत है। यह कर्मचारियों के लिए एक ऐसा वह आकर्षण है जो उस में आंतरिक उर्जा का संचार करता है। यह कार्मिकों को श्रेष्ठ कार्य करने को प्रोत्साहित करती है।
7. यह सेवाओं में कदाचार और भ्रष्टाचार को भी कम करने में सहायक होता है। ईमानदारी, निपुणता और निष्ठा का विस्तार भी पदोन्नति करती है।
8. इस व्यवस्था से कार्मिक-विकास को दिशा मिलती है। पदोन्नति की शृंखला उपलब्ध होने पर निम्न पदों पर भी योग्य कार्मिक आना पसन्द करते हैं। पदोन्नति के कारण कर्मचारी तथा संगठन में अपनत्व का रिश्ता कायम होता है।

पदोन्नति के कारण संगठन की प्रतिष्ठा तथा कार्यकुशलता बढ़ती है, क्योंकि जिन संगठनों में पदोन्नति के कम अवसर होते हैं, उनको योग्य एवं श्रेष्ठ कर्मचारी शीघ्र ही छोड़ देते हैं। वृत्तिका विकास एवं मनोबल वृद्धि में पदोन्नति का महत्व स्वयंसिद्ध है। पदोन्नति प्रक्रिया से कार्मिक एवं संगठन दोनो के लिए संगठन की जीवंतता बनी रहती है तो दूसरी और कर्मचारियों की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति भी होती है। पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है। ए. डब्ल्यू. प्रॉक्टर के अनुसार पदोन्नति की कर्मचारियों के लिए पुरस्कार अथवा संभावित पुरस्कार के रुप में सीधी सार्थकता है। वास्तविक पदोन्नति एक पुरस्कार है, जबकि पदोन्नति का विषय एक संभावित पुरस्कार हैं जो भविष्य की वस्तु है, लेकिन वह अत्यंत महत्व का है। पदोन्नति कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है, जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है।

उच्च स्तरीय सरकारी सेवाओं में यदि पदोन्नति के पर्याप्त अवसर होंगे, तभी निम्न स्तरीय सेवाओं में भी प्रतिभाशाली लोग आने को तैयार होंगे तथा इससे प्रशासन में कार्यकुशलता की वृद्धि होगी। समय के साथ सरकारी सेवाओं में नवीनतम व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। सेवा में उनकी निरंतरता उच्च से उच्च स्तर दायित्व निभाने के योग्य बनाने में मददगार सिद्ध होती है। लोक सेवा में चयनित कर्मचारियों के द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव क्षमता का उपयोग उन्हें अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यों पर कार्य करने का अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार मानव शक्ति का सर्वोत्तम उपयोग पदोन्नति की पद्धति द्वारा ही संभव है। पदोन्नति कर्मचारियों की बढ़ती हुई दैनिक बहुत ही आवश्यकताओं को पूर्ति करने का शुभ अवसर प्रदान करता है तथा कर्मचारी इसके बदले सेवा में अपना सर्वोत्तम योगदान देते हैं। पदोन्नति सेवाओं में कदाचार की घटनाओं को भी कम करने में सहायक होती है तथा शिकायत की संभावना भी संस्थानों में कम हो जाती है। सरकारी कार्यों को अत्यधिक ईमानदारी, निपुणता तथा निष्ठा से करने में पदोन्नति एक प्रेरक स्रोत के रूप में कार्य करती है वहीं दूसरी ओर पदोन्नति अनुशासन एवं नैतिकता को भी बढ़ावा देती है। संगठनों द्वारा कर्मचारियों को पदोन्नति की उद्देश्यों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए की जाती है-

- कर्मचारियों को अधिक क्रियाशीलता हेतु अभिप्रेरित करना। कर्मचारियों में आत्म-विकास को बढ़ावा देना तथा उन्हें उनकी पदोन्नति के अवसरों की प्रतीक्षा करने हेतु तैयार करना।
- संगठन के उच्च स्तर के कार्यों के लिए आवश्यक ज्ञान एवं निपुणताओं की प्राप्ति हेतु कर्मचारी में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास करना तथा उत्साह का संचार करना।

- योग्य एवं सक्षम लोगों को संगठन के प्रति आकर्षित करना तथा उनकी सेवायें प्राप्त करना।
- संगठनात्मक पद सोपान में समुचित स्तरों पर कर्मचारियों के ज्ञान एवं निपुणताओं का उपयोग करना, जो कि संगठनात्मक प्रभावशीलता तथा कर्मचारी सन्तुष्टि में परिणत होता है।
- कर्मचारियों में संगठन के प्रति निष्ठा एवं अपनत्व की भावना को विकसित करना तथा उनके मनोबल को ऊंचा करना।
- अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निमार्ण हेतु संगठन के प्रति बचनबद्ध एवं निष्ठावान कर्मचारियों को पुरस्कृत करना।
- श्रम संघों का संगठन के प्रति विश्वास सृजन का प्रयास करना।
- परिवर्तित वातावरण में उच्च स्तर के रिक्त पदों का उत्तरदायित्व ग्रहण करने हेतु तत्पर रहने के लिए कर्मचारियों के समक्ष आन्तरिक स्त्रोत का विकास करना आदि।

## 3.4 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नति उच्च प्रतिष्ठा, बेहतर हैसियत तथा अधिक जिम्मेदारी बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। पदोन्नति सामान्यतया तीन प्रकार की होती है-

1. **क्षैतिजीय पदोन्नति या श्रेणी आधारित-** एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति जैसे कनिष्ठ लिपिक की वरिष्ठ लिपिक के पद पर या तृतीय श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में या इस प्रकार की पदोन्नति। इस प्रकार की पदोन्नति में उत्तरदायित्वों एवं आय में वृद्धि तथा पद नाम में परिवर्तन सम्मिलित होता है। परन्तु, पदोन्नति कर्मचारी कार्य वर्गीकरण के अन्तर्गत ही रहता है, अर्थात इसमें मौलिक कार्य वर्गीकरण ज्यों का त्यों ही रहता है।
2. **लम्बवत् पदोन्नति या वर्ग आधारित-** इस प्रकार की पदोन्नति बढ़े हुए उत्तरदायित्वों, प्रतिष्ठा तथा आय के साथ-साथ कार्य की प्रकृति में परिवर्तन में परिणत होती है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति कार्य वर्गीकरण की सीमाओं के बाहर होती है तो वह लम्बवत् पदोन्नति कहलाती है। जैसे निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में पदोन्नति जैसे द्वितीय श्रेणी से प्रथम श्रेणी या लिपिक से कार्यकारी वर्ग में पदोन्नति।
3. **सेवा आधारित-** निम्न स्तरीय सेवा से उच्चस्तरीय सेवा में पदोन्नति अर्थात राज्य सेवा से अखिल भारतीय सेवा में पदोन्नति।

इसके साथ ही कभी-कभी पारिश्रमिक में वृद्धि के स्थान पर शुष्क पदोन्नति भी की जाती है। इसमें पद नाम भिन्न होता है, परन्तु उत्तरदायित्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। पदोन्नत कर्मचारी को एक अथवा दो वार्षिक वेतन वृद्धि दी जा सकती है।

## 3.5 पदोन्नति के सिद्धांत

किसी भी सरकारी सेवा में पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण पदोन्नति के मानक सिद्धांतों की आवश्यकता होती है। पदोन्नति हेतु सीमित संख्या में पदों की उपलब्धता तथा नियमित अंतराल पर स्थान रिक्त न होने के कारण निम्न स्तरीय कर्मचारी को अत्यधिक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और सभी इच्छुक कर्मचारियों को पदोन्नति देना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। व्यवहारिक रूप से प्रशासन की संरचना एक पिरामिड के समान होती है जिसमें जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं पदों की संख्या घटती जाती है और अंत में पिरामिड एक बिंदु पर जाकर समाप्त हो जाती है। पदोन्नति के अवसर सीमित होने के कारण आवश्यकता इस बात की महसूस की जाती है कि पदोन्नति पूर्ण परिभाषित और मान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर ही आधारित होना चाहिए।

संगठनों द्वारा अपनी प्रकृति, आकार तथा प्रबन्धन के अनुसार पदोन्नति के लिए विभिन्न आधार अपनाये जाते हैं। सामान्यत: पदोन्नति के दो सुस्थापित आधार- योग्यता तथा वरिष्ठता हैं। पदोन्नति के सिद्धांत जिन्हें एक विकल्प या संयुक्त रूप से अपनाया जाता है, वे हैं-

1. **वरिष्ठता सिद्धांत-** वरिष्ठता पर आधारित पदोन्नति एक परम्परागत एवं सरल प्रणाली है। इसे 'ज्येष्ठता का सिद्धान्त' भी कहा जाता है। इसमें लम्बी अवधि से कार्यरत व्यक्तियों को पदोन्नति प्रदान की जाती है। अन्य शब्दों में पहले भर्ती होने वाले व्यक्ति की पदोन्नति पहले होती है। वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की शुरूआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में ही हो चुकी थी। यह सिद्धान्त अनुभवी कार्मिक को पुरस्कार में विश्वास करता है। वरिष्ठता को पदोन्नति के आधार के रूप में मानने के पीछे यह तर्क है कि एक ही कार्य पर सेवा की अवधि तथा किसी कर्मचारी द्वारा संगठन के अन्तर्गत अर्जित ज्ञान की मात्रा एवं निपुणता के स्तर के बीच एक सकारात्मक सह-सम्बन्ध होता है। यह व्यवस्था इस प्रथा पर भी आधारित होती है कि जो संगठन में पहले आयेगा उसे ही समस्त हित-लाभों एवं विशेषाधिकारों में पहले अवसर दिये जाने चाहिये।

   वरिष्ठता सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है जिसका अर्थ किसी पद विशेष श्रेणी या वेतनमान में सेवा की अवधि से है। यह एक आसान प्रणाली है जो वस्तुनिष्ठ है। वरिष्ठता सिद्धांत पक्षपात एवं भाई-भतीजावाद के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ता, बल्कि यह उम्र और अनुभव को अधिक महत्व देता है। इस प्रकार यह समाज में स्थापित प्रथा परंपरा के अनुसार एक प्रवृत्ति है और प्रजातांत्रिक भी है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभाशाली नहीं हो सकता किंतु समय के साथ उसमें वरिष्ठ होने के लिए प्रतिबद्धता निहित होती है। यह पद्धति स्वचालित है। कर्मचारियों को पदोन्नति के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती है। इस पद्धति में आन्तरिक झगड़े समाप्त हो जाते हैं तथा राजनीतिक दवाब का भी कोई भय नहीं रहता है। अधिक आयु व अनुभव वाले व्यक्तियों के उच्च पदों पर आने से उनकी प्रतिष्ठा बनी रहती है। पदोन्नति निश्चित होने के कारण योग्य व्यक्ति इन सेवाओं की ओर आकर्षित होते हैं। पदोन्नति के इस आधार का श्रम संघों द्वारा प्रबल समर्थन किये जाने से यह विवादों को भी कम करने में सहायक होता है।

   पदोन्नति का वरिष्ठता सिद्धांत सबसे पुराना और सरल तरीका है। फाइनर के अनुसार यह सिद्धांत स्वभाविक है और यह कर्मचारियों की अनावश्यक और अनुचित गतिरोध को समाप्त कर देता है। इस प्रकार की पदोन्नति में निष्पक्षता, कार्मिक उपलब्धता, स्वचालन, मनोबल निर्माण, न्याय स्थापना, अहम टकराव से बचाव आदि लाभ या गुण हैं तो दूसरी ओर दोष भी बहुत हैं। वरिष्ठता सिद्धांत में ढेर सारी खामियां समय के साथ प्रतीत होती हैं। सेवा में जो वरिष्ठ हैं और जो पदोन्नति के लिए उपयुक्त हो यह आवश्यक नहीं है। सेवा की अवधि पदोन्नति हेतु उपयुक्तता का मापदंड नहीं है। पदोन्नति के लिए अनुभव और वरिष्ठता युक्ति मूलक मापदंड नहीं है। एक ही श्रेणी के सभी लोग पदोन्नति के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। वरिष्ठता सिद्धांत यह सुनिश्चित नहीं करता कि अति उपयुक्त लोग ही उच्च स्तरीय पदों पर पदस्थापित किए जाएंगे। वरिष्ठता के कारण पदोन्नति मिलने से संगठन में योग्य कार्मिक बाहर जाना पसन्द करते है। बहुत से कर्मचारी कार्य में रूचि भी नहीं लेते हैं क्योंकि पदोन्नति तो नियत समय पर मिल ही जाती है। सरकारी कर्मचारियों के कार्य पर पूर्णरूपेण प्रतिकूल प्रभाव डालते हुए और कुशल एवं दकियानूसी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति या इस सिद्धांत के अनुसार दी जा सकती हैं। अतः वरिष्ठता सिद्धांत विवेकपूर्ण और न्यायसंगत नहीं है। इसमें युवा और कर्मठ कर्मचारियों का कठिन परिश्रम कार्यकुशलता एवं नेतृत्व का गुण पुरस्कृत नहीं हो सकता है। दूसरी तरफ जहां कठिन परिश्रम करने वाले सजग और उद्यमी लोगों की संगठन में आवश्यकता है वही शारीरिक रूप से कमजोर वृद्ध और कम उद्यमी लोगों को भी उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति दे दी जाती है। ब्रिटेन के नौसेनाध्यक्ष फिशर ने एक बार कहा था,

'ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट हो जाएगा, क्योंकि इसमें वरिष्ठता के सिद्धान्त का पालन किया जाता है।' वस्तुत वरिष्ठता का सिद्धान्त प्रत्यक्षत: योग्यता का शमन करता है।

2. **योग्यता या अर्हता सिद्धांत-** पदोन्नति का यह तरीका अपेक्षाकृत आधुनिक एवं वैज्ञानिक है। इसमें योग्यता का मूल्यांकन करने के बाद पदोन्नति की जाती है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों को कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। योग्यता का सिद्धांत वरिष्ठता के सिद्धांत का प्रतिस्पर्धी है और पदोन्नति के लिए इसके पक्ष में जो तर्क दिए जाते हैं वह लगभग अकाट्य हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि योग्यतम और दक्षता व्यक्ति पदोन्नति के लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।

   अर्हता सिद्धांत या योग्यता सिद्धांत के अनुसार पदोन्नति वरिष्ठतम को नहीं बल्कि योग्यतम व्यक्ति को दी जानी चाहिए अर्थात पदोन्नति के निर्धारण में लोक सेवकों की व्यक्तिगत योग्यता, क्षमता, दक्षता और कार्यकुशलता को ही महत्व दिया जाना चाहिए। वर्तमान युग में नवीन प्रशासनिक व्यवस्था हेतु सक्षम और कठिन परिश्रम करने वालों की आवश्यकता है जिनके पास योग्यता और अर्हता है। इस सिद्धांत को स्वीकार करने के पीछे यह तर्क है कि केवल योग्य और समर्थ लोग ही पदोन्नति के योग्य हैं और अक्षम लोगों को पीछे छोड़ा जाना चाहिए। प्रशासन में उच्च स्तरीय पदों पर केवल निपुण परिश्रमी और योग्य लोगों की आवश्यकता है। अर्हता सिद्धांत पदोन्नति के लिए अति उपयुक्त लोगों का ही चयन करता है। योग्यता सिद्धांत उद्यमी कठिन परिश्रम करने वाले एवं नेतृत्व के गुण रखने वाले कर्मचारियों एवं अधिकारियों को पुरस्कृत करता है और प्रशासन में कार्यकुशलता तथा प्रतियोगी उत्साह को भी बढ़ाता है। यह निम्न स्तरीय कर्मचारियों को अपने कार्य में अभिरुचि लेने तथा परिश्रम के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित भी करता है।

   कर्मचारियों की योग्यता के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित विधियाँ काम में लायी जाती हैं: प्रतियोगी परीक्षाएँ, सेवा अभिलेख एवं विभागाध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय। प्रतियोगी परीक्षाएँ तीन प्रकार की होती हैं- खुली प्रतियोगिता परीक्षा, सीमित प्रतियोगिता परीक्षा तथा उत्तीर्णता परीक्षा।

   सेवा अभिलेख के अंतर्गत कर्मचारियों की सेवा का एक विवरण रखा जाता है, जिसके आधार पर कर्मचारियों की कार्य सम्पन्न करने की क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही कर्मचारी की पदोन्नति में विभागाध्यक्ष का निर्णय सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। पदोन्नति की कोई भी प्रणाली क्यों न हो, किन्तु यह निश्चित है कि पदोन्नति द्वारा कर्मचारियों में सामान्य सन्तोष, कर्त्तव्य निष्ठता, सहयोग एवं उच्च मनोबल की भावना विकसित होती है।

   लेकिन पदोन्नति के योग्यता सिद्धांत को वास्तव में लागू करना थोड़ा कठिन पड़ता है। योग्यता या अर्हता एक जटिल अवधारणा है। यह व्यक्तित्व, चरित्र, बल, नेतृत्व की क्षमता, बौद्धिक योग्यता इत्यादि को समाहित किए हुए हैं और इसे मापना आसान नहीं है। पदोन्नति का यह सिद्धांत वरिष्ठ एवं अनुभवी लोगों के अवसरों को समाप्त कर देता है या न्यून कर देता है और किसी भी प्रकार के अर्जित प्रशासनिक अनुभव और कौशल को पूर्णरूपेण उपेक्षित कर दिया जाता है। यह उन कर्मचारियों में असन्तोष एवं निराशा की भावना को उत्पन्न करती है, जो कि वरिष्ठ होते हैं तथा जिनकी पदोन्नति नहीं होती है। श्रम संघ, योग्यता के आधार पर पदोन्नति के समर्थक नहीं होते हैं, जिसके फलस्वरूप असन्तोष फैलता है तथा औद्योगिक सम्बन्ध भी बिगड़ते हैं।

वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धांत का व्यवहारिक संयोजन, वरिष्ठता एवं अर्हता सिद्धांत, दोनों सिद्धांतों में कुछ खूबियां और कमियां भी हैं। वरिष्ठता एवं योग्यता, दोनों ही पदोन्नति के आधारों के सापेक्षिक गुण-दोषों का विवेचन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों ही आधार के अपने-अपने लाभ हैं तथा साथ ही उनमें दोष भी हैं। व्यवहार में, वरिष्ठता को ही आधार मानकर पदोन्नति की जाती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि योग्यता के महत्व को

स्वीकार ही न किया जाये। वास्तव में, दोनों ही आधारों के प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण अपनाया जाना ही उचित होता है। यदि यह स्पष्ट है कि कोई वरिष्ठ कर्मचारी नये एवं उच्च पद के कार्य को सम्पन्न कर सकता है तो चाहे वह थोड़ा कम ही योग्य क्यों न हो, उसकी पदोन्नति की जानी चाहिये। परन्तु, यदि वह बिल्कुल ही अयोग्य है तो केवल वरिष्ठता के आधार पर उसकी पदोन्नति किये जाने से संगठन का हानि ही होगी। अत: इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय सम्बन्धित कर्मचारी, प्रबन्ध एवं सेवायोजक तीनों के हितों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। अतः प्रशासन में पदोन्नति हेतु वरिष्ठता एवं अर्हता दोनों सिद्धांतों का संयोजन किया जाता है। उपयुक्त और योग्य लोग तथा अनुभव दोनों को इसके अनुसार पदोन्नति का आधार बनाया जाता है। न्यूनतम योग्यता और क्षमता की जांच करते हुए उनमें से वरिष्ठ लोगों को पदोन्नति हेतु चयन में प्राथमिकता देकर पदोन्नति की जाती है। भारत सहित अनेक देशों में पदोन्नति के लिए अपनाई जाने वाली सामान्य पद्धति निम्नांकित गुणों को समाहित किए हुए हैं-

- उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति केवल अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है।
- मध्यमवर्गीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर की जाती है तथा
- निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति वरिष्ठता सिद्धांत के आधार पर की जाती है लेकिन यहां भी अपवाद स्वरूप अर्हता सिद्धांत को नकारा नहीं जाता।

भारत में पदोन्नति जीवन वृति सेवा का अनिवार्य अंग है। अर्हता सिद्धांत और वरिष्ठता सिद्धांत पदोन्नति के दो प्रमुख सिद्धांत हैं जिनके कुछ नकारात्मक तो कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं। अर्हता सिद्धांत को वरिष्ठता सिद्धांत के साथ संयुक्त कर पदोन्नति की एक नई विधि अपनाई गई है जो आज सर्वोत्तम विधि भी मानी जाती है। पदोन्नति प्रणाली में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर सिफारिशें प्रस्तुत की जाती रही हैं। छठे वेतन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में 'निश्चित जीवन वृत्ति अभिवृद्धि' की सिफारिश की जिसमें सभी कर्मचारियों एवं अधिकारियों को वर्ष में तीन पदोन्नति मिलना अनिवार्य कर दिया गया।

## 3.6 पदोन्नति के लिए अर्हता जांच पद्धतियाँ

सरकारी सेवा में पदोन्नति के लिए अनुभव की अपेक्षा योग्यता या अर्हता को अधिक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। लेकिन अर्हता की जांच काफी कठिन कार्य हैं। युवा और अनुभवी वरिष्ठ कनिष्ठ जो एक ही संगठन में समान पदों पर काफी वर्षों से कार्यरत रहते हैं, उन सब को उच्चस्तरीय पदों पर पदोन्नति पाने की अभिलाषा रहती है। लेकिन उच्च स्तरीय पदों में रिक्त स्थान काफी कम होते हैं और इस प्रकार प्रतिस्पर्धा काफी होती हैं।

पदोन्नति हेतु योग्यता या अर्हता जांच के लिए सामान्यतया तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. **लिखित और मौखिक परीक्षा-** अधिकांश देशों में पदोन्नति हेतु लिखित परीक्षा ली जाती है। लिखित और मौखिक परीक्षा जांच करने की एक वस्तुनिष्ठ पद्धति है जो सभी प्रकार के पक्षपात और भाई भतीजावाद को समाप्त करता है। अधिकारियों को किसी विशेष कर्मचारी के बारे में पदोन्नति संबंधी अंतिम निर्णय लेने के कठिन कार्य से मुक्त भी कर देता है । यह कर्मचारियों को नए विकास के प्रति अधिकतम बनाता है तथा स्पर्धा में भाग लेने के लिए प्रत्येक कर्मचारियों को समान अवसर प्रदान करता है। बहुत से देशों में विभागीय परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं, जिसमें पदोन्नति के इच्छुक प्रत्येक विभागीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों को अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। भारत में अर्हता परीक्षा लोक सेवा के साथ-साथ बैंकिंग सेवा में भी है। परिश्रमी और प्रतिभाशाली कर्मचारी इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर शीघ्र ही पदोन्नत हो जाते परंतु लिखित परीक्षा पद्धति में कुछ खामियां भी हैं। पहले से परीक्षा की तैयारी में उलझन के कारण कर्मचारी अपने नियमित प्रशासनिक किए कार्यों की उपेक्षा करते रहते हैं और उसमें निष्ठावान और समर्पित अपने को उपेक्षित पाते हैं। दूसरी ओर अनुभवी कर्मचारी और

वृद्ध कर्मचारी समुचित रूप से पढ़ नहीं पाते और प्रतियोगिता के दौर में पीछे रह जाते हैं। नवयुवक कर्मचारियों के लिए यह प्रतियोगिता परीक्षा एक अच्छे अवसर के रूप में होता है।

लिखित परीक्षा की इन कमियों को दूर करने के लिए बहुत से देशों में लिखित परीक्षा के बाद साक्षात्कार या मौखिक परीक्षा ली जाती है। साक्षात्कार के माध्यम से अभ्यर्थियों के व्यक्तित्व, मनोवृति तथा आचार-व्यवहार इत्यादि को जांच हो जाती है वही साक्षात्कार के समय पूर्व के अनुभवों और अन्य सेवा संबंधी रिकॉर्ड पर भी विचार किया जाता है।

2. **कार्यकुशलता का निर्धारण-** सिविल सेवा में प्रत्येक कर्मचारी किए सेवा संबंधी रिकॉर्ड को रखना एक पुरानी और सार्वदेशिक प्रथा है जो गोपनीय रिपोर्ट, सेवा पुस्तिका, व्यक्तिगत रिपोर्ट या व्यक्तिगत फाइल इत्यादि नामों से सहेज कर रखी जाती हैं। इनका उपयोग पदोन्नति के उद्देश्य से कर्मचारी के सापेक्षिक अर्हता मूल्यांकन के लिए किया जाता है। पदोन्नति से उद्देश्य से कर्मचारियों की अपेक्षित योग्यता एवं अर्हता निर्धारण के लिए यह अपेक्षाकृत नई विधि है जिसे सबसे पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाया गया। सेवा रिकॉर्ड का रखरखाव अपने आप में कार्य क्षमता का निर्धारण नहीं है। बड़े संगठनों में जहां बहुत सी शाखाएं और खंड होते हैं तथा कर्मचारियों की संख्या अधिक होती है। वहां कार्यकुशलता निर्धारण के लिए इस पद्धति को व्यापक रूप से अपनाया गया है।

पदोन्नति के लिए योग्यतम और सर्वाधिक कार्य कुशल कर्मचारियों हेतु कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति सर्वाधिक उपयोगी है। कुशल लोगों को पुरस्कृत करने तथा अपेक्षाकृत कम योग्य लोगों की छटनी एक न्याय पूर्ण और विश्व सनीय पद्धति है। यह न केवल योग्य लोगों को ही बल्कि निष्ठा और सावधानी पूर्वक कार्य करने वाले लोगों को ही पुरस्कृत करती है तथा कर्मचारियों को सतर्क एवं आधुनिकतम बनाती है। कार्यकुशलता निर्धारण पद्धति के इन सकारात्मक बिंदुओं के अतिरिक्त नकारात्मक पहलू भी हैं। यह सेवा रिकॉर्ड तैयार करने वाले वरिष्ठ अधिकारियों के आत्म परक निर्णय पर निर्भर करता है। प्रभावी रूप से आवश्यक सभी गुण, विशेषता या मापदंडों को अपने में समाविष्ट कर लेने वाले अच्छी श्रेणी प्रारूप को तैयार करना एक कठिन कार्य है। इस पद्धति के कारण उपेक्षा, बेईमानी और व्यक्तिगत निर्णय के लिए अवसर की उपलब्धता हो जाती है और बाकी कर्मचारियों के उत्तेजित तथा संकोची होने के कारण उनका मनोबल भी टूट जाता है। यह श्रेणी पद्धति पदोन्नति का कोई स्वतःचालित आधार नहीं होता। अतः अंतिम निर्णय स्वयं पदोन्नति करने वाले अधिकारी को लेना पड़ता है ।

इस विधि में योग्यता और निपुणता का निर्धारण सेवा रिकॉर्ड के आधार पर किया जाता है। कुछ गुण, विशेषता, कार्य निष्पादन, उत्पादन रिकॉर्ड इत्यादि के आधार पर कर्मचारियों की योग्यता का निर्धारण किया जाता है। विशेषताएं जैसे कार्य का ज्ञान, व्यक्तित्व निर्णय, पहल शक्ति , यथार्थता, उत्तरदायित्व लेने की तत्परता, स्वच्छता, समय की पाबंदी, संगठन क्षमता इत्यादि कर्मचारी के उत्पादन को निम्नांकित प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है- सामान्य से ऊपर, सामान्य तथा सामान्य से नीचे।

या इन्हें कुछ इस तरह से निर्धारित किया जा सकता है जैसे भारत और ब्रिटेन में निर्धारित किया जाता है- अति उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, संतोष जनक, साधारण और कमजोर।

कभी-कभी इसे इस प्रकार से भी निर्धारित किया जाता है, जैसे अमेरिका में अत्यधिक संभावना असाधारण, बहुत अच्छा, संतोष जनक, अत्यधिक असंतोषजनक, निम्न और अति निम्न।

कभी-कभी विभिन्न श्रेणियां इंगित कर भी इसे निर्धारण किया जाता है, जैसे अंक आदि।

3. **संगठन के अध्यक्ष का व्यक्तिगत निर्णय-** इस पद्धति में अर्हता का निर्धारण संगठन के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। संगठन के अध्यक्ष का सभी के विषय में जानकारी को आधार बनाकर कार्य निष्पादन के विषय में उनका व्यक्तिगत निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। इसलिए पदोन्नति करते समय वह अपने

निर्णय के अनुसार रुचि के अनुकूल लोगों को ही पदोन्नत करता है। यह पद्धति पक्षपात और भाई-भतीजावाद पर आधारित है। एक प्रकार से यह पुरस्कार पद्धति के समान भी है और निरंकुश प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने वाला भी। प्रशासन में राजनीति और चाटुकारिता को बढ़ावा देने वाला यह निर्णय कर्मचारियों में बहुत ही अनिपुणता, असुरक्षा और अनिश्चितता की स्थिति बनाता है। इस प्रकार पक्षपात पूर्ण पदोन्नति कर्मचारियों के मनोबल को घटा आती है और चापलूसओं के लिए एक अच्छा अवसर भी प्रदान करती है। इस पद्धति में पदोन्नति का निर्णय संगठन के अध्यक्ष के ऊपर होता है तथा यह व्यवसायिक औद्योगिक प्रतिष्ठानों में ही अपनाया जाता है तथा यह इसका प्रचलन सिविल सेवा में नहीं है। फिर भी कुछ उच्च स्तरीय कार्यकारी पदों पर इस पद्धति के अनुसार पदोन्नति की जाती है। विवेक एवं निर्णय का सही उपयोग संबंधित विभागाध्यक्ष ईमानदारी और निष्पक्षता के ऊपर निर्भर करता है।

पदोन्नति में जांच की विभिन्न विधियों का उपयोग सिविल सेवा में विभिन्न स्तरों पर सुविधानुसार अपनाई जाती है। साधारणतया परीक्षा एवं कार्य कुशलता निर्धारण के आधार पर निम्न एवं मध्यम वर्गीय रिक्त पदों को भरा जाता है किंतु उच्चस्तरीय पदों को कार्यकारी अध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय किया नहीं भरा जाता है। वास्तव में पदोन्नति द्वारा रिक्त पदों को भरने के लिए इन विधियों को संयुक्त किया जाता है। विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की इन विधियों को संयुक्त करने की प्रणालियां विकसित की गई है।

प्रो0 विलोबी ने पदोन्नति के लिए पात्रता के दो आधारों का वर्णन किया है- सेवीवर्ग की योग्यताएँ एवं सेवा का स्तर। पद वर्गीकरण के समय प्रत्येक पद के कार्यों, दायित्वों एवं योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है। इन योग्यताओं में ज्ञान, कुशलता, अनुभव, शैक्षणिक योग्यता, लिंग, निवास, तकनीकी कुशलता आदि प्रमुख होती है। इनके बिना पदोन्नति के लिए किसी कर्मचारी के नाम के संबंध में विचार ही नहीं किया जा सकता। जब ये आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की जाती है तभी यह तय हो जाता है कि पदोन्नति के लिए प्रत्याशियों का क्षेत्र व्यापक रहेगा अथवा संकीर्ण। दूसरी ओर, व्यक्तिगत योग्यताओं की भांति पदोन्नति की पात्रता का एक अन्य आधार प्रत्याशियों की सेवा का स्तर है। इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि पदोन्नति के लिए संभावित प्रत्याशी कहाँ से प्राप्त किये जायेंगे। विकल्पों को निश्चित कर देने पर पदोन्नति की रेखाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। पदोन्नति की पात्रता के क्षेत्र पर प्राय: एक संगठनात्मक प्रतिबन्ध लगाया जाता है और पदोन्नतियाँ साधारणत: एक ही विभाग अथवा ब्यूरो के अन्तर्गत की जाती है, अन्तर-विभागीय पदोन्नतियों का समर्थन नहीं किया जाता है। प्रो॰ विलोबी की मान्यता है कि विभिन्न कर्मचारियों की सेवा की शर्तों में भारी अन्तर रहता है, इसलिए यदि उन सभी के लिए एकरूप व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की गई तो यह घातक होगा। इस दृष्टि से कुछ सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये जा सकते हैं, ये निम्नलिखित हैं-

- प्रत्येक सेवा के लिए पदोन्नति की व्यवस्था स्वयं की होती है तथा यह अन्य सेवा से पर्याप्त भिन्न है। अत: प्रत्येक सेवा में पदोन्नति की समस्या पर पृथक से विचार किया जाना चाहिए।
- जहाँ तक सम्भव हो सके, सभी कर्मचारियों को पदोन्नति के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने की चेष्टा की जानी चाहिए।
- पदोन्नति द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति करते समय संबंधित संगठन के बाहर के कर्मचारी की अपेक्षा अन्दर के कर्मचारी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

## 3.7 श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें

लोक सेवा एक जीवन वृति सेवा है। यह प्रतिभाशाली लोगों के लिए आजीवन जीविका का माध्यम है । साथ ही यह उनकी उन्नति और विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। उच्च स्तरीय पदों को भरने के लिए योग्य और

सक्षम लोगों को व्यवस्था में लाने का कार्य पदोन्नति की अच्छी नीति से ही संभव है। लोकसेवा जैसे जीवन वृति सेवा की सफलता के लिए पदोन्नति की उपयुक्त नीति की नितांत आवश्यकता है।

आदर्श पदोन्नति व्यवस्था के दो पहलू हैं- पहला, यह प्रबन्ध को विश्वास दिलाती है कि संगठन को विभिन्न उच्च पदों पर श्रेष्ठ प्रतिभाशील व्यक्तियों की सेवा का लाभ मिलेगा तथा दूसरा- यह कर्मचारियों को विश्वास दिलाती है कि पदोन्नतियाँ योग्यता के आधार पर की गई है तथा पदोन्नति के अवसर व्यापक है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए स्टाल ने मुख्यतः सुझाव प्रस्तुत किए है, जिन्हें अपनाकर आदर्श पदोन्नति व्यवस्था को लागू किया जा सकता है- यदि ऊँची योग्यता वाले प्रत्याशी संगठन में मौजूद हो तो पदों को उन्ही की नियुक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए, किन्तु बाहर से प्रवेश को पूरी तरह अवरूद्ध नहीं करना चाहिए। उच्च पदों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कार्य पर प्रशिक्षण का विकास किया जाना चाहिए। जहां सम्भव हो सके वहाँ अन्तर्विभागीय एवं अन्तर्मण्डलीय पदोन्नतियाँ होनी चाहिए। नई भर्ती की भाँति पदोन्नति के समय भी अवसर की समानता का ध्यान रखा जाना चाहिए। पदोन्नति के लिए कोई भी एक मापदण्ड पर्याप्त नहीं है तथा एक उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था में प्रणाली की दृष्टि से लोचशीलता रहनी चाहिए। एक आदर्श पदोन्नति व्यवस्था में पर्यवेक्षक का योगदान महत्वपूर्ण है। सेवीवर्ग अधिकारियों द्वारा अभिलेख प्रणाली तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा पदोन्नति के पात्रों का निर्धारण करके पर्यवेक्षक को बताना चाहिए तथा अन्त में उनकी तुलनात्मक योग्यताओं के आधार पर पदोन्नति का निर्णय किया जाना चाहिए।

राज्य के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में पदोन्नति की उपयुक्त नीति का निर्माण आवश्यक हो गया है। पदोन्नति नीति संस्था की सेविवर्गीय नीति का एक भाग है। यह संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति करने में मार्गदर्शन करती है। यह भविष्य में होने वाली कई समस्याओं को रोकने में मदद करती है।

एक श्रेष्ठ पदोन्नति नीति की आवश्यक शर्तें निम्नलिखित हैं-

- पदोन्नति की नीति को पहले से ही सुनियोजित होना चाहिए।
- लोक सेवा का स्वच्छ और सही वर्गीकरण होना चाहिए।
- प्रत्येक सेवा या वर्ग में पद या श्रेणी पदानुक्रम रूप से व्यवस्थित होना चाहिए।
- पदोन्नति की रेखा और नियम पहले से ही निर्धारित होना चाहिए।
- पदोन्नति का कार्यभार किसी एक व्यक्ति के बदले किसी समिति या बोर्ड को देना चाहिए।
- पदोन्नति की सुव्यवस्थित रूप से स्वीकृत विधि का सही अर्थों में पालन होना चाहिए।

इसके साथ हीं, कर्मचारी को पदोन्नति के लिए रिक्त स्थान में यह जाना चाहिए कि पदोन्नति सुअवसर है, न कि एक अधिकार है। उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेकर पदोन्नति का प्रयास करना चाहिए और वरिष्ठता को अत्यधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। वरिष्ठता अर्हता एवं कार्य क्षमता के सिद्धांत का मिश्रण पदोन्नति को निर्धारक होने चाहिए। उच्च स्तरीय पदों के उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में अभ्यर्थियों के पूर्व कार्य निष्पादन सेवा रिकॉर्ड एवं योग्यता को निर्धारक तत्व के रूप में होना चाहिए। पदोन्नति हेतु अर्हता जांच के लिए योग्यता कार्यकुशलता निर्धारण परीक्षा साक्षात्कार इत्यादि के समान अनेक उपयुक्त साधनों को अपनाया जाना चाहिए। सेवा अवधि अथवा वरिष्ठता के निर्धारण के नियम व तरीके स्पष्ट होने चाहिए। पदोन्नति नीति को सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू किया जाना चाहिए। इसे लागू करने में किसी प्रकार का भेद-भाव एवं पक्षपात नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय श्रम आयोग की अनुशंसाओं के अनुसार पदोन्नति नीति को श्रम संघों के साथ विचार-विमर्श के बाद निर्धारित किया जाना चाहिए। इस आयोग ने सिफारिश की निम्न स्तरों पर पदोन्नति वरिष्ठता के आधार की जानी चाहिए तथा मध्यम स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार को अपनाना

चाहिए। उच्च स्तरीय प्रबन्ध पर पदोन्नति केवल योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। लेकिन राष्ट्रीय श्रम आयोग की ये अनुशंसाएं विवादों से परे नहीं है।

## 3.8 भारत में पदोन्नति पद्धति

भारत में लोक सेवा में पदोन्नति वरिष्ठता और योग्यता दोनों सिद्धांतों पर आधारित है। परंपरा के अनुसार पदोन्नति निम्न स्तर के पदों पर वरिष्ठता के आधार पर, मध्यम स्तर पर वरिष्ठता तथा स्थाई योग्यता के आधार पर तथा उच्च स्तरीय पदों पर योग्यता के आधार पर की जाती है। छठे केंद्रीय वेतन आयोग, जो 5 अक्टूबर 2006 को भारत सरकार ने न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा की अध्यक्षता में गठित किया था, उसने 24 मार्च 2008 को अपनी रिपोर्ट में निश्चित सेवा अभिवृत्ति की सिफारिश की जिसके अनुसार सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को संपूर्ण कार्यकाल में तीन पदोन्नति अवश्य मिलनी चाहिए। लोक सेवा के कर्मचारियों को 10, 20 एवं 30 साल की सेवा के उपरांत पदोन्नति देने की प्रक्रिया लागू की गई है जबकि रक्षा कर्मियों को 8, 16 और 24 वर्षों की सेवा के बाद पदोन्नति दी जाएगी।

भारत में लोक सेवकों का पदोन्नति संबंधी समस्या और समाधान को ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। भारत में 1669 में ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा अपने कर्मचारियों के संबंध में वरिष्ठता का नियम लागू किया गया था और इसी के साथ भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का भी सूत्रपात हुआ। इसी वक्त कंपनी ने निश्चय किया कि लंदन से किसी व्यक्ति को किसी अन्य कर्मचारी के ऊपर अधिकारी बना कर भेजा ना जाए। 1771 में कंपनी ने व्यापारिक दायित्व के साथ-साथ दायित्व भी निर्वहन किया और वरिष्ठता के सिद्धांत का संशोधन करते हुए योग्यता सिद्धांत को मान्यता दी। अनंतर चार्टर अधिनियम, 1773 के द्वारा वरिष्ठता का सिद्धांत का समर्थन करते हुए व्यवस्थाएं निर्धारित की गई। सिविल सेवा में 1793 के चार्टर एक्ट में स्पष्ट रूप से पदोन्नति के वरिष्ठता सिद्धांत को स्वीकार किया गया था। यह सिद्धांत 1861 के भारतीय सिविल सेवा एक्ट के लागू होने तक प्रचलित रहा। यद्यपि वरिष्ठता का नियम लागू था किंतु अर्हता, योग्यता, क्षमता एवं सत्य निष्ठा इत्यादि पर भी पदोन्नति के समय विचार किया जाता था। पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत 1947 तक अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात 1947 में ही पदोन्नति के संबंध में विचार शुरू हो गया। सिविल सेवा में रिक्त पदों को भरने के लिए प्रथम वेतन आयोग ने भर्ती और पदोन्नति की पद्धति को संयुक्त किए जाने की अनुशंसा की थी। इसके अनुसार वरिष्ठता सिद्धांत को कार्मिकों के रिक्त पदों को भरने के लिए अपनाया जाना चाहिए , जो कार्यालय कार्यों को अच्छी जानकारी की शर्त को आवश्यक रूप से पूरा करता हो। उच्च स्तरीय पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता अर्हता सिद्धांत के आधार पर भरा जाना चाहिए। प्रथम वेतन आयोग ने यह सुझाव दिया था कि लोकसेवाओं में प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नति के बीच विवेकपूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। आयोग का मानना था कि उच्च पदों के संदर्भ में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता के स्थान पर योग्यता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। द्वितीय वेतन आयोग, 1969, ने भी लगभग इसी प्रकार की अनुशंसा दी। इसके अनुसार प्रशासन में उच्च स्तरीय रिक्त पदों को अर्हता सिद्धांत के आधार पर तथा मध्यम एवं निम्न स्तरीय रिक्त पदों को वरिष्ठता सह उपयुक्तता का सिद्धांत के आधार पर भरे जाने की अनुशंसा की गई थी। प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत की अनुशंसा की थी। भारत में विगत 60 वर्षों में पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह अर्हता सिद्धांत प्रचलित है और दोनों पदोन्नति के घटक विभिन्न सेवाओं में परिवर्तित होते रहते हैं।

भारत में केंद्र सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा विभागाध्यक्ष की अनुशंसा पर कभी-कभी तो केंद्रीय लोकसेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग के अनुमोदन के आधार पर भी पदोन्नति की जाती रही है । कुछ पदों के लिए पदोन्नति वित्त विभाग की मंजूरी के पश्चात की जाती है तथा कुछ उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए तो

प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री का अनुमोदन आवश्यक है। अधिकांश विभागों में पदोन्नति के उद्देश्य से विभागीय पदोन्नति समिति का गठन किया जाता है जो वरिष्ठता के  के क्रम में गोपनीय रिपोर्ट को आधार बनाकर पदोन्नति की अनुशंसा करती हैं। सहायक ,वरिष्ठ सहायक, अनुभाग अधिकारी, अधीक्षक इत्यादि जैसे मध्यम एवं निम्न स्तरीय पदों पर पदोन्नति के लिए वरिष्ठता सह कार्यकुशलता के सिद्धांत को बिना विवाद के लगातार अपनाया जाता रहा है। कुछ मामलों में इस व्यवहार के अतिरिक्त पदोन्नति के लिए प्रतियोगिता परीक्षाओं में कर्मचारियों को शामिल किए जाने की अनुमति भी दी जाती है। उच्च स्तरीय पदों पर पदोन्नति के विभागीय पदोन्नति समिति सूची से हटकर भी पदोन्नति करती है। भारत में विभिन्न श्रेणियों और सेवाओं में पदोन्नति की पद्धतियां लगातार परिवर्तित भी होती रहती हैं।

योग्यता आधारित पदोन्नति व्यवस्था को अब धीरे-धीरे मान्यता मिल रही है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियों से युक्त समाज में योग्यता को मान्यता मिलना स्वाभाविक है। पदोन्नति में योग्यता को आधार बनाने से महत्वाकांक्षी, कर्त्तव्यनिष्ठ तथा उत्साही कार्मिकों को प्रेरणा प्राप्त होती है, प्रशासनिक कार्य कुशलता बढ़ती है तथा प्रशासन में नवाचार या परिवर्तन प्रक्रियाएँ क्रियान्वित की जा सकती हैं, किन्तु इस सिद्धान्त के कारण जब कम कनिष्ठ व्यक्ति उच्च पद पर पहुंच जाता है तो वरिष्ठ कार्मिकों का अहं आहत होता है साथ ही कार्मिक असहयोग एवं संघर्ष प्रवृत्तियों को धारण कर लेते हैं। भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का गहन विश्लेषण करने के पश्चात कुछ खामियां नजर आती हैं, जो हैं-

1. विभागाध्यक्ष जानबूझकर संभावित प्रतियोगियों की सूची में से कुछ लोगों के नाम निकाल देते हैं। ढेर सारे कर्मचारियों के पदोन्नति के प्रार्थना पत्र विभागीय अध्यक्ष द्वारा विचारार्थ प्रेषित नहीं किए जाते हैं।
2. कार्मिकों के व्यक्तिगत सेवा रिकार्डों को निष्पक्षता एवं व्यस्तता से नहीं रखा जाता है। कार्मिकों की व्यक्तिगत फाइल की जिन बातों को पदोन्नति के समय देखा जाता है, वे पूरी तरह जांच पड़ताल और निष्पक्षता के साथ अंकित नहीं की जाती हैं।
3. पदोन्नति के द्वारा भरे जाने वाले अधिक पदों के संबंध में भी कर्मचारियों को यथा समय सूचित नहीं किया जाता है। रिक्त पदों की सूचना को कर्मचारियों के गुप्त रखा जाता है और इस कारण कभी कभी भी अपने प्रति किए गए अन्याय से  अपरिचित रह जाते हैं।
4. अर्हता के बदले वरिष्ठता को भारत में अत्यधिक महत्व दिया जाता है। योग्यता के सिद्धांत को पदोन्नति के वक्त उपयुक्त स्थान नहीं मिल पाता है। इसके अनुशीलन की अपेक्षा इसका उल्लंघन अधिक किया जाता है।
5. पदोन्नति की सुव्यवस्थित मशीनरी के अभाव में भारत में अनुचित मनमाने और अव्यवस्थित ढंग से भी पदोन्नति दी जाती है तथा पदोन्नति में पक्षपात या अन्याय होने की स्थिति में इसके विरुद्ध अपील करने की कोई प्रभावकारी पद्धति नहीं है।
6. पदोन्नति के अवसर कम और प्रत्याशी अधिक होने के कारण अविश्वास एवं अन्य दुष्परिणाम सामने आते हैं।

इन कमियों को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया गया था कि एक उपयुक्त एवं सुव्यवस्थित पदोन्नति की नीति को अपनाया जाना चाहिए। कर्मचारियों की सेवा रिकार्डों को निष्पक्ष भाव से रखा जाना चाहिए तथा मूल्यांकन अपील करने के लिए एक प्रभावशाली मशीनरी की स्थापना भी होनी चाहिए। सभी सरकारी सेवाओं में सभी स्तरों पर पदोन्नति करने के लिए समितियों या बोर्डों की स्थापना आवश्यक है तथा मध्यम स्तरीय पदों से ही अधिकारी परीक्षा तथा साक्षात्कार की शुरुआत हो जानी चाहिए। पदोन्नति की नीति हेतु अनुमान समिति (प्रथम लोकसभा) ने भी व्यापक सुझाव दिये थे। उसके अनुसार पदोन्नति का आधार योग्यता हो, न कि सेवारत व्यक्तियों की वरिष्ठता। कर्मचारियों की पदोन्नति के संबंध में निर्णय का अधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों को होना चाहिए जिन्होंने कुछ

समय तक उनके कार्य और आचरण की जांच की हो। कम से कम एक तीन सदस्यीय कमेटी की अनुशंसा के आधार पर ही, जिसका एक सदस्य उस व्यक्ति के कार्य से सुपरिचित हो, पदोन्नति की जानी चाहिए और प्रत्येक ऐसे मामले में, जहां किसी वरिष्ठ अधिकारी के हित की अपेक्षा की गई हो समिति को लिखित रूप में वरिष्ठता की अपेक्षा करने के कारणों के स्पष्ट करना चाहिए।

पदोन्नति व्यवस्था की सफलता अनेक बार तो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों के कारण होती है किंतु कभी-कभी यह इसलिए भी हो जाता है कि कार्मिक प्रबंधन उपयुक्त पदोन्नति व्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं से परिचित नहीं होता। सरकारी सेवा के सभी पदों को आवश्यक योग्यता और कर्तव्यों का उल्लेख करते हुए मापदंडों का निर्धारण किया जाना चाहिए। विभिन्न सेवाओं और श्रेणियों में वर्गीकरण भी इस कड़ी में आवश्यक है। कर्मचारियों की पदोन्नति एक वैज्ञानिक आधार पर क्रियान्वित होने के लिए विविध तथ्यों को एक साथ समाहित किया जाना आवश्यक है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. किसने पदोन्नति को कार्मिक प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बताया है?
2. एक ही वर्ग में निम्न से उच्च श्रेणी में पदोन्नति क्या कहलाता है?
3. पदोन्नति शब्द अंग्रेजी भाषा के किस शब्द का पर्यायवाची है?
4. भारत में लोक सेवा में पदोन्नति का सूत्रपात कब हुआ?
5. 2006 में गठित छठे केंद्रीय वेतन आयोग के अध्यक्ष कौन थे?

## 3.9 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों की पदोन्नति कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि पदोन्नति जीवन वृति सेवा का एक अनिवार्य अंग है तथा सक्षम अधिकारियों को सेवा में सर्वोच्च पद पर पहुंचने में सहायता करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम भी है। पदोन्नति प्रशासन को पहले से ही सेवारत कार्मिकों के सर्वोत्तम प्रतिभाओं एवं अनुभव का उपयोग करने में भी सहायता प्रदान करते हैं। यह सेवारत लोगों के मध्य से ही रिक्त स्थानों को अप्रत्यक्ष रूप से भरे जाने की प्रक्रिया है। विश्व के बहुत सारे देशों में पदोन्नति के अर्हता सिद्धांत को स्वीकार किया गया है, लेकिन साथ ही वरिष्ठता को भी उचित स्थान दिया गया है। सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासन जटिल और तकनीकी बन गया हैं, जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। उचित पदोन्नति प्रणाली योग्य व्यक्तियों को सार्वजनिक सेवा की ओर आकर्षित करने तथा सेवा छोड़कर जाने से रोकने के लिए आवश्यक है। पदोन्नति से समस्त प्रशासन प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित होता है। इससे कार्मिकों में संतोष बने रहने तथा सेवा ना छोड़ने की सोच बनी रहती है। साथ ही यह संगठन के कार्यों का उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके और कुशलता से निर्वहन करता है। पदोन्नति प्रणाली कर्मचारियों के काम के प्रति उनकी रुचि बनाए रखती है तथा अच्छा काम करने के लिए उन्हें प्रेरित भी करती रहती है।

## 3.10 शब्दावली

कार्मिक- कर्मचारी, अर्हता- योग्यता, वरिष्ठता- सेवा प्रारंभ करने की तिथि से लेकर गणना की गयी सेवा की अवधि, सेवा रिकार्ड- किसी कर्मचारी के संबंध में कार्यालय द्वारा रखा गया उसका व्यक्तिगत सेवा रिकार्ड, विभाग- नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु मंत्रालय का एक भाग, कार्य कुशलता स्तर- पूर्व सेवा के आधार पर किसी कार्मिक की सेवा का तुलनात्मक रूप से मूल्यांकन

## 3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** विलोबी, **2.** क्षैतिजीय पदोन्नति या श्रेणी आधारित पदोन्नति, **3.** प्रमोट (promote), **4.** 1669 में, **5.** न्यायमूर्ति बी. एन. कृष्णा

## 3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।
3. अवस्थी और माहेश्वरी, 2010, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।


## 3.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
2. अवस्थी एवं अवस्थी, 2017, भारत में लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।


## 3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पदोन्नति के अर्थ एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. पदोन्नति के उद्देश्य एवं पदोन्नति के प्रकार का मूल्यांकन कीजिए।
3. पदोन्नति प्रणालियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. पदोन्नति की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत में प्रचलित पदोन्नति पद्धति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

# इकाई- 4 प्रशिक्षण

**इकाई की संरचना**

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 प्रशिक्षण का अर्थ
4.3 प्रशिक्षण का महत्व
4.4 विकासशील देशों में प्रशिक्षण
4.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य
4.6 प्रशिक्षण के प्रकार
4.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक
4.8 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा
4.9 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली
4.10 भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं
4.11 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन
4.12 सारांश
4.13 शब्दावली
4.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.17 निबन्धात्मक प्रश्न

## 4.0 प्रस्तावना

प्रशिक्षण एक निश्चित उद्देश्य के लिए लोगों का ज्ञान और कौशल बढ़ाने हेतु एक संगठित गतिविधि है। प्रशिक्षित कार्मिक किसी भी संगठन की मूल्यवान परिसंपत्ति हैं और ये संगठन की प्रगति और स्थायित्व के लिए जिम्मेवार हैं। किसी कार्यविशेष को कुशलता के साथ करने हेतु कर्मचारियों के ज्ञान, कुशलता, अभिरुचि तथा क्षमताओं में वृद्धि की प्रक्रिया का नाम प्रशिक्षण है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण लोक सेवकों की महत्ता विगत कुछ वर्षों से काफी बढ़ गई है। लोक प्रशासन की गुणवत्ता एवं प्रभावशीलता इसके कार्मिकों पर निर्भर करती है। लोक सेवाओं में नियुक्त व्यक्ति पूर्व से ही न्यूनतम शैक्षिक योग्यताधारी होते हैं। आमतौर पर लोक सेवा में प्रवेश करने से पूर्व ही वे अपनी शिक्षा पूरी कर चुके होते हैं, परंतु शिक्षा की प्रक्रिया उसके बाद भी जारी रहती है। विभिन्न परिवर्तनों एवं तकनीक से उनकी कुशलता और दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य शिक्षा को लोक सेवाओं में प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में प्रशिक्षण कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु कई प्रशिक्षण संस्थाएं स्थापित की गई हैं और समय-समय पर इनमें आवश्यक संरचनात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन भी किए गए हैं। प्रशिक्षण लोक सेवा की कुशलता के लिए नितांत आवश्यक है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य शासकीय कृत्यों के लिए कर्मचारियों को भलीभांति तैयार करना है।

वर्तमान युग में प्रशासन का कार्य अधिक जटिल और दुरूह हो गया है और इसके कुशल निष्पादन हेतु विशेष ज्ञान और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता होती है। बदलते परिदृश्य में नए मापदंडों पर खरे उतरने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। आज प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग है। भारत सहित प्रायः सभी देशों

में लोक सेवाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के उपयुक्त और प्रभावी शिक्षण हेतु व्यापक प्रबंध किए गए हैं। इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को प्रशिक्षण के महत्व, आवश्यकता, प्रकार और विभिन्न तकनीकों से परिचय कराना है। साथ ही भारत में वर्तमान प्रशिक्षण प्रणाली का मूल्यांकन भी करेंगे।

इस इकाई के द्वारा पाठकों को प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व, विकासशील देशों मे प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षण के उद्देश्य, प्रशिक्षण के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक से परिचय कराना है। इसमें लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली, भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं, प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन आदि विषयों पर भी विस्तार से चर्चा होगी।

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशिक्षण का अर्थ, महत्व एवं उद्देश्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- साथ ही प्रशिक्षण के प्रकार तथा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक के बारे में जान सकेंगे।
- पाठक भारत में प्रशिक्षण की प्रणाली, प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं को समझने में सक्षम हो पाएंगे तथा
- प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कर पाएंगे।

## 4.2 प्रशिक्षण का अर्थ

प्रशिक्षण प्रशासन एवं प्रबन्धन की एक विधा है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रशिक्षण को आवश्यक माना गया है। प्रशिक्षण का उद्देश्य ऐसे तंत्र की स्थापना करना होता है जो समय-समय पर लोक सेवकों के वास्तविक व्यवहार को सकारात्मकता देता रहे और नवीनतम ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि भी करे। प्रशिक्षण कार्य एवं संगठन की आवश्यकताओं के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान निपुणताओं, व्यवहार, अभिरूचियों तथा मनोवृत्तियों में सुधार करता है, परिर्वतन उत्पन्न करता है तथा ढालता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य लोक सेवकों की कार्यकुशलता और क्षमता को बढ़ाना है।

प्रशिक्षण का शाब्दिक अर्थ किसी खास कला या व्यवसाय शिक्षा देना है। लोक प्रशासन में प्रशासन का अर्थ किसी कर्मचारी की कार्यकुशलता, शक्ति और बुद्धिमत्ता को सुधारने तथा वांछित दिशा में उसकी रुचि और मूल्य को विकसित करने का सक्रिय प्रयास करना है। व्यापक अर्थों में प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक प्रक्रिया है।

शिक्षा के समान ही प्रशिक्षण जीवन पर्यंत चलने वाली एक लंबी प्रक्रिया है, परंतु शिक्षा की तुलना में प्रशिक्षण के उद्देश्य सीमित और निश्चित होता है। शिक्षा किसी व्यक्ति के बाल्यकाल से प्रारंभ होकर व्यक्तित्व, चरित्र, व्यवहार, रुचियां , क्षमता, आदि के निर्माण को प्रभावित करती है और व्यापक मानसिकता उत्पन्न करती है। परंतु प्रशिक्षण किसी विशेष किस्म के कार्य अथवा व्यवसाय के लिए अपेक्षित कार्यकुशलता और ज्ञान में सुधार करता है। इस प्रकार प्रशिक्षण की अपेक्षा शिक्षा अधिक व्यापक अवधारणा है। फिर भी प्रशिक्षण और शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और अधिकांश बार वे परस्पर व्यापी होते हैं। साधारण शब्दों में, प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है। प्रशिक्षण एक अल्पकालीन शैक्षणिक प्रक्रिया है तथा जिसमें एक व्यवस्थित एवं संगठित कार्य-प्रणाली उपयोग में लायी जाती हैं, जिसके द्वारा एक कर्मचारी किसी निश्चित उद्देश्य के लिए तकनीकी ज्ञान एवं निपुणताओं को सीखता है। इस प्रकार प्रशिक्षण एक

सीखने का अनुभव है। जिसके अन्तर्गत यह एक कर्मचारी में तुलनात्मक रूप से स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है, जो कि उसके कार्य का निष्पादन क्षमता में सुधार लाता है।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा प्रशिक्षण को निम्नलिखित रूपों में परिभाषित किया गया है-

मैण्डेल के अनुसार, ''प्रशिक्षण का अर्थ है- नये कार्य के लिये अभिनवीकरण, वर्तमान कार्य के लिए ज्ञान तथा कुशलता का विकास एवं भावी उत्तरदायित्वों के लिए तैयारी।''

एडविन बी. फिलिप्पा के अनुसार, ''प्रशिक्षण किसी कार्य विशेष को करने के लिए एक कर्मचारी के ज्ञान एवं निपुणताओं में वृद्धि करने का कार्य है।''

स्टाल (Stahl) के मतानुसार, ''कर्मचारी वर्ग के विकास में प्रशिक्षण मानवीय प्रयास के निर्देशन का एक मूल तत्व है और इस रूप में यह उस समय अधिक प्रभावशाली रहता है जबकि इसे नियोजित, व्यवस्थित एवं मूल्यांकित किया जाता है।''

एस.एल. गोयल कहते हैं, ''प्रशिक्षण- (क) एक कार्य प्रक्रिया है, (ख) जिसके द्वारा कार्मिक की क्षमताओं को बढ़ाया जा सकता है, (ग) जिससे कि अपने सांगठनिक कार्यों का निष्पादन करने के लिए अपेक्षित ज्ञान, कुशलताओं तथा रुझानों के अर्थों में सांगठनिक आवश्यकताओं । को पूरा किया जा सके, (घ) अपेक्षाकृत थोड़े समय में ही।''

विलियम जी. टोर्पे की परिभाषा के अनुसार, ''प्रशिक्षण, कर्मचारियों के मौजूदा सरकारी पदों के लिए और भविष्य के सरकारी पदों के लिए उनको तैयार करने के उनकी कुशलताओं, आदतों, ज्ञान प्रवृत्तियों का विकास करने की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य उनकी प्रभावशीलता में वृद्धि करना है।''

अवस्थी और माहेश्वरी कहते हैं कि, "प्रशिक्षण लोकसेवकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के एक सुस्पष्ट प्रयास है और यह व्यावसायिक ज्ञान, व्यापक दृष्टि तथा व्यवहार के सही ढंग को प्रदान करके किया जाता है। यह लगातार महसूस की जाने वाली आवश्यकता के सम्मुख एक सतत या वांछित प्रयास है।"

इस प्रकार प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। एक प्रक्रिया के रूप मे प्रशिक्षण विशेष और सीमित है। इसका अर्थ विशेष कार्य अथवा व्यवस्था के बारे में शिक्षण देना है। इसका प्रयोजन कर्मचारियों की उनके कार्य कुशलता ज्ञान और कार्य क्षमता को सुधारना है तथा इसका लक्ष्य कर्मचारियों को उच्च जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना भी है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जब लोक सेवकों की योग्यता, कुशलता, बुद्धि व दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में अग्रसर करने का प्रयास किया जाता है तो यह प्रशिक्षण कहलाता है। प्रशिक्षण एक संगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान तथा/अथवा निपुणताओं को सीखते है।

## 4.3 प्रशिक्षण का महत्व

प्रशिक्षण कार्मिक प्रशासन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है जिस पर प्रशासनिक कार्यकुशलता बहुत हद तक निर्भर करती है। बदली हुई परिस्थितियों में प्रशिक्षण की आवश्यकता अत्यधिक महसूस की गई है । प्रशिक्षण प्रबंध का सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि उत्तरदायित्व है। संगठन के कार्यों को संपन्न कराने के लिए शिक्षण एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में उभरा है। प्रशिक्षण के माध्यम से कर्मचारी अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से संपन्न करने में समर्थ होता है । व्यक्ति में जो कुशलता, आदत, ज्ञान आदि जो पूर्व में विद्यमान रहते हैं, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा अधिक परिमार्जित किया जा सकता है। प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्रशासन में कार्यकुशलता स्थापित कर कर्मचारियों को उच्च स्तर के कार्यों का उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता विकसित करना है तथा उनकी तकनीकी योग्यताओं के विकास द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उनकी कार्यकुशलता को बढ़ाना भी है। प्रशासनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण को

व्यापक बनाने में प्रशिक्षण का अत्यधिक योगदान है। इस प्रकार अधिकारियों एवं कर्मचारियों की मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता में वृद्धि प्रशिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है।

सरकार के निरंतर कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप प्रशासन अब जटिल विशेषज्ञ और तकनीकी बन गया है। योग्यता प्रणाली पर आधारित भर्ती नीतियां और कार्यक्रम लोक सेवाओं में सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त और सक्षम व्यक्तियों को चुनने का प्रयास करते हैं। कुशल प्रशासन हेतु लोक सेवकों को उपयुक्त एवं प्रभावी प्रशिक्षण आवश्यक है। लोक सेवा के कर्मचारियों का प्रशिक्षण आधुनिक काल में प्रबंधन का महत्वपूर्ण पहलू है। अधिकांश चुने गए व्यक्तियों में उपाधियां पूर्व से ही धारित होती है जो बदलते परिदृश्य में पर्याप्त नहीं होती। प्रशिक्षण अधिकारियों एवं कर्मचारियों को नवीन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासनिक कार्यों को कुशलता पूर्वक करने में मददगार सिद्ध होता है एवं उसकी कार्यकुशलता एवं दक्षता को सुधारता है। लोक सेवकों को अपने संगठन के लक्ष्यों और उद्देश्यों, संघ कार्य के स्वरूप, वास्तविक कार्य करने की तकनीक और पद्धतियों के बारे में ज्ञान प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा दिया जा सकता है। इसी प्रकार बदलते हुए परिदृश्य में अर्जित ज्ञान और कार्यकुशलता को नवीन एवं अद्यतन बनाने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है , जो एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

प्रशिक्षण का उददेश्य कर्मचारियों को उनके वर्तमान तथा आगामी कार्यों से परिचित होने हेतु सक्षम बनाना है। प्रशिक्षण एक सक्रिय, सुनियोजित और सुविचारित प्रक्रिया है। प्रशिक्षण के महत्व निम्नलिखित हैं-

1. उच्चतर कार्यनिष्पादन- प्रशिक्षण के द्वारा समग्र रूप से संस्था तथा कर्मचारी दोनों के कार्य की गुणवत्ता तथा मात्रा बेहतर बनती है। ज्ञान, कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2. प्रक्रियाओं की एकरूपता- इसके द्वारा कार्य करने की सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध कार्यविधियों का मानकीकरण किया जा सकता है तथा उन्हें सभी कर्मचारियों को सिखाया जा सकता है, जिससे कार्यनिष्पादन की गुणवत्ता में सुधार होता है।
3. सीखने की कम अवधि- इससे कार्यनिष्पादन के स्वीकार्य स्तर तक पहुंचने हेतु आवश्यक सीखने की अवधि तथा लागत दोनों में कमी लाने में सहायता मिलती है। कर्मचारियों को गलतियां करके तथा दूसरों को देखकर काम सीखने पर समय व्यर्थ नहीं गंवाना पड़ता।
4. कम पर्यवेक्षण- इससे कर्मचारियों के विस्तृत तथा निरंतर पर्यवेक्षण की आवश्यकता कम होती है तथा वे अपने कार्य में आत्मनिर्भर हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता होता है कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है।
5. उच्च मनोबल- इससे कर्मचारियों के कार्य संबंधी संतोष तथा मनोबल में वृद्धि होती है तथा सकारात्मक सोच विकसित होती है, जिसके कारण वे अपने कार्य तथा संस्था के प्रति अधिक सहायक तथा वफ़ादार बनते हैं। अनुशासन तथा संबंधों में सुधार आने के फलस्वरूप अनुपस्थिति की दर तथा श्रमिकों के आवर्तन में कमी आती है।
6. सहभागितापूर्ण प्रबंधन- इससे प्राधिकारों के प्रत्यायोजन तथा विकेंद्रीकरण में सहायता मिलती है। प्रशिक्षित कर्मचारी नये तथा चुनौतीपूर्ण कार्य स्वीकार करने हेतु तत्पर रहते हैं।

## 4.4 विकासशील देशों मे प्रशिक्षण

प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारी को अपने कार्य में कुशल एवं दक्ष बनाना है। प्रशिक्षण के पश्चात् कर्मचारी का व्यक्तित्व तो वही रहता है, किन्तु उसके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आ जाता है। विश्व के सभी देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण एक आवश्यक तथ्य है, किंतु विकासशील देशों में इसकी आवश्यकता और महत्व अधिक है विकासशील देशों में प्रशिक्षण की तात्कालिक आवश्यकता के कई महत्वपूर्ण कारक हैं। इन कारकों की वजह से विकासशील देशों में विकास नीतियों की संपूर्ण सफलता उपयुक्त प्रशिक्षण पर ही निर्भर है। अधिकांश विकासशील देशों में सामान्यतया प्रशिक्षित और योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की कमी है और प्रशिक्षण की

सुविधाएं और प्रशिक्षण संस्थान अपर्याप्त हैं। सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि के फल स्वरुप लोक सेवकों को नए प्रकार के कार्यों को संपादित करने में उच्च कोटि की दक्षता और तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रशासन जटिल, तकनीकी और विशेषीकृत हो गया है, वहीं दूसरी और विकासशील देशों में सामाजिक आर्थिक स्थितियां लगातार बदल रही हैं और तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों की चुनौतियों के लिए प्रशासन के नवीनीकरण की आवश्यकता है। विकासशील देशों में चलाए जाने वाले विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन असाधारण तेजी और दक्षता से करने के लिए अक्सर प्रशासन पर दबाव बना रहता है, जिसे लोक सेवकों के प्रशिक्षित होने की अवस्था में ही तुरंत निस्तारित किया जा सकता है।

## 4.5 प्रशिक्षण के उद्देश्य

प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने की एक निश्चित विधि होती है जिसे प्रशिक्षण के माध्यम से ही सीखा जा सकता है। प्रशिक्षण का उद्देश्य केवल तकनीकी कार्यों एवं नित्य के कार्यों का निष्पादन सिखाना ही नहीं वरन् एक समझदार एवं गम्भीर दृष्टिकोण का विकास करना भी है। प्रशिक्षण, कार्यों को सही एवं प्रभावपूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के लिए कर्मचारियों को जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया है, जिससे कि उनकी कार्य के प्रति समझ, कार्यक्षमता तथा उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

लोकसेवकों के लिए प्रशिक्षण की भूमिका का विश्लेषण सर्वप्रथम ब्रिटेन में एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 में किया गया था। प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में इसने कहा था कि बड़े स्तर के किसी भी संगठन में कुशलता दो तत्वों पर निर्भर है। उसको सौंपे गए कार्य विशेष को करने के लिए व्यक्ति की तकनीकी कुशलता और एक संगठित संस्था के तौर पर संगठन की कम सुनिश्चित कुशलता, जो संस्था को संघटित करने वाले व्यक्तियों की सामूहिक भावना और उनके दृष्टिकोण से पैदा होती है। प्रशिक्षण को इन दोनों का ध्यान रखना चाहिए। एशेटन कमेटी रिपोर्ट, 1944 ने प्रशिक्षण के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य बताये-

कार्मिकों में विश्वसनीय कार्य चातुर्य उत्पन्न करना।

- कार्मिकों को इस योग्य बनाना कि वे परिवर्तित परिस्थितियों में अपने कार्य को दक्षतापूर्वक एवं सुगमता से सम्पदा कर सकें।
- कार्मिकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर उन्हें अनुभव कराना कि वे सेवक हैं, स्वामी नहीं।
- कार्मिकों में सामुदायिक भावना उत्पन्न करना तथा उन्हें यन्त्रीकरण से बचाना।
- कार्मिकों को दायित्वों की पूर्ति हेतु अधिक क्षमता प्रदान करना।

किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसके उद्देश्यों का निर्धारण कितनी कुशलता से किया गया है। सामान्य: संगठनों द्वारा अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के लिए जो उद्देश्य होते है, वे निम्नलिखित प्रकार से हैं-

1. कर्मचारियों को नवीनतम ज्ञान, अवधारणाओं, सूचनाओं एवं तकनीकों के विषय में जानकारी प्रदान करने तथा उन निपुणताओं, जिनकी उन्हें अपने-अपने विशेष क्षेत्रों मे आवश्यकता है अथवा होगी, उनको विकसित करने के द्वारा उन्हें उनके वर्तमान पदों पर अधिक प्रभावपूर्ण रूप से कार्य सम्पन्न करने के लिए सहायता प्रदान करना।
2. कार्य एवं संगठन की वर्तमान तथा साथ ही परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये तथा पुराने दोनों कर्मचारियों को तैयार करना तथा लोकसेवक को उन कार्यों के अनुकूल बनाना जो उसे एक परिवर्तनशील जगत में करने को दिए गए हैं।

3. न्यूनतम लागत, अपव्यय एवं बर्बादी तथा न्यूनतम पर्यवेक्षण पर कर्मचारियों से श्रेष्ठ ढंग से कार्य सम्पादन को प्राप्त करना।
4. प्रशिक्षण की सहायता से लोक सेवकों में जनकल्याण की भावना उत्पन्न करना।
5. वैयक्तिक एवं सामूहिक मनोबल, उत्तदायित्व की अनुभूति, सहकारिता की मनोवृत्तियों तथा मधुर सम्बन्धों को बढ़ावा देना।
6. स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में नवीन कार्य-दशाओं में समायोजित करने के लिए कर्मचारियों को तैयार करना।
7. कर्मचारियों की आत्म-विश्लेषण करने की योग्यता तथा कार्य सम्बन्धी निर्णय क्षमता का विकास करना तथा विभागीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लोक सेवकों को व्यावसायिक दृष्टि से कुशल बनाना।
8. लोक सेवकों की दृष्टि ओर दृष्टिकोण को व्यापक बनाना।
9. इस मनोवृत्ति का पोषण करना कि लोकसेवक मालिक नहीं, बल्कि जनसेवक हैं।
10. मानव संसाधन विकास के लक्ष्यों की पूर्ति करना आदि।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रशासन में प्रशिक्षण कर्मचारियों के दक्षता सुधारता है। साथ ही कर्मचारियों की व्यवसायिक कार्यकुशलता और ज्ञान को प्रशिक्षण बढ़ाता है, ताकि वे अपना काम प्रभावी ढंग से कर सकें। नए कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश का प्रशिक्षण एक सहायक माध्यम है और उसे संगठन के लक्षण तथा उद्देश्य संगठन में उसकी अपनी भूमिका तथा उसके कार्यों के निर्वहन की तकनीकी ज्ञान और पद्धतियों से अवगत कराता है जिसके फलस्वरूप कर्मचारी संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपना सर्वोत्तम योगदान दे सकते हैं। प्रशिक्षण कर्मचारियों को क्षेत्र विशेष में हुए नवीनतम प्रगति और विकास की जानकारी देता है इस प्रकार उन्हें ज्ञान से अद्यतन बनाए रखता है। संगठन के लक्ष्य और तकनीकों में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए प्रशिक्षण कर्मचारियों को ने संगठनात्मक परिवर्तनों के अनुकूल बनाता है। प्रशिक्षण में भर्ती किए गए व्यक्तियों में विद्यमान कमियों को पूरा करता है तथा सरकार के प्रशासनिक कार्यों के लायक बनाने तथा उसी दिशा में डालने के लिए प्रशिक्षण अत्यावश्यक है। प्रशिक्षण कर्मचारियों में निष्ठा और मनोबल बढ़ाता है तथा कर्मचारियों के लिए सामुदायिक सेवा और अपनेपन की भावना विकसित करता है। कर्मचारियों को इस बात का एहसास होता है कि वे और उनका काम संगठन और समुदाय का अनिवार्य अंग है। कार्यों में समर्पण कर्मचारियों को गौरव परम संतोष प्रदान करता है।

## 4.6 प्रशिक्षण के प्रकार

सभी प्रजातांत्रिक देशों में लोक सेवकों का प्रशिक्षण बुनियादी महत्व का होता है। प्रशिक्षण न केवल नवनियुक्त कर्मचारियों के लिए आवश्यक है बल्कि उनके लिए भी आवश्यक है, जो सेवा में कार्यरत हैं। इसकी प्रकृति अलग-अलग हो सकती हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम देश में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक दशाओं को रखकर तैयार किए जाते हैं । प्रशिक्षण देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से और विभिन्न तकनीकों से दिया जाता है।

सामान्यतया प्रशिक्षण को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जाता है-

1. **औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रशिक्षण (Formal and Informal Training)-** मूलतया प्रशिक्षण दो प्रकार के होते हैं- अनौपचारिक और औपचारिक। अनौपचारिक प्रशिक्षण का अर्थ है- वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन के अधीन वास्तविक काम करते हुए काम सीखना। अत: यह प्रशिक्षण अनुभव से या परीक्षण और चूक पद्धति (Trial & Error Method) द्वारा होता है। प्रशिक्षु को प्रशासनिक कुशलता की प्राप्ति वास्तविक काम करते हुए अर्थात व्यवहार के दौरान होती है । इसको 'काम पर प्रशिक्षण' कहते हैं । लोक प्रशासन में यह प्रशिक्षण की परंपरागत पद्धति है। ए.डी. गोरवाला के शब्दों में

''एक अच्छे कलेक्टर (जिलाधीश) का घर नए सहायक कलेक्टर के लिए अक्सर ही उसका दूसरा घर होता है।'' दूसरी ओर, औपचारिक प्रशिक्षण विशेषज्ञ मार्गदर्शन तथा निरीक्षण के अंतर्गत व्यवस्थित ढंग से पूर्व नियोजित और सुस्पष्ट पाठ्यक्रमों के द्वारा दिया जाता है।

औपचारिक प्रशिक्षण उस किस्म का प्रशिक्षण है जिसकी योजना व्यवस्था और संचालन विशेषण और मार्गदर्शन में सावधानी के साथ किया जाता है। निश्चित समय अवधि के दौरान विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह को प्रशिक्षण संस्थानों में विशेषज्ञ प्रशिक्षक अथवा विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। औपचारिक प्रशिक्षण की परम्परा प्रक्रिया में पूर्व निर्धारित योजना के अन्तर्गत विशिष्ट प्रशिक्षकों के द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विधिवत् प्रशिक्षण केन्द्र में संगोष्ठी वाद-विवाद व्याख्यान आदि के माध्यम से दिया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के प्रशासनिक कौशल एवं कार्यविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके विपरीत अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव एवं व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित होता है। इसमें नवनियुक्त अधिकारी अपने वरिष्ठ अधिकारियों के साथ रहकर उसके आचरण को देखकर अनुभव ज्ञान एवं कौशल ग्रहण करता है। इसमें वास्तविक रूप से तैयार किया गया अध्ययन पाठ्यक्रम तथा व्याख्यान संगोष्ठी या कार्यशाला में समूह चर्चा, सम्मेलन, कार्य परियोजनाएं, लिखित परीक्षाएं इत्यादि होती है। यह पूर्णकालिक या आंशिक हो सकता है। प्रशासनिक दक्षता सुधारने की आवश्यकता को देखते हुए औपचारिक प्रशिक्षण किया प्रणाली काफी लोकप्रिय हैं।

वहीं दूसरी ओर, अनौपचारिक प्रशिक्षण अनुभव द्वारा प्राप्त शिक्षण है, जिसे कर्मचारी अपने संगठन में वास्तविक निर्धारित कार्य के दौरान अर्जित करता है। यह संगठनात्मक क्रियाकलाप है। अनौपचारिक प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए कोई योजना बनाना आवश्यक नहीं है। प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षक अथवा किसी प्रकार के प्रशिक्षण संस्थान की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी कोई निश्चित अवधि भी नहीं होती है और ना ही इसके लिए विशेष रूप से चुने गए प्रशिक्षणार्थियों के समूह की आवश्यकता होती है। यह लोक प्रशासन में प्रशिक्षण का परंपरागत तरीका है और व्यावहारिक प्रशासन इसे आज भी प्राथमिकता देते हैं, परंतु यह प्रक्रिया सीखने की सबसे कठिन तरीका है और इसमें कर्मचारियों को काफी धैर्य और लता की आवश्यकता होती है । अनौपचारिक प्रशिक्षण अधिकांश देशों में लोकप्रिय नहीं है।

अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण (Short-Term and Long-Term Training)- अल्पकालीन प्रशिक्षण अल्पविधि के लिए दिया जाता है, जबकि दीर्घकालीन प्रशिक्षण एक लम्बे समय तक चलता है। अल्पकालीन प्रशिक्षण किन्हीं विशेष परिस्थितियों में दिया जाता है। जैसे- युद्ध के समय मोर्चे पर भेजते समय नवनियुक्त सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत दीर्घकालीन प्रशिक्षण में विषय की गहन जानकारी एक लम्बी अवधि में प्रदान की जाती है। जैसे- शान्तिकाल में सैनिकों को दिया गया प्रशिक्षण। यह प्रशिक्षण जटिल व तकनीकी प्रकृति का होता है।

अवधि के अनुसार प्रशिक्षण को अल्पकालिक और दीर्घकालिक वर्गों में रखा जाता है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम यदि कुछ सप्ताहों या एक-दो माह का होता है तो उसे अल्पकालिक प्रशिक्षण कहते हैं और यदि यह छह महीने से एक या दो-तीन वर्ष का होता है तो उसे दीर्घकालिक प्रशिक्षण कहा जाता है। भारत में दीर्घकालिक प्रशिक्षण का उदाहरण भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण है जिसकी अवधि तीन वर्ष होती है।

2. **विभागीय एवं केन्द्रीय प्रशिक्षण (Departmental and Central Training)-** विभागीय प्रशिक्षण विभाग या कार्यालय के अन्दर ही अनुभवी विभागीय अधिकारियों द्वारा प्रदान किया जाता है।

यह प्रशिक्षण विभाग की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप दिया जाता है। इसके विपरीत उच्च एवं जटिल कार्यों के लिए प्रशिक्षण विभाग के केन्द्रीय मुख्यालय या केन्द्रीय सत्ता द्वारा दिया जाता है। प्रशिक्षण जब विभाग द्वारा (विभाग के अंदर) आयोजित किया जाता है तो उसे विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। यह विभाग के वरिष्ठ एवं अनुभवी सदस्य देते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एस. बी. पी. राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है। दूसरी ओर विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण का आयोजन जब केंद्रीय प्रशिक्षण संस्थान द्वारा होता है तो उसे केंद्रीय या केंद्रीयकृत प्रशिक्षण कहते हैं । इस प्रकार के प्रशिक्षण का उदाहरण एल.बी.एस. राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण है ।

3. **कौशल एवं सामान्य प्रशिक्षण (Skill and General Training)**- कौशल प्रशिक्षण विशिष्ट योग्यता प्रदान करने के उद्देश्य से दिया जाता है। उदाहरणार्थ- पुलिस विभाग को आपराधिक कृत्यों की खोज व निवारण हेतु दिया गया प्रशिक्षण। इसके विपरीत, सामान्य प्रशिक्षण किसी विशिष्ट कौशल को बढ़ाने के लिए नहीं वरन् कार्य-सम्पादन को सुगम बनाने की दृष्टि से दिया जाता है। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों की जानकारी देते हुए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की जाती है, जिससे कि प्रशिक्षणार्थी सरलता से विषय को ग्रहण कर सकें।
4. **प्रवेश-पूर्व, सेवाकालीन एवं प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Pre-Entry, in-Service and Post-Entry Training)-** लोक सेवाओं में प्रवेश से पूर्व दिया गया प्रशिक्षण प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण है, जबकि किसी व्यक्ति विशेष को सेवा में प्रवेश के बाद दिया गया प्रशिक्षण प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण कहलाता है। महाविद्यालयों और विश्व विद्यालयों की औपचारिक शिक्षा के पश्चात चयनित लोक सेवकों का प्रशिक्षण विभिन्न संस्थानों में आयोजित किए जाते हैं। इसे सेवाकालीन प्रशिक्षण भी कहा जाता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप भी हो सकता है और इस सेवा के सभी स्थानों पर दिया जा सकता है। इससे कर्मचारी की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य बनाया जाता है। कभी-कभी कर्मचारी के वास्तविक कार्य से प्रवेश उत्तर प्रशिक्षण का सीधा संबंध नहीं होता परंतु उनकी सामान्य योग्यता और संगठनात्मक कार्य निष्पादन सुधारने प्रत्यक्ष रूप से बहुत सहायक होता है। सेवा में पद-स्थापन से पूर्व दिया जाने वाला प्रशिक्षण 'प्रवेश-पूर्व प्रशिक्षण' कहलाता है। शिक्षण संस्थाएँ इस प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वर्तमान में विश्व विद्यालयों में तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण को विशेष महत्व दिया जा रहा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण पहले से कार्यरत कार्मिकों को दिया जाता है जिससे कि वे अपने कार्य को अधिक कुशलता व दक्षता के साथ सम्पन्न कर सकें। यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रशिक्षण सामूहिक या व्यक्तिगत किसी भी रूप में हो सकता है।

   महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की शिक्षा तथा व्यवसाय अथवा तकनीकी शिक्षा को प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण की संज्ञा दी गई है। विगत वर्षों में सरकार ने प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय पदों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को संचालित करने के लिए शिक्षण संस्थानों की स्थापना की है। कुछ ऐसे संस्थान भी हैं जो सेवा से पूर्व प्रशिक्षण के लिए विविध प्रकार की व्यवस्थाएं संचालित करते हैं। प्रवेश पूर्व प्रशिक्षण काफी प्रचलित प्रथा है। सेवाकालीन प्रशिक्षण औपचारिक और अनौपचारिक पद्धति का संयुक्त रूप हो सकता है तथा इसे सेवा के सभी स्तरों पर दिया जाता है। कर्मचारियों की दक्षता और कार्य निष्पादन सुधारने में सहायता मिलती है तथा उन्हें व्यवसायिक रूप से अधिक सक्षम और योग्य थी बनाया जाता है। यह प्रशिक्षण उन प्रत्याशियों को दिया जाता है जो सार्वजनिक सेवा में निकट भविष्य में प्रवेश करना चाहते हैं।

दूसरे शब्दों में, यह विभिन्न संस्थानों और कॉलेजों में दिए जाना वाला व्यावसायिक शिक्षण है। यह शिक्षण एप्रेंटिसशिप और इंटर्नशिप के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका में बेहद लोकप्रिय है।

5. **अनुस्थापन प्रशिक्षण (Orientation Training)-** अनुस्थापन प्रशिक्षण सेवाकालीन प्रशिक्षण का ही एक प्रकार है। किसी भी संगठन में नवनियुक्त कर्मचारीकों उसके पद व स्थिति से महत्वपूर्ण जानकारी दी जाती है, उसे ही 'अनुस्थापन प्रशिक्षण' कहा जाता है। अभिविन्यास प्रशिक्षण नए लोक सेवकों को संगठन कार्य कार्य करने की स्थिति तथा पद्धतियों का ज्ञान से परिचय वही विन्यास प्रशिक्षण द्वारा दिया जाता है। यह एक योजनाबद्ध प्रशिक्षण है जिसका मूल उद्देश्य कर्मचारियों की मूल अवधारणा, नए वातावरण संगठन के लक्ष्य और उद्देश्य और संगठन में उसके अपने स्थान से परिचित कराना है। हाल के वर्षों में विभिन्न देशों में इस प्रकार के प्रशिक्षण का महत्व बढ़ रहा है।

इस प्रकार विभिन्न संगठनों द्वारा अपने उद्देश्यों एवं आवश्यकताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उपयोग अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने हेतु किया जाता है। ज्ञान का नवीनीकरण एंव विकास सूचनाओं का प्रसार, कार्य-शैलियों में परिवर्तन तथा वैयक्तिक विकास आदि इस प्रशिक्षण के प्रमुख उद्देश्य हैं।

## 4.7 प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक

प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा संगठनों के कर्मचारियों के ज्ञान, निपुणताओं तथा रूचियों में वृद्धि की जाती है। विभिन्न संगठनों की परिवर्तित आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि कर्मचारियों के लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायें। लोक सेवकों को प्रशिक्षण प्रदान करने में विविध विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें महत्वपूर्ण पद्धतियां हैं-

1. **औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण-** आजकल अधिकांश देशों में औपचारिक शिक्षा द्वारा प्रशिक्षण की तकनीक अपनाई गई है। इसके अंतर्गत व्याख्यान या कक्षाएं आयोजित करके नवनियुक्त कर्मचारियों को वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा औपचारिक रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है। यदा-कदा बाह्य विशेषज्ञों द्वारा भी व्याख्यान का आयोजन भी किया जाता है। निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर यह प्रशिक्षण सामूहिक चर्चा, संगोष्ठी, अभिभाषण और कार्यशाला पर आधारित होती है। विभागीय अध्यक्ष भी इस दौरान कर्मचारियों को संबोधित करता है तथा उन्हें आवश्यक निर्देश भी देता है। औपचारिक प्रशिक्षण में फिल्म, दृश्य, श्रवण उपकरण तथा कंप्यूटरों का ही प्रयोग किया जाता है। व्याख्यान पद्धति प्रशिक्षण का यह सबसे पुराना तरीका है। इसमें वरिष्ठ विद्वानों तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा व्याख्यान दिए जाते हैं। इनसे प्रशिक्षुओं को उनके काम के विभिन्न पक्षों पर नई-नई जानकारियाँ मिलती है। व्याख्यान विधि का एक लाभ यह हैं कि यह एक प्रत्यक्ष विधि है, जिसे कि प्रशिक्षार्थियों के एक बड़े समूह के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अत: इससे समय एवं धन, दोनों की बचत होती है। इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि इसके द्वारा केवल सैद्धान्तिक ज्ञान की प्रदान किया जा सकता है, व्यवाहारिक ज्ञान नहीं।
2. **कार्य करते हुए अर्जित अनुभव द्वारा प्रशिक्षण-** प्रायः अधिकारी और कर्मचारी कार्य करने के दौरान अर्जित अनुभवों से बहुत कुछ सीखते हैं और इसी सीखने की प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए उनका स्थानांतरण एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में किया जाता है। वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा समय-समय पर अनुदेश या निर्देश इस सीखने की प्रक्रिया में नए कर्मचारियों की सहायता करते हैं। अल्पकालिक तौर पर अंतर विभागीय विनिमय कार्यक्रम या अध्ययन दौरे द्वारा भी कर्मचारियों की दक्षता को सुधारने का प्रयास किया जाता है। समय के साथ यह सीखने की प्रक्रिया अधिक परिपक्व होती जाती है और प्रशासक के रूप में उसकी कार्यशैली में आवश्यक सुधार भी लाती है। लेकिन यह पद्धति काफी

धीमी है और इसमें अत्यधिक समय भी लगता है। अक्सर इसके स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्य और निश्चित समय सीमा नहीं होती है।

3. **प्रशिक्षण की सम्मेलन पद्धति-** वर्तमान समय में यह पद्धति सर्वाधिक प्रचलित है। प्रशिक्षण हेतु विभिन्न विभागों से चुने गए अधिकारियों एवं कर्मचारियों के समूह को एक मंच पर लाकर चर्चा द्वारा अनुभव और विचारों को साझा किया जाता है। प्रशिक्षण की यह व्यवस्था विश्लेषण पद्धति भी कही जाती है। इसमें दूसरों के अनुभव से सीखने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त होता है और प्रशिक्षण पा रहे कर्मचारियों की भूमिका भी सक्रिय बनी रहती है। चर्चा को सही दिशा में रखने के लिए अनुदेशक का कार्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कई अन्य देशों में सम्मेलन पद्धति बहुत ही लोकप्रिय है। भारत में भी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के अल्पकालिक प्रशिक्षण के लिए इस पद्धति का उपयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत, सामूहिक विचार-विमर्श द्वारा सूचनाओं एवं विचारों का आदान-प्रदान किया जाता है। इसके उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव से सभी को लाभान्वित करना होता है। इस विधि के अन्तर्गत भाग लेने वाले विभिन्न विषयों पर अपने विचारों को प्रस्ततु करते हैं, तथ्यों, विचारों एवं आँकडों का आदान-प्रदान एवं परीक्षण करते हैं, मान्यताओं की जाँच करते हैं, निष्कर्षों को निकालते है तथा परिणामस्वरूप कार्यो के निष्पादन में सुधार हेतु योगदान देते है।
4. **प्रशिक्षण की अभिषद (सिंडीकेट) पद्धति-** प्रशिक्षण की इस पद्धति का जन्म इंग्लैंड में एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज (हेनले-ओन-थेम्स) में हुआ था। इस पद्धति में तीन या चार प्रशिक्षुओं के छोटे से दल को अध्ययन परियोजना का काम दिया जाता है। सामान्य सदस्यों के मार्गदर्शन में प्रशिक्षु से उस विषय का गहन अध्ययन कराया जाता है। अत: यह प्रशिक्षण की भागीदारी पद्धति है। अभिषद दो प्रकार के होते हैं- जानकारी संग्रह और समस्या समाधान।
5. **विषय अध्ययन पद्धति-** इसमें विषय विशेष का सघन और गहरा अध्ययन किया जाता है। इसके लिए वास्तविक मामलों का वर्णन उन लोगों द्वारा किया जाता है जिनको अध्ययनाधीन मामले का निजी अनुभव होता है। इसके बाद सामान्य सदस्य के निर्देशन और देख-रेख में सामूहिक परिचर्चा की जाती है। इस तरीके से लोकसेवकों की समझ और कार्यक्षमता विकसित होती है।
6. **संवेदनशीलता प्रशिक्षण-** यह सबसे जटिल और नवीनतम पद्धति है। प्रशासनिक सिद्धांत के साहित्य में कर्मचारियों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता में सुधार करने के लिए इस पद्धति का सुझाव क्रिस आर्गिरिस ने दिया था। इसको टी-ग्रुप ट्रेनिंग भी कहते हैं। इसका लक्ष्य है- व्यवहार के अपेक्षित ढंगों के प्रति प्रशिक्षुओं की मनोवृत्तियों का अनुकूलन। ए.आर. त्यागी के शब्दों में- ''टी-युप में प्रशिक्षु अपनी स्वभावगत विलक्षणताओं को अपने साथी प्रशिक्षुओं के सामने लाते हैं जो आपसी व्यवहार के द्वारा उनको रगड़कर साफ कर देते हैं। ये प्रशिक्षु अपने पुराने व्यवहार के प्रति सचेत हो जाते हैं जिसका पता उनको अन्यथा कभी नहीं चल पाता और इस प्रकार यह पद्धति उन्हें आत्मविश्लेषण तथा आत्मविकास का अवसर प्रदान करती है।''

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रशिक्षण की कोई भी पद्धति सर्वश्रेष्ठ नहीं है। इसे आवश्यकता समय एवं उद्देश्यों को देखकर ही निर्धारित किया जाना चाहिए। भिन्न-भिन्न देश प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकताओं के अनुकूल जिन विभिन्न पद्धतियों का समावेश कर अपने कार्यक्रमों को संचालित करते हैं। संगोष्ठी, सम्मेलन, कार्यशाला, सामूहिक चर्चाएं और क्षेत्र के दौरे इस संदर्भ में काफी आवश्यक हो जाते हैं। पुनश्चर्या और अभिविन्यास पाठ्यक्रम की उपयोगिता भी इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण हो जाती है।

## 4.8 लोक सेवकों के प्रशिक्षण की अवधारणा

राज्य के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने के साथ-साथ लोक प्रशासन में शिक्षण और प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की उपयुक्त योजना का निर्माण आवश्यक हो गया है। नियुक्ति के पश्चात प्रशासकीय क्षमता पर कार्मिकों के प्रशिक्षण का काफी प्रभाव पड़ता है। सरकार के प्रत्येक कार्य के लिए उसके अनुरूप प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। संसदीय प्रजातंत्र की परंपरा के प्रति सम्मान की भावना का विकास एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि लोक सेवकों को दक्ष और कार्य कुशल बनाने के साथ-साथ उन्हें तदनुरूप प्रशिक्षित भी किया जाए। भारत विविधताओं का देश होने के कारण अलग-अलग प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। ग्रामीण एवं शहरी विभाजन रेखा तथा निरंतर बदलते परिदृश्य में लोक सेवकों का अभिमुखीकरण एक आवश्यक तथ्य है।

प्रशिक्षण की अवधारणा समय के साथ परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में गुरु- शिष्य परंपरा एक प्रथा थी, इसमें गुरु से स्पष्ट ज्ञान, कार्यकुशलता और कला सीखने के लिए विद्यार्थी अपने घर से दूर गुरुकुल आश्रम में रहते थे तथा विविध प्रकार के शिक्षाओं से प्रशिक्षित होते थे। परंतु यह व्यवस्था केवल समाज के उच्च वर्गों तक सीमित थी। सामान्य नागरिकों का व्यवसाय उनके जन्म और जाति के आधार पर तय होता था तथा उनके परिवार या समुदाय के अनुरूप ही औपचारिक या अनौपचारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। निजी क्षेत्र व्यापार और प्रबंध के क्षेत्र में यूरोप में प्रारंभ औद्योगिक क्रांति के पश्चात व्यवस्थित और प्रणाली प्रशिक्षण प्रारंभ हुआ। उद्योग विस्तार के बाद कार्य कुशल और विशेषज्ञ कामगारों की आवश्यकता हुई ताकि कार्यकुशलता और गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके। इस प्रकार प्रशिक्षण की तत्काल आवश्यकता औद्योगिक क्रांति के काल में प्रारंभ हुई। परंतु सामान्य प्रशासन के क्षेत्र में प्रशिक्षण को जरूरी नहीं समझा गया क्योंकि सरकार के कार्य सीमित थे। लोक सेवकों के परीक्षण प्रक्रिया के माध्यम से अनुभव द्वारा सीखने की उम्मीद की जाती थी और यही प्रणाली काफी लंबे समय तक चलती रही। आधुनिक युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का विकास हुआ है। सरकार के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई है तथा समय के अनुसार वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति प्रगति ने जीवन में काफी बदलाव लाए हैं। जिससे शासन के कार्यों में कई गुना वृद्धि हुई है। विकास प्रशासन को चलाने के लिए अत्यंत कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है और इसके लिए योजनाबद्ध, प्रयोजनमूलक प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गई है। जिस कारण प्रत्येक देश में लोक सेवकों को किसी न किसी प्रकार से प्रशिक्षण देने के लिए राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किए गए हैं।

## 4.9 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली

भारत में लोक सेवकों का प्रशिक्षण संबंधी समस्या और समाधान ब्रिटिश विचारधारा ने काफी हद तक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण प्रशासनिक सेवा के सदस्यों के लिए भारत में एक भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। संगठन एवं नियोजन विभाग की स्थापना के बाद प्रशिक्षण को और भी प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया। अनंतर योजना आयोग ने भी एक ऐसे प्रशिक्षण संचालक को नियुक्त करने का प्रस्ताव दिया था जिसे कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम तथा व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम संगठित करने का दायित्व सौंपा जाए। विशिष्ट सेवाओं के सदस्यों को दिए जाने वाले सामान्य प्रशिक्षण संबंधी ए. के. चंदा के सुझावों को गृह मंत्रालय ने काफी हद तक स्वीकार भी किया था। 1954 में गृह मंत्रालय ने सभी राज्य सरकारों को ऐसी आदेश दिए थे, जिनमें अखिल भारतीय सेवाओं और केंद्रीय सेवाओं के अधिकारियों के लिए अभिनव पाठ्यक्रम की प्रबंध संबंधी योजना प्रस्तावित की गई थी। 1957 में दिशा में प्रारंभिक कदम उठाया गया तथा 6 से 10 तक की नौकरी कर चुके भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज शिमला में पाठ्यक्रम शुरू किया गया । अनंतर गृह

मंत्रालय ने भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली और भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला- दोनों को मिलाकर मसूरी में राष्ट्रीय प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की जिसने एक सितंबर 1959 से कार्य आरंभ कर दिया। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी कहा जाने लगा है।

अखिल भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा और केंद्रीय सेवाओं के प्रथम श्रेणी और परिविक्षाधीन अधिकारियों को दो चरणों में संस्थागत शिक्षण दिया जाता है- आधार पाठ्यक्रम और व्यवसायिक पाठ्यक्रम। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा में चयनित उम्मीदवार जिन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा तथा केंद्रीय सेवा वर्ग आवंटित किया जाता है, इन्हें एक साथ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी उत्तराखंड में आधारभूत पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दिया जाता है। आधारभूत पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य प्रशिक्षु अधिकारियों को लोक सेवाओं की मूलभूत जानकारी देने, उन्हें अभिप्रेरित करने, संविधान और प्रशासन तंत्र को समझने तथा भारतीय परिवेश और मूल्यों को जानने के अतिरिक्त अन्य सेवाओं के साथ समन्वय का भाव दिखाना होता है। आधार पाठ्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षु अधिकारियों को भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजनीतिक सिद्धांत, भारत का संविधान और शासन, लोक प्रशासन विधि, आधारभूत अर्थशास्त्र और जनसंख्या अध्ययन तथा हिंदी भाषा का सामान्य अध्ययन करवाया जाता है।

इस आधारभूत प्रशिक्षण के बाद के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी अकादमी में ही बने रहते हैं जबकि अन्य सेवाओं के अधिकारी अपने विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थानों में अग्रिम प्रशिक्षण हेतु चले जाते हैं। लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में व्यवसायिक प्रशिक्षण भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए इसके बाद प्रारंभ होता है, जो 26 सप्ताहों तक चलता है। इसके अंतर्गत शिक्षकों को प्रशासनिक सेवाओं के दायित्वों का अध्ययन कराया जाता है।

व्यवसायिक प्रशिक्षण के पहले चरण के पूर्ण होने के बाद प्रशिक्षु अधिकारी आवंटित राज्य में जिला स्तरीय व्यवसाय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जो 1 वर्ष का होता है। इस दौरान 3 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण, जिसमें उन्हें राज्य के प्रशासनिक तंत्र से संबंधित सामने महत्वपूर्ण बातें सिखाई जाती है। इसके उपरांत प्रशिक्षु अधिकारियों को वास्तविक प्रशासनिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यालयों एवं क्षेत्रों में भेजा जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य सामान्य कानून एवं नियम, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय एवं राजस्व प्रशासन, भूमि सुधार और नियोजन तथा विकास का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना होता है। व्यावहारिक स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त करते समय आने वाली समस्याओं का निराकरण संबंधित जिलाधिकारियों के मार्गदर्शन में किया जाता है। जिला स्तरीय व्यवसायिक प्रशिक्षण के अंतिम चरण में राज्य प्रशासनिक अकादमी में 4 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है। जिला स्तरीय प्रशिक्षण के सभी राज्यों के प्रशिक्षु अधिकारी एक बार फिर लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी, मसूरी आते हैं, जहां उनका व्यवसाय प्रशिक्षण का द्वितीय चरण जो अंतिम चरण भी है, प्रारंभ होता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण का उद्देश्य शारीरिक- मानसिक रूप से तैयारी, विश्लेषण लेखन और संचार क्षमता विकसित करना और जिम्मेदार अधिकारी बनाना होता है। अंत में अधिकारियों की एक लिखित परीक्षाओं होती है, जो अकादमी द्वारा आयोजित की जाती है, जिसका संचालन संघ लोक सेवा आयोग करता है। इस परीक्षा में सफल अधिकारियों को तथा 1 साल या 18 माह का सेवा पूर्ण कर लेने के पश्चात उन्हें सेवा में स्थाई किया जाता है। प्रशिक्षण पूर्ण कर लेने के पश्चात भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का स्थानांतरण एक जिले से दूसरे जिले में होता है। अवर सचिव के रूप में उन्हें लगभग 18 महीने के लिए सचिवालय भेजा जाता है और और अनंत है 4 साल की सेवा के पश्चात में जिलाधिकारी पद प्रदान किया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण सेवा करने अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी भारत में की गई है। हितेन माया समिति एवं रामचंद्रन समिति ने भारतीय प्रशासनिक सेवा किए सेवाकालीन प्रशिक्षण का मूल्यांकन किया और इसमें आवश्यक सुधार की अनुशंसा की है।

भारतीय विदेश सेवा के के अधिकारियों को 3 वर्षीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का पहला चरण लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी में 4 माह की आधारभूत प्रशिक्षण से प्रारंभ होता है। अनन्तर इन प्रशिक्षु अधिकारियों को इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में 4 माह का विदेश नीति, अंतरराष्ट्रीय कार्यप्रणाली, अंतरराष्ट्रीय संबंध और भाषा की जानकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। अधिकारी किसी जिले के प्रशासन से संलग्न होता है, ताकि वह दायित्वों के व्यवहारिक संपर्क में आने योग्य हो जाए। साथ ही कुछ समय के लिए विदेश मंत्रालय के सचिवालय में भी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में हिंदी और एक देश भाषा तथा ऐसे विषयों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करना उन्हें आवश्यक समझा जाता है। प्रशिक्षु अधिकारियों को कुछ दिनों के लिए सेना के किसी यूनिट में और भारत दर्शन के लिए भी भेजा जाता है।

भारतीय पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी में 16 सप्ताह के आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकैडमी, हैदराबाद में प्रशिक्षण हेतु जाते हैं, ,जहां उन्हें 1 वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाता है। पहले यह संस्थान माउंट आबू में था लेकिन आंतरिक आपातकाल के दौरान इसे हैदराबाद स्थानांतरित कर दिया गया। अधिकारियों को सर्वप्रथम संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाता है जो 4 सप्ताह का होता है। इसके अंतर्गत भारतीय दंड संहिता, अपराधशास्त्र, भारतीय साक्ष्य अधिनियम तथा भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की जानकारी दी जाती है। विभिन्न हथियारों का प्रशिक्षण सेंट्रल ऑफ स्कूल टेक्टोनिक्स में दिया जाता है। प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में अपराध, मनोविज्ञान, अपराध का पता लगाने में सहायक वैज्ञानिक उपकरण, भ्रष्टाचार का सामना करने की नीतियों तथा अग्नि और संकट में रक्षा आदि का अध्ययन भी सम्मिलित होता है। 1 वर्ष के प्रशिक्षण के उपरांत उन्हें संघ लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित एक परीक्षा उत्तीर्ण करना होता है। तत्पश्चात उन्हें व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु आवंटित राज्य में सहायक पुलिस अधीक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया जाता है, यहां उन्हें विभिन्न अधीनस्थ पदाधिकारियों के कार्य करके प्रभारी प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है। इसके उपरांत ने सहायक पुलिस अधीक्षक नियुक्त किया जाता है।

भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवा में नियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को शिमला में अपने विभाग के प्रशिक्षण विद्यालय में प्रशिक्षित किया जाता है, जो लेखा परीक्षण एवं लेखा सेवाओं के विविध पहलुओं से संबंधित होता है। इस प्रशिक्षण के अंत में प्रशिक्षु अधिकारियों को उन विषयों की एक विभागीय परीक्षा भी उत्तीर्ण करना होता है, जिसका संबंध उनके कार्यों से होता है। विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात प्रशिक्षु अधिकारियों को सहायक लेखा अधिकारी के पद पर नियुक्त किया जाता है।

भारतीय राजस्व सेवा के अधिकारियों को राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर के प्रशिक्षण विद्यालय में अपने विभागीय कार्यों को अच्छे ढंग से संपादित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इनके पाठ्यक्रम में आयकर कानून तथा परीक्षा, विभिन्न संस्थानों में छापा मारने गए तथा अन्य नियम एवं विनियमों को शामिल किया गया है। इनकी प्रशिक्षण अवधि 18 माह की होती है।

भारतीय रेल सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण हेतु रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा में नवनियुक्त अधिकारियों को यातायात, परिवहन रेलवे नियम, दुर्घटना राहत विधियों, तथा यात्रियों से संबंधित तथ्यों की जानकारी दी जाती है। प्रशिक्षण के दौरान इन्हें व्यावहारिकता का भी ज्ञान दिया जाता है। तत्पश्चात इन्हें विविध रेल जोन में भेज दिया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अलावा अन्य अखिल भारतीय सेवाओं तथा केंद्रीय सेवाओं के लिए नियमित अंतराल पर पुनश्चर्या प्रशिक्षण का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार के प्रशिक्षण भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज हैदराबाद; राष्ट्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज माउंट आबू; राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान हैदराबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान अहमदाबाद इत्यादि संस्थाओं द्वारा समय-समय पर संचालित किए जाते हैं।

## 4.10 भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियां और संस्थाएं

अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया लंबी है। ब्रिटिश काल से ही उच्च लोक सेवकों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई थी। भारत में सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में वरिन हेस्टिंग्स ने 'प्रशिक्षण' की आवश्यकता अनुभव की। उनके मतानुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं व पद्धतियों आदि का ज्ञान कराने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक था। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हेतु लॉर्ड वेलेजली (1798-1805) ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की। तत्पश्चात् 1813 ई में 'हेलिबरी कॉलेज' भी इसी उद्देश्य से स्थापित किया गया। यह सन् 1857 ई तक चलता रहा। इसके बाद लोक सेवकों को ब्रिटिश विश्वविद्यालय कैम्ब्रिज या किसी अन्य में प्रशिक्षण देने की पद्धति आरम्भ की गयी उन्हें भारतीय कानून, भारतीय भाषा, भारतीय राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता था। एक भारतीय भाषा का ज्ञान होना भी अनिवार्य था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण हुए सरकार के कार्यों में विस्तार के फलस्वरुप लोक सेवकों को प्रणालीबद्ध और अद्यतन प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। लोक सेवकों का प्रशिक्षण आज केंद्र और राज्य सरकारों की कार्मिक नीति का अभिन्न अंग है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग अखिल भारतीय और केन्द्री य सेवाओं की प्रशिक्षण नीतियां बनाने और उनका समन्वय करने और राज्यत सरकार के कर्मचारियों की क्षमता निर्माण का कार्य भी करता है। केंद्र एवं राज्य सरकारों ने कई प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए हैं, जो लोक सेवकों को समय-समय पर उनके उनके सेवाकाल के दौरान भी सामान्य और व्यवसायिक दोनों प्रकार के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या अधिक है। स्वाधीन भारत में लोक सेवकों के प्रशिक्षण हेतु निम्नलिखित संस्थान हैं- लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी, सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली, एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद, रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा, राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्धन, संस्थान, राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी, नागपुर। कुछ महत्वपूर्ण संस्थानों का विवरण निम्न है-

1. **लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी-** भारत में उच्च लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिए लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षण केंद्र है। वर्ष 1959 में भारतीय प्रशासनिक सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला तथा भारतीय प्रशासनिक सेवा प्रशिक्षण विद्यालय, दिल्ली को संयुक्त कर इस संस्थान की स्थापना की गई थी। 2 अक्टूबर 1972 से इसे लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी नाम दिया गया। यह अकादमी भारतीय सिविल सेवाओं के सदस्यों को सामान्य बुनियादी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शुरुआती स्तर पर प्रशिक्षण प्रदान करती है। अखिल भारतीय एवं केंद्रीय सेवाओं के नवनियुक्त प्रशिक्षु अधिकारियों को लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन संस्थान मसूरी में 4 माह के आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण दिया जाता है और तत्पश्चात वे अपनी-अपनी प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। आधार पाठ्यक्रम का उद्देश्य सामान्य दृष्टिकोण का

विकास है तथा मौलिक विषयों से शिक्षा देने के लिए सभी अखिल भारतीय सेवाओं के प्रथम वर्ग के लिए 5 महीने का पाठ्यक्रम आधारित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है।

वर्ष 1969 से भारत सरकार ने भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण के लिए नया प्रारूप प्रस्तुत किया है, जिसे 'सैंडविच पाठ्यक्रम' अर्थात मिश्रित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है। अधिकारियों, जिनका सेवा का लाभ हो 15 साल हो चुका है, वह छोटे-छोटे पाठ्यक्रम गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में सम्मिलित होते हैं। इन पाठ्यक्रमों का संबंध सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय नीति, अंतर विभागीय नियोजन और समन्वय आदि से संबंधित होता है। इन पाठ्यक्रमों के लिए सामान्य और प्राविधिक दोनों प्रकार के अधिकारी आमंत्रित किए जाते हैं। वर्तमान में इस अकादमी में तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है- अखिल भारतीय परीक्षा अधीन अधिकारियों के अंतिम परीक्षा नियमों के अंतर्गत पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के लिए 1 वर्ष पाठ्यक्रम तथा 10 साल तक के अधिकारियों के लिए सप्ताह का पाठ्यक्रम होता है।

2. **सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद-** केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू, 1975 तक भारतीय पुलिस सेवा के नए नियुक्त अधिकारियों को प्रवेश के समय व्यवसायिक प्रशिक्षण देता था। अब इसका कार्य राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद करता है। केंद्रीय पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज, माउंट आबू अब भारतीय पुलिस सेवा और राज्य पुलिस सेवा दोनों के मध्यवर्ती और वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को पुनःचर्या प्रशिक्षण और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करता है। यह अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के नए अधिकारियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करता है। इस अकादमी का उद्देश्य भारतीय पुलिस के लिए ऐसे अधिकारियों को प्रशिक्षण द्वारा तैयार करना था जो बल का नेतृत्व ईमानदारी समर्पण और जनसेवा की भावना के साथ कार्य करें। केंद्रीय सचिव की अध्यक्षता में वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के रूप में लेकर एक सलाहकार बोर्ड गठित किया जाता है जो भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करता है। यह पुलिस अकादमी भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए बुनियादी पाठ्यक्रम सेवाकालीन प्रबंधन पाठ्यक्रम आयोजित करती है। साथ ही पुलिस और अर्धसैनिक बलों के पुलिस प्रशिक्षण संस्थानों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विशेष पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुशासन, चरित्र, अपराध शाखा ,व्यवहारिक ज्ञान, विद्रोह और आतंकवाद, आपदा प्रबंधन, आम जनता-पुलिस संबंध पर विशेष बल देती है।
3. **प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज, हैदराबाद-** प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना प्राविधिक शिक्षा संबंधी अखिल भारतीय परिषद की सिफारिश पर 1957 में हुई थी। इंग्लैंड में स्थापित हैनले एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज की तर्ज पर गठित की गई है। सामान्यतया 8 से 15 वर्ष की व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हर मनुष्य जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित व्यक्तियों के साथ रहने के कारण अपने कार्य के संबंध में एक अलग स्थिति में सोच कर उससे लाभ उठा सकता है तथा यह भी संभव है कि उसे उच्चतर उत्तरदायित्व के योग्य बनाने हेतु यह एक सर्वोत्तम सफल प्रमाणित शैक्षणिक चरण है। निजी क्षेत्र के प्रशासन सार्वजनिक क्षेत्र के सदस्य प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में 10-10 की संख्या में सिंडिकेट के रूप में बांट दिए जाते हैं। विभिन्न विषयों के अनुभवी सदस्यों को एक साथ अपने अनुभवों को साझा करने का एक मंच प्रदान किया जाता है। शासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद में इस प्रकार के पाठ्यक्रम के मुख्य अंश संगठनों की संरचना, आंतरिक संबंध और प्रशासन तथा जीवन से संबंधित होते हैं। इन विषयों में अर्थशास्त्र, आर्थिक क्रियाएं, आर्थिक संस्थाएं, नियोजन और विकास, व्यापारिक संबंध एवं सरकार, संविधान की कार्यप्रणाली, प्रबंधन, सार्वजनिक व्यापारिक लेखा तथा उद्योग जगत से संबंधित सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। प्रशिक्षण प्रणाली सामूहिक चर्चा के

आधार पर होती है। विभिन्न सुझावों के आधार पर एक विस्तारपूर्वक रिपोर्ट तैयार की जाती है और इन पर व्यापक चर्चा होती है।

4. **राष्ट्रीय ग्राम विकास संस्थान, हैदराबाद-** सन् 1956 में स्थापित संस्थान ग्राम विकास प्रशासन के क्षेत्र में नियुक्त उच्च और मध्यम स्तर के लोक सेवकों के लिए अभिविन्यास पाठ्यक्रम में आयोजित करता है तथा ग्राम विकास से के क्षेत्र में यह अनुसंधान कार्य भी संपादित करता है। राष्ट्रीय विकास संस्थान हैदराबाद जून 1958 में इस उद्देश्य के साथ स्थापित किया गया था कि अधिकाधिक संख्या में ऐसे महत्वपूर्ण कर्मचारी तैयार किए जाएं, जो कार्यक्रम के प्रशासकीय एवं समाजशास्त्रीय पहलुओं से परिचित हो। ग्रामीण विकास में अध्ययन-अनुसंधान करना इस संस्था का प्रमुख अंग है। यह ग्रामीण विकास संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम का आयोजन करता है, जिसमें आधारभूत जानकारियां प्रदान की जाती है। पाठ्यक्रम में प्रतिभाग करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी अपने विचारों एवं अनुभवों के परस्पर आदान-प्रदान से सामुदायिक विकास कार्यक्रम और समग्र राष्ट्रीय योजना के बीच अंतर संबंध को समझने का प्रयास करते हैं। साथ ही सामुदायिक विकास के लक्ष्य तक पहुंचने में संतुलन और समन्वय के प्रयोग पर भी इस कार्यक्रम में बल दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम सामान्य प्रशासकीय नमूने जैसा संगठित प्रशिक्षण नहीं होता बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य कार्यक्रम में लगे प्रमुख कर्मचारियों में नए विचारों को जगाना और अनुभवों के आधार पर उन्हें बेहतर मंच प्रदान करना होता है। राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद में विकास आयुक्त विकास से जुड़े अन्य अधिकारी शासन के सचिव, उप सचिव, प्राविधिक विकास विभागों के प्रधान एवं क्षेत्रीय पदाधिकारी, आयुक्त, जिलाधीश, अतिरिक्त जिलाधीश, चयनित खंड विकास अधिकारी तथा विविध केंद्र सरकार के मनोनीत अधिकारी और कर्मचारी भी प्रतिभाग करते हैं। यह संस्थान जनप्रतिनिधियों को भी प्रशिक्षित करने का कार्य संपादित करता है। इसके अंतर्गत संसद और विधानमंडल के सदस्य, जिला पंचायत के अध्यक्ष एवं सदस्य, विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि एवं अन्य देशों से भाग लेने वाली व्यक्तियों को भी यह प्रशिक्षित करता है।

5. **भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली-** भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना पॉल ऐपल्बी रिपोर्ट- 1953 की अनुशंसा के आधार पर 1954 में नई दिल्ली में की गई थी। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, लोक प्रशासन में अनुसंधान के अलावा केंद्रीय और राज्य सरकारों के वरिष्ठ और मध्य स्तर के कर्मचारियों के लिए अल्पकालिक अभिविन्यास और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है। यह पाठ्यक्रम बड़े स्तर के अधिकारियों के लिए नियमित रूप से संचालित किए जाते हैं जो विशेषीकृत व्यवसायिक पाठ्यक्रम संबंधी विषयों के वरिष्ठ अधिकारियों और विशेषज्ञों के व्याख्यान पर निर्भर करता है। यह संस्थान विविध पाठ्यक्रमों द्वारा लोक सेवकों को लोक प्रशासन के विविध पहलुओं से परिचित कराता है। सामान्यतः केंद्र और राज्य सरकारों की उप सचिव एवं अवर सचिवों की श्रेणी के कर्मचारी इन पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं। मध्य श्रेणी के अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम लगातार संचालित किए जाते हैं जिसमें विचार-विनिमय का अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त समस्याओं के संबंध में आधुनिकतम विचारों का आदान-प्रदान भी होता है। इसके साथ ही सामूहिक चर्चा, विचारों के आदान-प्रदान की आधार पर प्रशिक्षण कार्य संपादित किया जाता है। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली 1975 से लगातार 9 माह का शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करता रहा है जो देश का एकमात्र अनूठा पाठ्यक्रम है।

6. **रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा-** यातायात परिवहन तथा वाणिज्य विभाग तथा रेलवे लेखा सेवा के लिए नियुक्त कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के अतिरिक्त बड़ोदरा का स्टाफ कॉलेज सी भारत पदाधिकारियों के लिए विशेष पाठ्यक्रम का आयोजन भी करता है। भारतीय रेलवे लेखा सेवा के नवनियुक्त कर्मचारी भी

आने में 2 माह का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम व्यवहारिक होता है। इसका सीधा संबंध नवीनतम कार्यप्रणाली से होता है।

7. **सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान, नई दिल्ली-** इस संस्थान का पुराना नाम केंद्रीय सचिवालय प्रशिक्षण है जिसकी स्थापना 1948 में की गई थी। केंद्रीय सचिवालय और क्षेत्रीय संगठन के पदाधिकारियों के पदों के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए संस्थान की स्थापना की गई थी। इसमें संगठन और नीतियां कार्यालय की कार्यप्रणाली वित्तीय नियम और विनियम इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है। शिक्षण पूर्ण करने के पश्चात व्यवहारिक प्रशिक्षण के लिए इन कर्मचारियों को विभिन्न मंत्रालय में नियुक्त किया जाता है। उच्च श्रेणी में कार्यरत कर्मचारियों के लिए यह विद्यालय पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का भी आयोजन करता है।

कई केंद्रीय सेवाओं के अलग-अलग शिक्षण संस्थान भी स्थापित है जो अपने लोक सेवकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पुलिस, आयकर, लेखा और लेखा परीक्षा, रेलवे, दूरसंचार, विदेश ,व्यापार आदि सेवाओं के क्षेत्र में विभिन्न व्यवसायिक संस्थानों द्वारा उनके संबंधित सेवाओं के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए भी नया पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। राज्य में इस प्रकार की व्यवस्था विगत कुछ वर्षों में देखने को मिली है। इसके अतिरिक्त कुछ विश्वविद्यालय लोक प्रशासन और सार्वजनिक उद्यम विभाग आदि भी उच्च और मध्यम स्तरीय लोक सेवकों के लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। आयकर प्रशिक्षण विद्यालय, नागपुर; रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा; सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंध संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय वन अनुसंधान संस्थान देहरादून; केंद्रीय लेखा परीक्षा और लेखा प्रशिक्षण स्कूल शिमला; अखिल भारतीय स्थानीय स्वशासन संस्थान मुंबई; राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान नई दिल्ली; राष्ट्रीय नागरिक सेवा महाविद्यालय नागपुर एवं प्रशिक्षण संस्थान सहारनपुर; डाक स्टाफ कॉलेज गाजियाबाद; भारतीय प्रबंध संस्थान हैदराबाद, बेंगलुरु, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर, कोजिकोंड, चेन्नई; केंद्रीय संस्थान मुंबई; भारतीय राजस्व सेवा प्रशिक्षण संस्थान नागपुर; राष्ट्रीय जन सहयोग और बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली; जयपुर लोक प्रशासन संस्थान; हिमालय पर्वतारोहण संस्थान पटियाला; पर्यावरण अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली; विविध क्षेत्रों में भारत के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान हैं।

## 4.11 प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन

राज्य के कार्यों में विस्तार के फलस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग में इस कारण लोक सेवकों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो जाती है। भारत जैसे देश में लोक सेवकों को नवीनतम परिवर्तन एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए समय-समय पर यथा अनुरूप प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते रहे हैं। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से कर्मचारियों और अधिकारियों को उनके ज्ञान और अनुभव में वृद्धि हुई है लेकिन प्रशिक्षण प्रणाली पूरी तरह से आशाओं पर खरी नहीं उतरती है। इसमें बहुत सारी कमियां है जो नीचे वर्णित की गई हैं-

1. प्रथम, भारत जैसे विशाल देश में जहां सरकार के कार्यों में निरंतर वृद्धि हुई है। प्रशिक्षण के लिए किए गए प्रबंध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त हैं। वर्तमान प्रशिक्षण सुविधाओं से केवल थोड़े से ही लोक सेवकों को लाभान्वित किया जा सका है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की संख्या प्रकार की आवश्यकता से अधिक वृद्धि हुई है। ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम का भी आयोजन होने लगा है जो आकर्षक तो प्रतीत होते हैं, लेकिन आवश्यक नहीं होते हैं। इन कार्यक्रमों में प्रशासन की वास्तविक समस्याओं पर सही विचार नहीं होता। बढ़ते महत्व को ध्यान रखते हुए प्रशिक्षण एक व्यवसाय सा प्रतीत होने लगा है।

2. द्वितीय, अखिल भारतीय एवं प्रथम श्रेणी के केंद्रीय और राज्य सेवाओं जैसे उच्च लोक सेवाओं के प्रवेश बिंदु और सेवाकालीन प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाता है। मध्य और निम्न स्तर के कार्मिकों के प्रशिक्षण आवश्यकता की पूर्ति इन कार्यक्रमों से नहीं होती है। निम्न स्तर के कर्मचारियों के लिए अद्यतन सेवाकालीन प्रशिक्षण की रूपरेखा तैयार नहीं की गई है। इसके परिणाम स्वरूप देश के लगभग 80 से 90 प्रतिशत कर्मचारी प्रशिक्षण से वंचित रह जाते हैं।
3. तीसरा, देश में सिविल सेवा के प्रशिक्षण को गंभीरता से नहीं लिया गया है जो पद्धतियां प्रशिक्षण के दौरान अपनाई जाती हैं, वह दूसरे देशों से ली गई होती हैं और भारतीय परिदृश्य में वह उपयुक्त नहीं बैठती। प्रशिक्षणार्थियों का चयन भी सावधानीपूर्वक नहीं किया जाता है। अक्सर प्रशिक्षणार्थियों के चयन में अफसरशाही राजनीति और संरक्षण आदि को महत्व दिया जाता है। प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति सरकार एवं संगठन के लिए लाभदायक होगा, यह सर्वथा सिद्ध नहीं होता। सर्वप्रथम बहुधा ऐसे कर्मचारी प्रशिक्षण के लिए प्रेषित किए जाते हैं, जिनका चयन वैध नहीं होता।
4. चौथा, प्रशिक्षण की विषय वस्तु अक्सर अधिकारी और कर्मचारियों के लिए प्रासंगिक और सार्थक नहीं होती। अधिकांश प्रशिक्षण एजेंसियां प्रशिक्षण कार्यक्रमों और प्रणाली बंधन सेवा विकास की आवश्यकताओं के बीच में कोई समन्वय नहीं रखती। अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रम लोकतांत्रिक राजनीति तथा विकास प्रशासन की आवश्यकता को पूरा करने में असमर्थ हैं। प्रशिक्षण अधिकतर औपचारिक होता है जिसमें व्यावहारिक ज्ञान बहुत कम होता है। प्रशिक्षण का कार्मिक प्रबंधन से कोई संबंध है अक्सर देखने को नहीं मिलता। प्रायः देखने में आता है कि एक व्यक्ति को जिस क्षेत्र में प्रशिक्षण मिलता है, उसमें उसकी नियुक्ति नहीं होती। प्रशिक्षण में तकनीकी अध्ययन वालों को मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की शिक्षा नहीं दी जाती है और सामान अध्ययन वाले को विज्ञान आदि की जानकारी दी जाती है। इस प्रकार प्रशिक्षणार्थी का बहुमुखी विकास नहीं हो पाता।
5. पांचवा, अधिकांश मामलों प्रशिक्षण संस्थान की परंपरागत व्याख्यान नाली अद्यतन और आदमी पद्धतियों वाली नहीं होती। प्रशिक्षण कार्यक्रम लगभग व्याख्यान पद्धति पर ही बल देता रहा है। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विशेषकर लोक प्रशासन द्वारा संपादित किए जाने वाले कार्य और चुनौतियों की दृष्टि से व्यावहारिक और उद्देश्य पूर्ण नहीं होते।
6. और अंत में, प्रशिक्षण प्रणाली का देश में शिक्षा और अनुसंधान तथा प्रशिक्षण निष्कर्षों और प्रशासन में दक्षता प्रशिक्षण के प्रभावों का प्रणाली के मूल्यांकन नहीं किया जाता है। आने वाले वर्षों में भारतीय प्रशिक्षण संस्था को सुधारने की काफी आवश्यकता है। लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम विगत कुछ वर्षों से आयोजित की जा रहे हैं उनमें कुछ कमियां प्रतीत होती है।

बदलते परिदृश्य में जिसे उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण के कारण प्रशासन की महत्व अधिक बढ़ा है। प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। कार्यकुशलता, प्रभावशीलता, नैतिकता आदि जटिल एवं चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रशिक्षण को ज्ञान कौशल और अभिवृत्ति में विधि का कारक बनना होगा। साथी लोक सेवकों को नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, सूचना से परिचित होना अत्यंत आवश्यक है। प्रशिक्षण को क्षमता निर्माण का एक सशक्त माध्यम माना जाता है। लोक सेवकों को दायित्व निर्वहन की योग्य बनाने जनसाधारण के प्रति संवेदनशील बनाने एवं परिवर्तन करने योग्य बनाने के लिए लोक सेवाओं में कार्यकुशलता, मितव्ययिता और प्रभावशीलता लाने के लिए शिक्षण पद्धति का सहारा लिया जाता है। शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए प्रयासों की आवश्यकता है। भारतीय प्रशिक्षण पद्धति के दोषों को दूर करने के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। बौद्धिक गुणों के विकास के साथ ही भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों में वर्णित गुणों के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम इस

प्रकार का होना चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी में परस्पर सहयोग की भावना एवं नेतृत्व आदि गुणों का विकास हो सके। प्रशासकों को सेवा काल के दौरान ही अवकाश देकर प्रशिक्षण हेतु भेजा जाना चाहिए। और, निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के प्रशिक्षण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

कहा जा सकता है कि उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता निर्भर है। अत: इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. एशेटन कमेटी रिपोर्ट का संबंध किस देश से है?
2. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी कहाँ स्थापित है?
3. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली की स्थापना कब की गई थी?
4. प्रशासकीय स्टाफ कॉलेज हैदराबाद की स्थापना कब हुई थी?
5. सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी कहाँ स्थापित है?

## 4.12 सारांश

वर्तमान में लोक सेवकों का प्रशिक्षण कार्मिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग बन गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके होंगे कि सरकार के कार्यों के विस्तार के साथ ही प्रशासनिक क्रियाकलाप जटिल और तकनीकी बन गए हैं जिसके लिए विशेष ज्ञान और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। लोक सेवकों को उपयुक्त और प्रभावी प्रशिक्षण देने के लिए प्रायः सभी देशों में प्रशिक्षण की व्यापक व्यवस्था की गई है। भारत इसका अपवाद नहीं है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीनतम उभरती हुई स्थिति के अनुरूप लोक सेवकों के जिम्मेदार और क्रियाशील बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निर्धारित किया गया। प्रशिक्षण एक ऐसा मापदंड है जो लोक सेवकों को अपने सेवाकाल के दौरान किसी न किसी रूप में गुजरना ही पड़ता है जो उनकी क्रियाशीलता और कार्य कुशलता में वृद्धि करता है परंतु लोक सेवकों के प्रशिक्षण की सुविधा और प्रशिक्षण संस्थान की प्रचुरता के बावजूद भारतीय प्रशिक्षण प्रणाली वांछित परिणाम नहीं दे पाई है। इसमें बहुत सारी कमियां हैं, जिसमें समय के अनुसार सुधार लाने की आवश्यकता है। उचित व सफल प्रशिक्षण पर ही प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं सफलता निर्भर है। अत: इस दिशा में सार्थक कदम उठाना नितान्त आवश्यक है।

## 4.13 शब्दावली

प्रवेश बिंदु- चयन के बाद की अवधि परंतु वास्तविक तैनाती से पहले, मंत्रालय- सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए कार्यकारी एवं उत्तरदायी संस्था, परिवीक्षाधीन- वास्तविक तैनाती के शुरुआती एक या दो वर्ष की अवधि, जिसमे प्रशिक्षण भी शामिल है, के दौरान लोक सेवकों को परिवीक्षाधीन अधिकारी कहा जाता है, अभिविन्यास- समय के अनुसार ज्ञान को अद्यतन करना, उपबंध- प्रावधान

## 4.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** ब्रिटेन, 2. मसूरी, **3.** 1954 में, **4.** 1957 में, **5.** हैदराबाद

## 4.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, एम. पी., 2005, लोक प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद।
2. निग्रो, फेलिक्स ए., 1963, पब्लिक पर्सनल एडमिनिस्ट्रैशन, हाल्ट, न्यूयॉर्क।
3. सरन, पी., 2005, आधुनिक लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, नयी दिल्ली।

**4.** भट्टाचार्य, मोहित, 2012, लोक प्रशासन, वर्ल्ड प्रेस, कोलकाता।

## 4.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

अवस्थी एवं माहेश्वरी, 2002, लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

डे, बाटा के., 1978, भारत में नौकरशाही का विकास और लोक प्रबंध, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

## 4.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशिक्षण के अर्थ एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. प्रशिक्षण के उद्देश्य एवं प्रशिक्षण के प्रकार का वर्णन कीजिए।
3. प्रशिक्षण की पद्धतियाँ एवं तकनीक क्या हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. प्रशिक्षण की भारतीय प्रणाली का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारत मे प्रशिक्षण एजेंसियों और संस्थाओं की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

# इकाई- 5 वेतन प्रशासन

**इकाई की संरचना**

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 वेतन का शाब्दिक अर्थ
5.3 वेतन निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त
5.4 कार्य मूल्यांकन की पद्धतियां
5.5 वेतन निर्धारण सम्बन्धी पद्धतियां
5.6 प्राचीन भारत में वेतन प्रशासन का इतिहास
5.7 अंग्रेजी साम्राज्य में वेतन संरचना का इतिहास
5.8 स्वतंत्रता के चश्चात भारत में वेतन प्रशासन हेतु अपनाए गए सिद्धान्त
5.9 प्रोत्साहन एवं अन्य लाभ
5.10 सारांश
5.11 शब्दावली
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

## 5.0 प्रस्तावना

शासकीय संस्थाओं और कार्यालयों में कामकाज के वातारण में सुधार करना ताकि उनमें नई कार्य संस्कृति, नया प्रशासकीय व्यवहार और नया उत्साह परिलक्षित हो और साथ ही इनमें पारदर्शिता, जवाबदेही, सहभागिता और जनकल्याण की भावना सतत बनी रही। इसके लिए इन सरकारी संस्थाओं में कार्य करने वाले कार्मिकों को उनकी योग्यता, दायित्व, स्तर एवं परिवेश के अनुरूप वेतन एवं सुविधा लाभ दिया जाना चाहिए। वर्तमान आर्थिक जटिलताओं के युग में समय-समय पर वेतन/प्रतिकार योजना का निर्धारण न केवल तर्क संगत हो बल्कि न्यायोचित भी होना चाहिए।

कार्मिक प्रशासन में सदाचार और ईमानदारी सुनिश्चित करने के भी प्रतिकार योजना अथवा वेतन योजना की अहम् भूमिका होती है। वेतन वर्गीकरण एक योजना पर आधारित है कार्मिक के सेवा में आने से काफी पहले ही वेतन दरों को निश्चित कर लिया जाता है ताकि सेवा प्रदान करने वाले नवयुवक उस लोक सेवा के गौरव और वेतन दरों के आकर्षण के पश्चात् तैयार हो जाएं। अर्थात कोई नवयुवक किस सीमा तक किसी सेवा में कार्मिक बनने को तैयार होगा यह वास्तव में इस बात पर निर्भर करेगा कि संबंधित लोक सेवा में वेतन दरों एवं अन्य लाभों (सुविधाओं) का आर्थिक मूल्य क्या है। किसी भी कर्मचारी के रहन सहन का स्तर तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा काफी हद तक उसे प्राप्त होने वाले वेतन पर ही निर्भर होती है।

प्रत्याशित वेतन एवं अन्य लाभों के आधार पर ही कोई व्यक्ति अपनी जीविका का चयन करता है। मैसन हैवे का कहना है कि "हमारे समाज में निःसंदेह वेतन किसी न किसी रूप में प्रेरणा के प्रमुख आधारों में से एक है। "लोक सेवकों को पर्याप्त, आकर्षक तथा सम्मानजनक वेतन देकर ही सेवाओं में बेहतर कार्य कुशलता, पारदर्शिता एवं जवाबदेही स्थापित की जा सकती है। इस संबंध में लॉर्ड इस्लिंगटन का कथन है कि "सरकार अपने कर्मचारियों

को इतना और केवल इतना वेतन दे जितना कि उचित प्रकृति एवं चरित्र वाले व्यक्तियों की भर्ती के लिए आवश्यक हो और जिसके द्वारा वे संतुष्टि तथा प्रतिष्ठा की ऐसी मात्रा कायम रख सके जो उनको प्रलोभनों से बचाए एवं उन्हें सम्पूर्ण सेवाकाल तक कुशल बनाए रखे।"

## 5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वेतन निर्धारण के सामान्य सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
- वेतन निर्धारण तथा कार्य मूल्यांकन की पद्धतियों के प्रति समझ प्राप्त कर सकेंगे।
- भारत में वेतन प्रशासन का वर्णन कर पाएंगे।
- स्वतंत्र भारत में वेतन प्रशासन की जानकारी ग्रहण कर सकेंगे।
- कर्मचारियों को मिलने वाले प्रोत्साहन एवं अन्य लाभों से भी परिचित हो सकेंगें।

## 5.2 वेतन का शाब्दिक अर्थ

वेतन को अंग्रेजी में 'सेलरी' (Salary) कहा जाता है जो मूलरूप से लेटिन शब्द 'सेलेरियम (Salarium) से बना है। जिसका अर्थ होता है- नमक खरीदने के लिए धन देना अर्थात 'नमक-धन' इसलिए जूलियस सीजर के द्वारा शेमन सैनिकों को दिया जाने वाला वेतन उस वक्त 'सेलेरियम' कहलाता था।

भारत में इसे अनेक नामों से जाना जाता है जैसे पारिश्रमिक, मेहनताना, वेतन तनख्वाह आदि। 'तनख्वाह' शब्द मुस्लिम शासकों के समय से प्रचलन में आया जिसका शाब्दिक अर्थ 'तन' अर्थात शरीर तथा 'ख्वाह' अर्थात आवश्यकता या जरूरत या 'चाहने वाला' इस तरह शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दिया जाने वाला पारिश्रमिक 'तनख्वाह' कहलाती है। सामान्यतया वेतन के लिए 'पे' (Pay) शब्द को भी प्रयोग करते हैं जो उचित नहीं है, क्योंकि 'पे' (Pay) शब्द बहुप्रयोगिक है। वेतन श्रद्धांजलि देना नहीं है जो 'पे' (Pay) के भावार्थ में निहित है। वेतन एक निश्चित समायावधि में किए गए कार्य का पारिश्रमिक है जो नियमित रूप से मौद्रिक भुगतान में होता है।

## 5.3 वेतन निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्त

लोक सेवकों (सरकारी कर्मचारियों) को देय वेतनमान निर्धारण के सामान्य एवं विशेष सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं-

1. सामान्य सिद्धान्त- वेतन निर्धारणका सामान्य एवं सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि वेतन के माध्यम से कार्मिक अपनी सामान्य आवश्यकताएं पूरी कर सके। वेतन का निर्धारण इस प्रकार हो कि कर्मचारी की सामान्य जरूरतें भोजन ,आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य संचार और मनोरंजन आदि समुचित रूप से पूरी हो जाएं। वेतन का समुचित ना होना या कम होना कार्मिक को अनुचित एवं अनैतिक साधनों की ओर बढावा दे सकता है।
2. वेतन निर्धारण में दूसरा सिद्धान्त यह अपनाया जाना चाहिए कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' हो। भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में उक्त सिद्धान्त को संविधान के अनुच्छेद के अन्तर्गत अपनाया गया है जिसका सामान्य अर्थ है कि-एक ही पद पर कार्यरत या सेवारत दो अलग-अलग कार्मिकों को लिंग, वंश, धर्म, स्थान और क्षेत्र के आधार पर भिन्न-भिन्न वेतन देना न तो न्यायोचित होगा बल्कि समानता के अधिकार का उलंघन भी होगा। इससे कार्मिकों के मध्य असन्तोष एवं रोष व्याप्त होगा। हीनता या विभेदपूर्ण वातावरण संघर्ष को जन्म देगा और कार्य संस्कृति निम्न स्तर पर आ जाएगी।

इस लिए यह सुनिश्चित होना चाहिए कि समान कार्य के लिए समान वेतन हो उसमें किसी प्रकार की विसंगति न हो।

3. वेतन निर्धारण के क्रम में तीसरा सिद्धान्त यह है कि राष्ट्र की आर्थिक स्थिति अर्थात प्रति व्यक्ति औसत आय को ध्यान में रखकर उसके समानुपात में ही कार्मिकों को वेतन देना उचित होगा, इससे जहां महँगाई दर को नियंत्रित रखने में मदद मिलती है वहीं समाज में आर्थिक विषमता नजर नहीं आएगी।
4. चतुर्थ सिद्धान्त यह भी है कि राज्य या सरकार को अपने कार्मिकों के समक्ष आदर्श नियोक्ता का उदाहरण बनकर प्रस्तुत होना चाहिए इससे न केवल लोक सेवकों को बेहतर कार्य दशाएं और पर्याप्त सुविधाएं मिलेंगी बल्कि अन्य नियोक्ताओं को भी श्रेष्ठ बनने की प्रेरणा मिलेगी और आर्थिक न्याय की स्थापना का व्यवहारिक आधार तैयार होगा। दैनिक मजदूरी से लेकर लोक सेवकों का वेतन निर्धारण आर्थिक आधार पर ही न होकर सामाजिक परीक्षणों पर भी हो।
5. इस क्रम पर पाँचवां सिद्धान्त यह है कि बाजार भाव और मूल्य-दरों में परिवर्तन के समानुपात में वेतन निर्धारण का परिवर्तन होना चाहिए। सामान्य अर्थ में यदि महँगाई कम हो तो वेतन कम हो और यदि महँगाई अधिक हो तो वेतन संरचना में भी बढोतरी होनी चाहिए।
6. वेतन निर्धारण के एक अन्य सिद्धान्त में इस बात का खास ध्यान रखना होता है कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था, भौगोलिक परिस्थितियां मांगों के समयानुकूल हों। विशेष रूप से भौगोलिक विषम परिस्थितियों में जीवन की कठिनाईयों का संज्ञान लेते हुए भी वेतन निर्धारण करना चाहिए (उदाहरण के लिए भारत में मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों का तुलनात्मक जीवन)।
7. वेतन निर्धारण की संरचना बनाते समय इस सिद्धान्त का अनुपालन भी सुनिश्चित होना चाहिए कि विभिन्न स्तर के कार्मिक के वेतनमानों के मध्य बहुत अधिक भेदभाव अथवा अन्तर न हो जो तार्किक संवाद से परे हो। वरिष्ठतम और कनिष्ठतम कार्मिक के वेतनमानों की असीम दूरी कार्मिकों के मध्य विभाजन, द्वेष और निराशा को व्याप्त करेगी। इससे नकारात्मक कार्य संस्कृति को बढावा मिलता है जो जनकल्याण के लिए घातक है अर्थात वेतनमानों को न बहुत अधिक और न बहुत कम के सिद्धान्त पर निर्धारित करना चाहिए।
8. वेतन निर्धारण का एक सिद्धान्त यह मानता है कि वेतन संरचना नियोक्ता की क्षमताओं के आधार पर होना चाहिए। विभिन्न सरकारें इस नियम का अनुसरण करके ही अपने कार्मिकों/कर्मचारियों का वेतन निश्चित करती है। सरकारें अपनी राजस्व प्राप्तियों को केवल वेतन पर ही खर्च नहीं करती बल्कि उसे समग्र विकास को गति देनी होती है।
9. वेतन निर्धारण में एक महत्व पूर्ण सिद्धान्त यह है कि वेतन इतना आकर्षक तथा पर्याप्त अवश्य हो कि योग्य एवं क्षमता प्रधान व्यक्ति लोक सेवाओं को न केवल जीविका के तौर पर अपनाए बल्कि सतत रूप में उनके साथ बने भी रहें। अन्यथा इससे प्रतिभा पलायन होगा जैसा कि विदेशों या विदेशी कंपनियों के वेतनमानों का आकर्षण एवं पर्याप्तता योग्य और क्षमतावान युवकों में केन्द्र बिन्दु बना हुआ है।

सोफ्टवेयर कम्पनी 'विप्रो' के अध्यक्ष अजीम प्रेमजी का कथन है कि, ''चने या मूंगफली देकर आप केवल बन्दर ही पा सकते हैं'' अर्थात बिना आकर्षक एवं पर्याप्त वेतन के प्रतिभावान एवं निष्ठावान कार्मिक पाना कठिन है।

इस प्रकार वेतन निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तों का विश्लेषण करने के पश्चात कहा जा सकता है कि किसी एक सिद्धान्त के भरोसे बेहतरीन एवं उचित वेतन संरचना साकार नहीं हो सकती इसके लिए सभी सिद्धान्तों के मध्य समावेशी दृष्टिकोण आवश्यक है जिसमें देश की आर्थिक स्थिति, रहन-सहन की लागत तथा मूल्य स्तर, समान कार्य के लिए समान वेतन, प्रचलित बाजार दर, शासन की नीति आदर्श नियोक्त एवं आकर्षक एवं पर्याप्तता के

आधारों को सम्मिलित किया जा सके। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी एक स्वस्थ वेतन संरचना की विशेषताओं को रेखांकित किया गया है-

- संयुक्तिकरण(Composite)- लोक सेवकों का वेतन तथा स्वायत्तशासी, अर्द्ध स्वायत्तशासी एवं लोक उपक्रमों के कार्मिकों के वेतन में समानता होनी अति आवश्यक है इसके साथ-साथ तदर्थ तथा अस्थायी नियुक्ति प्राप्त कार्मिकों को भी स्थायी कार्मिकों के समान वेतन देना चाहिए।
- अर्थपूर्ण- वेतनमान इस प्रकार का हो कि वह किसी कार्मिक के पद या सेवा की आर्थिक स्थिति का सम्पूर्ण चित्रण प्रस्तुत कर सके। कार्मिक को मिलने वाले विभिन्न भत्ते एवं आर्थिक लाभ वेतन संरचना से स्पष्ट हो जाने चाहिए।
- पर्याप्तता- कार्मिकों को दिया जाने वाला वेतन उनकी बुनियादी जरूरतों एवं जीवन स्तर के अनुरूप होने के साथ-साथ कार्मिकों की शिक्षा कौशल उत्तरदायित्वों एवं गुणों के अनुरूप भी हो।

उपरोक्त वेतन निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्तों का पालन करना अपेक्षित है।

## 5.4 कार्य मूल्यांकन की पद्धतियां

कार्मिक प्रशासन के अंतर्गत वेतन निर्धारण का सबसे बड़ा आधार कार्य का मूल्यांकन है। पुरानी कहावत भी है "जैसा काम वैसा दाम" सामान्य तौर पर विभिन्न प्रकार के संगठनों द्वारा कार्य मूल्यांकन की दो महत्वपूर्ण पद्धतियों को अपनाया जाता है-

1. **अविश्लेषणात्मक पद्धति-** इस पद्धति के अंतर्गत कार्यों का मूल्यांकन करते हुए कार्यों को श्रेणीबद्ध पदों के क्रम में रखा जाता है। विशेष रुप से यह व्यवस्था छोटे-छोटे कार्मिक संगठनों में बड़ी कारगर साबित होती है।
2. **विश्लेषणात्मक पद्धति-** इस पद्धति के अंतर्गत कार्यों का मूल्यांकन संख्यात्मकता के आधार पर किया जाता है। इसमें किसी संतुलित बिंदु या घटक तुलना पद्धति द्वारा आंकलन किया जाता है। संतुलित बिंदु पद्धति में कार्य का मूल्यांकन एक मापक्रम (स्केल) के साथ साथ किया जाता है। जबकि घटक तुलना पद्धति में विभिन्न कार्यों को भिन्न घटक मानते हुए जैसे एक अध्यापक और एक लिपिक की क्षमताएं घटक तुलना के आधार पर भिन्न होगी अर्थात घटक मूल्यांकन में उनका मौद्रिक मूल्य भी भिन्न होगा।

उक्त के अतिरिक्त कार्मिकों के वेतन निर्धारण में कार्य मूल्यांकन के लिए पदोन्नति के विभिन्न सिद्धांतों जैसे वरिष्ठता का सिद्धांत, योग्यता का सिद्धांत, एवं वरिष्ठता तथा उपयुक्तता का सिद्धांत, को भी आधार बनाया जाता है। योग्यता के आधार पर पदोन्नति की प्रणाली को अपनाने में एक सक्षम कार्य मूल्यांकन व्यवस्था की जरूरत होती है। कार्य की मूल्यांकन पद्धति का वास्तविक लक्ष्य, कार्मिक संगठनों के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संबंधित कार्मिक की योग्यता का परीक्षण करना है। जो संगठन में कार्मिक की उपयोगिता का निर्धारण करता है जिससे उसे क्षमता अनुसार उच्च पदों पर स्थापित किया जा सके अर्थात कार्य मूल्यांकन द्वारा कार्मिक के गुण दोषों को रेखांकित किया जाता है और ऐसा करके प्राधिकारी वर्ग संबंधित कार्मिक की सेवा, सुधार, पद परिवर्तन करके उसकी क्षमता का बेहतर उपयोग कर सकता है।

भारत में कार्य मूल्यांकन पद्धति के अंतर्गत उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ कार्मिकों के संबंध में वार्षिक मूल्यांकन किया जाता है। इस संबंध में कार्मिक के वार्षिक कार्य मूल्यांकन के लिए एक प्रपत्र अर्थात गोपनीय आख्या के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसमें कार्मिक वर्ष भर के दौरान अपने द्वारा किए गए कार्यों के और उत्तरदायित्वों के निर्वहन का उल्लेख करता है। इस आधार पर उच्च अधिकारी अथवा समीक्षा अधिकारी, समीक्षा उपरांत अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कार्मिक के द्वारा संपन्न कार्यों के आधार पर संतोषजनक/उत्तम/अति

उत्तम/उत्कृष्ट की श्रेणी में विभक्त कर वार्षिक गोपनीय आख्या के आधार पर कार्मिक की क्षमताओं को निर्धारित करते हैं जो कार्मिक की पदोन्नति एवं वेतन निर्धारण का आधार बनता है। इसमें दंड एवं पुरस्कार दोनों ही सम्मिलित किए जा सकते हैं।

## 5.5 वेतन निर्धारण की पद्धतियां

वेतन निर्धारणके सिद्धान्तों के अतिरिक्त लोक सेवकों का वेतन निर्धारण करने की विभिन्न पद्धतियां भी मौजूद हैं। प्रत्येक देश अपने कार्मिकों का वेतन निर्धारण करने की अपनी विशिष्ट पद्धति को अपनाता है। यह पद्धति उस देश की वेतन संबंधी परम्पराओं, प्रशासकीय प्रतिमानों, संविधान की प्रकृति एंव उद्देश्यों के साथ नागरिकों के चारित्रिक गुणों द्वारा भी निश्चित होती है। कुछ महत्व पूर्ण पद्धतियां निम्न प्रकार हैं-

1. विधान मण्डल वेतन संबंधी व्यापक योजना की रूपरेखा तैयार करता है और विस्तृत ब्यौरों का निर्धारण कार्यपालिका पर छोड़ देता है। यह पद्धति अधिकांशतः संघीय शासनों में अपनाई जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत में यही स्थिति है।
2. वेतन विधान मण्डल द्वारा बनाए गये कानूनों के अनुपालन द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार की पद्धति उन देशों में अपनाई जाती है जहां कार्मिक व्यवस्था अपरिपक्व हो जैसे मध्य पूर्व के देश, विशेष रूप से यह स्थानीय निकायों और छोटे प्रान्तों में प्रचलित होती है।
3. वेतन निर्धारण की एक पद्धति के अंतर्गत वेतन सौदेबाजी या सामूहिक समझौते पर भी निश्चित होते हैं। यह स्थिति सभी निजी उद्यमों और अधिकांश सार्वजनिक उद्यमों में मौजूद हैं।
4. कई बार वेतन स्थानीय या क्षेत्रीय मजदूर संघों के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं यह वेतन एक निश्चित अवधि के भीतर प्रचलित दरों पर आधारित होता है। यह पद्धति सामान्य रूप से सहकारी संघों, निगमों और लोक उपक्रमों सम्बन्धी उद्यमों में अपनाई जाती है।
5. वेतन निर्धारण की अन्तिम पद्धति एक ''अनियोजित अस्त-व्यस्त व्यवस्था'' पर आधारित है। यह पद्धति अतीत की अवशिष्ट परम्पराओं और अपरिपक्व कार्मिक व्यवस्था के संमिश्रण की सूचक है। आधुनिक समय में भी इसका पूर्णतः लोप नहीं हुआ है। जब सरकार कोई नया कार्य आरम्भ करती है तो सामान्यतया प्रारम्भ में वेतन निर्धारण की सुनियोजित व्यवस्था नहीं अपनाई जाती है बल्कि सेवा के अनुरूप वेतन की उचित व्यवस्था समय के साथ विकसित होने की प्रतीक्षा में छोड़ दी जाती है।

कार्मिक प्रशासन के आपेक्षित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्रशिक्षण तथा काम का वातावरण बेहतर बनाने के क्रम में वेतन निश्चित करने की आवश्यकता निरंतर रहती है। इसके लिए हमें एक उपयुक्त तथा सापेक्षित वेतन संरचना का विकास करना होगा, जो निवेश और वेतन ढ़ांचे में सन्तुलन कर सके इसके लिए हमें कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत वेतन निर्धारण के अंतर्गत कार्य मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस होगी। कार्य मूल्यांकन की प्रक्रिया न्यूनतम कार्य सम्पादन के लिए आपेक्षित निवेश की जानकारी प्राप्त करना तथा संगठन के अंतर्गत विभिन्न कार्यों के सापेक्षिक महत्व को निश्चित करना ताकि विभिन्न महत्व के कार्यों के लिए विभिन्न वेतन निर्धारित किए जा सके।

## 5.6 प्राचीन भारत में वेतन प्रशासन का इतिहास

भारत प्राचीन सभ्यताओं का देश है किन्तु यह भी सत्य है कि सभ्यता के विकास क्रम के आरंभिक काल में श्रमिकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक वर्तमान की भाँति नहीं था। मालिक अपने नौकरों से बलात श्रम करवाते थे और केवल रहने खाने एवं पहनने अर्थात रोटी कपडा और मकान से जुड़ी उनकी आवश्यकता ही पूर्ण करते थे। समय के साथ-साथ सामन्तशाही और बड़े-बड़े राजतंत्रों का विकास हुआ, विशाल तन्त्रों की स्थापना होने लगी

और श्रमिकों को निष्ठावान बनाए रखने के लिए वेतन भोगियों के रूप में रखा जाने लगा जो बाद में वेतन भोगी कर्मचारियों के रूप में पहचाने जाने लगे। भारत में मौर्यों के साम्राज्य में प्रशासनिक तंत्र उत्कृष्टता लिए हुए था कौटिल्य के अर्थशास्त्र से इसका आभास होता है। बाद में गुप्त वंश, वर्धन वंश भी कर्मचारियों की वेतनभोगी श्रेणियों की ओर स्पष्ट संकेत करता है।

मुस्लिम शासकों के द्वारा भी कार्मिकों को वेतन दिया जाता था यद्यपि उसकी मात्रा कम होती थी। वेतन की अल्पता के कारण ही मध्यकालीन मुस्लिम शासकों के समय कर्मचारी (कार्मिक) आम जनता से 'नजराना' या 'दस्तूर' के रूप में रिश्वत या घूस लेते थे। मुगलकालीन मनसबदारी प्रथा वेतनभोगी कार्मिकों का बेहतरीन उदाहरण है जिसका साक्ष्य 'आईने अकबरी' व अन्य दस्तावेजों में मौजूद है।

## 5.7 अंग्रेजी साम्राज्य में वेतन संरचना का इतिहास

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने शुरुआती दौर में मुस्लिम शासकों की भाँति कम वेतन भोगी कर्मचारियों की नियुक्ति की, किन्तु उन्हें जनता से उपहार व रिश्वत प्राप्त करने की अनुमति बनाए रखी। लार्ड क्लाइव के दूसरे कार्यकाल के दौरान कार्मिका का वेतन उनकी जरूरतों के हिसाब से बढाया गया और उपहारों को लेने की मनाही कर दी गयी। एक तथ्य स्पष्ट तौर पर देखा जाता रहा कि भारतीय शासन व्यवस्था में वेतन संरचना के क्रम में भारी अन्तर विद्यमान रहा। उच्च स्तर के कर्मचारी और निम्न स्तरीय कर्मचारी के वेतन में भारी विसंगतियां थी। प्रथम विश्व युद्ध के कारण कीमतों में वृद्धि और महँगाई दर का उच्च स्तर था। सरकारी कार्मिकों के वेतन सम्बन्धी ह्रास को रोकने के लिए जनवरी 1919 में भारतीय सिविल सेवा के कर्मचारियों के वेतन एवं पेंशन सम्बन्धी सामान्य सिफारिशों के आश्वासन का परिपत्र किया। इसका मुख्य उद्देश्य वेतन के उस स्तर को प्राप्त करना था जिस स्तर पर वह 20 वर्ष पूर्व उचित एवं आकर्षक हुआ करता था। ब्रिटिश शासन में यह वेतन प्रशासन सम्बन्धी बडा क्रांतिकारी प्रयास रहा जिसके दूरगामी परिणाम आने वाले थे। इससे नई परिस्थितियों के चलते कीमतों में वृद्धि हुई और वेतन गिरावट (ह्रास) के कारण कार्मिकों की कमजोर वित्तीय स्थिति का संज्ञान लिया गया, विशेष रूप से कार्मिकों के मध्य परप रहे असन्तोष के समाधान का मार्ग प्रशस्त करना था। बिहार एवं उडीसा की प्रान्तीय सरकारों ने कार्मिकों के वेतन संरचना में कम से कम 30 प्रतिशत की वृद्धि का प्रस्ताव रखा। संयुक्त प्रांत की सरकार ने तो अपने कार्मिकों की ऋणगस्तता को वेतन में गिरावट के आधार पर स्वीकार भी किया था और वेतन में 33 प्रतिशत से 50 प्रतिशत को प्रस्तावित किया। इसी प्रकार के प्रस्ताव एवं मांगें अन्य स्थानीय सरकारों से प्राप्त हो रहे थे। यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध के पहले से ही सेवाओं का आकर्षण समाप्त हो गया था चूँकि कोलकाता निजी क्षेत्र के प्रारम्भिक वेतन एवं सेवा शर्तें सरकारी कार्मिकों से बेहतर थी। भारत में राजनीतिकपरिवर्तनों एवं युद्धोपरान्त गृह सिविल सेवाओं में प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से उच्च स्थानों पर भारतीय युवकों को भी लेना प्रारम्भ किया। इससे रोजगार के बेहतर अवसरों में इजाफा हुआ। सेवा में आने के पश्चात् यद्यपि उन्हें कम महत्व के पदों पर लम्बे समय तक रहना पडता था। जैसे कलेक्टर या जिला जज के पदों पर पदोन्नती सम्बन्धी प्रावधान में समय अन्तराल होता था। नियुक्त अधिकारियों के लिए अलग-अलग वेतनमान निश्चित किए गये। यह भी निश्चित किया कि किसी भी अधिकारी को तब तक उच्च वेतन मान नहीं दिया जाएगा जब तक दो स्थितियां उपलब्ध न हो जाएं- अधिकारी उच्चतर कार्य करने के योग्य घोषित न हो जाए और अधिकारी की नियुक्ति के लिए रिक्त स्थान उपलब्ध न हो जाए।

इस प्रकार पदोन्नति में विलम्ब का यह मुख्य कारण बना और अधिकारियों को लम्बे समय तक कोई वेतन वृद्धि प्राप्त नहीं होती थी। इससे यह तथ्य सामने आया कि विभिन्न विभागों मध्य पदोन्नति असामान्य एवं असंगत होती थी। किसी विभाग में उक्त दोनों स्थितियों के प्राप्त होने पर कार्मिक शीघ्र ही उच्च वेतन मान का पारिश्रमिक प्राप्त कर लेता और किसी विभाग में यह आपेक्षित वेतन पारिश्रमिक से काफी निम्न स्तर पर बना रहता था। इस कारण

विभिन्न विभागों में एक ही समय पर भर्ती होने वाले कार्मिकों के सेवा काल में होने वाली पदोन्नति पूर्ण रूप से न्यायिक असंगत थी और सामान्य अपेक्षाओं के विरुद्ध थी।

अतएव उक्त वेतन विसंगतियों की असामान्य परिस्थितियों को न्याय पूर्ण से सामान्य अपेक्षाओं में एकरूपता हेतु अंग्रेजी शासन द्वारा 23 जनवरी 1919 को एक परिपत्र जारी किया गया। इस परिपत्र में पहली बार एक ऐसे समयमान प्रोन्नति वेतन वृद्धि वाली व्यवस्था करने का सुझाव दिया गया जिसके तहत निम्न श्रेणी के कार्मिक अधिकतम वेतन वृद्धि के अधीन हो और उच्च श्रेणी कार्मिक न्यूनतम वेतन वृद्धि के अधीन निर्धारित हो। यद्यपि न्यूनतम और अधिकतम वेतन निर्धारण सम्बन्धी विचारों में भिन्नता के कारण वेतन निर्धारण में भी भिन्नता पायी गयी। (मातहत) निम्न श्रेणी के कार्मिकों का न्यूनतम वेतन निर्धारण रु 450 से रु 650 के मध्य रखा गया और उच्च श्रेणी कार्मिकों के लिए यह रु 950-1100 के बीच रखा गया था। इसी प्रकार वरिष्ठतम पद के लिए सुझाई गयी वेतन की अधिकतम सीमा 2400-3000 के बीच थी ओर निम्न स्तरीय (मातहत) पदों के लिए अधिकतम वेतन सीमा 12 वें वर्ष पर दक्षता अवरोध करते हुए रु 1500 से रु 1600 के मध्य समाप्त कर दी गयी थी अर्थात वेतन विसंगतियां स्पष्ट नजर आने लगी। इनके निराकरण के लिए और वेतन निर्धारण के प्रश्न पर सभी पहलुओं के अध्ययन के लिए सर मेल्कॉम हैली को नियुक्त किया गया और 5 जुलाई 1919 को अपनी सिफारिश सरकार को सौंप दी। कुछ संशोधनों के साथ भारत सरकार एवं भारत सचिव द्वारा इन सिफारिशों को स्वीकार भी किया।

इसमें वेतन निर्धारण के ढ़ाँचे को काफी हद तक न्याय संगत बनाने का प्रयास किया गया और समुद्र पार भत्ते को पूरे वेतन ढ़ाँचे का अभिन्न अंग बनाना सम्मिलित था।

यद्यपि भारत सरकार द्वारा वेतनमानों के पुनरीक्षण सम्बन्धी अन्तिम स्वरूप को 13 फरवरी 1920 के प्रस्ताव में सम्मिलित करते हुए स्वीकार किया गया। यह पुनरीक्षित वेतनमान व्यवस्था 01 दिसंबर 1919 से प्रभावी हुई जिसका न केवल ऐतिहासिक महत्व था बल्कि वेतन निर्धारण की दिशा में मील का पत्थर और भविष्य की प्रेरणा माना गया।

## 5.8 स्वतंत्रता के पश्चात भारत में वेतन प्रशासन हेतु अपनाए गए सिद्धान्त

आकर्षक सेवा शर्तें एवं पारिश्रमिक ढ़ाँचा श्रेष्ठ कर्मचारी वर्ग का सूचक है। यह उच्च स्तरीय कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए प्रेरणा स्रोत है। एक कार्मिक इस सेवा को आजीविका के साथ ही जीवनकृति के रूप में अपनाता है ताकि वह स्वयं और अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा कर सके बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सके। पर एवं वेतन के स्तर के साथ सामान्यतया सम्मान का स्तर जुडा है अर्थात 'वेतन' एक गतिमान तत्व है जो व्यक्ति की कार्यकुशलता एवं समर्पण के सूचक के साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर मनो-सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्धारक तत्व भी हैं। इसलिए वेतन निर्धारण मात्र एक प्रक्रिया नहीं बल्कि उसके प्रशासन की आवश्यकता पर बल दिया गया। उसके कुछ आधारभूत सिद्धान्तों जैसे- कार्य की प्रकृति के आधार पर, योग्यता के अनुरूप, राष्ट्रीय आय, देश का जीवन स्तर, सरकार एक आदर्श नियोक्ता के रूप में, निजी क्षेत्र की समकक्षता आदि को सम्मिलित करते हुए वेतन प्रशासन के सरल एवं सामान्य नियम अथवा सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं-

1. कार्य मूल्यांकन एवं प्रतिकार योजनाएं एक दूसरे से भिन्न एवं स्पष्ट होनी चाहिए और प्रभावित कार्मिकों को स्वीकार भी होनी चाहिए।
2. कार्य मूल्यांकन एवं प्रतिकार योजनाएं उदार हों जिसमें स्थानीयता की श्रम परिस्थितियों की विशेषताएं समाहित हो सकें।
3. कार्य मूल्यांकन व्यवहारिक रूप में दोषमुक्त एवं तार्किक रूप में आसानी से समझने वाला हो।
4. वेतन प्रशासन के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को कार्मिक संचालक के समकक्ष स्तर पर सीधे रिपोर्ट करना चाहिए।

5. वेतन प्रशासन योजना सदैव प्रबन्धन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के अनुकूल हो।
6. वेतन और कार्यों के समीक्षकों का चयन अत्यधिक सतर्कता के साथ निष्पक्षता और योग्यता के आधार पर होना चाहिए।
7. वेतन प्रशासन योजना, कार्मिक संगठन की विशिष्ट प्रकृति और उसके लक्ष्यों के अनुकूल होनी चाहिए।
8. वेतन योजना के प्रशासन, स्थायी मजदूरी सर्वेक्षण के संचालन में एवं नये पदों के सर्जन सम्बन्धी मूल्यांकन में कार्मिकों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए।
9. वेतन प्रशासन योजना से नियोजक एवं निगमित उद्यम में अंशधारियों के उचित एवं न्यायिक हित भी सन्तुष्ट होने चाहिए।
10. वेतन प्रशासन योजना अन्य प्रशासकीय प्रक्रियाओं में बाधक होने की अपेक्षा उन्हें सरल और गतिशील बनाने में मदद करने वाली हो।
11. संगठन में वेतन प्रशासन को उत्तरदायी एवं महत्व पूर्ण स्थान देना चाहिए ताकि वह प्रशासन के अन्य पक्षों के साथ पारस्परिक संबंध बनाने तथा सहयोजन करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिए।

उक्त सिद्धान्तों एवं नियमों के प्रकाश में भारत में मौजूद वेतन ढ़ाँचे का विकास ब्रिटिश शासन में देखा जा सकता है। इसलिंगटन आयोग द्वारा वर्ष 1912 से 1915 के मध्य अपने सुझावों में कहा था कि वेतन का निर्धारण औचित्य एवं पर्याप्तता के सिद्धान्त पर होना चाहिए अर्थात वेतन इतना अवश्य हो कि कार्मिक आराम और सम्मान का जीवन यापन कर सके। सन 1920 के पश्चात विश्व युद्ध एवं आर्थिक मंदी के प्रभाव के पश्चात संशोधित वेतनमान- कनिष्ठ वेतनक्रम 450-50-802-100-1350 और वरिष्ठ वेतन क्रम न्यूनतम 1000 रु0 एवं अधिकतम 2250 रु0 निर्धारित किया गया था।

स्वतंत्रता से पूर्व अखिल भारतीय कांग्रेस के 1932 के करांची अधिवेशन पण्डित नेहरू प्रस्ताव स्वीकार किया गया था कि न्यूनतम वेतन रु 500 प्रतिमाह होना चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रथम वेतन आयोग ने उच्चतम वेतन रु3000 रखा गया था। इसी क्रम में समय-समय पर केन्द्रीय कर्मचारियों के वेतनमान प्रशासन के लिए वेतन ढ़ाँचा और सेवा शर्तों के लिए वेतन आयोग गठित होते रहे हैं। इन वेतन आयोगों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट ही केन्द्र तथा राज्यों के कार्मिकों के वेतन निर्धारण में मार्गदर्शक बनती रही हैं। वेतन प्रशासन व्यवस्था का विकास, क्रियान्वयन और संशोधन के आधारभूत सिद्धान्तों अथवा विचारों द्वारा निर्देशित वेतन निर्धारण के लिए गठित वेतन आयोग निम्नांकित हैं-

1. **प्रथम वेतन आयोग एवं सिफारिशें-** स्वतंत्रता के पश्चात वेतन निर्धारण एवं पदोन्नति की समस्या को विशेष केंद्रित किया गया। सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायधीश श्री श्रीनिवास वरदाचारियर की अध्यक्षता में सन 1947 में प्रथम आयोग का गठन किया गया। आयोग द्वारा सुझाया गया कि लोक सेवा में चारों श्रेणीयों के सभी पदों पर नियुक्ति के प्रत्यक्ष (सीधी) भर्ती और पदोन्नति के सिद्धान्त में विवेकपूर्ण सामंजस्य होना चाहिए।

   यद्यपि वर्गीकरण की भारतीय पद्धति सही मायने में वेतन दरों अथवा काम की प्रकृति पर आधारित नहीं थी तथापि उसमें ये दोनों तत्व प्रतिबंधित थे। इस वेतन आयोग ने 1949 में संप्रेषित अपनी रिपोर्ट में एक टिप्पणी की थी कि यह वर्गीकरण अनुशासनात्मक कार्यों तथा अपील के अधिकार से संबंधित सुविधाओं से जुडा हुआ है। वेतन आयोग न 'अधीनस्थ' अथवा 'निम्न श्रेणी' के रूप में सेवाओं के वर्णन पर इस आधार पर आपत्ति की कि यह शब्दावली अपमानजनक थी और इसके स्थान पर वर्ग-3 तथा वर्ग-4 सेवाओं की शब्दावली प्रतिस्थापित करने की अनुशंसा की। आयोग ने केंद्रीय वैज्ञानिक सेवा गठित करने की दलील नामंजूर कर दी तथा इसके स्थान पर वैज्ञानिक और तकनीकी पदों को वर्ग I, II, III, IV के विद्यमान वर्गीकरण में सम्मिलित करने का सुझाव दिया। जुलाई 1974 से सरकारी कर्मचारियों

का वर्गीकरण I, II, III, IV से समूह ए, बी, सी, डी में परिवर्तित कर दिया गया। कर्मचारी वर्ग इस परिवर्तन को सेवाओं के ढ़ाँचे में लोकतंत्र के विस्तार के रूप में मानता है।

2. **द्वितीय वेतन आयोग की सिफारिशें-** द्वितीय वेतन आयोग (1957-1959) जिसकी अध्यक्षता श्री जगन्नाथदास द्वारा की गयी। अपनी सिफारिशों में आयोग द्वारा अखिल भारतीय और केन्द्रीय प्रथम वर्ग के विस्तार को ध्यान में रखा गया। साथ ही द्वितीय वर्ग एवं तृतीय वर्ग की सेवाओं के कर्मचारियों को उच्च सेवाओं के लिए एक सीमित प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से चुने जाने की सुविधा होनी चाहिए।
द्वितीय वेतन आयोग द्वारा वर्ष 1959 में संप्रेषित रिपोर्ट में की गयी अनुशंसाओं के अनुसार वर्ग-2 के लिए एकाकी मानक वेतनमान स्वीकार किया गया। वर्ग-3 में वेतनमान/श्रेणियां और भी अधिक संख्या में थी। लिपिकीय कर्मचारी वर्ग के लिए चार सुपरवाइजरी ग्रेड तथा तीन अन्य यथा उच्च श्रेणी लिपिक, निम्न श्रेणी लिपिक तथा आशुलिपिक के ग्रेड थे। केंद्रीय सचिवालय में संपूर्ण पदानुक्रम को सचिव, अपर सचिव, सह सचिव, उप सचिव, अवर सचिव, खंड अधिकारी, सहायक उच्च श्रेणी लिपिक तथा निम्न श्रेणी लिपिक की नौ श्रेणियों (ग्रेड्स) में विभाजित किया गया।
वी.ए. पइपनंदीकर के अनुसार वर्तमान चार स्तरीय वर्गीकरण किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया था। इसमें अवधारणात्मक साँचे की अनिवार्यतः कमी थी और आधारभूत वर्ग पूर्णतः ऐतिहासिक घटनाओं के प्रतिफल थे। विभिन्न सेवाओं पर संख्यात्मक वर्गीकरण मात्र सुविधा की दृष्टि से आरोपित किया गया था। दूसरे शब्दों में, वर्तमान वर्गीकरण व्यवस्था कभी भी सेवाओं के किसी व्यवस्थित समूहीकरण के लिए अथवा कार्मिक प्रबन्ध के साधन के रूप में न तो बनायी गयी थी और न ही ये उसके लक्ष्य थे। वर्गीकरण के स्पष्ट सिद्धान्त के अभाव में निश्चित रूप से कार्मिक प्रशासन का एक प्रभावी साधन जाता रहा। द्वितीय वेतन आयोग ने 1959 में यह आकलन किया कि उस समय 517 विभिन्न वेतनमान थे और इनमें से केवल 177 वेतनमानों में प्रत्येक में 100 से अधिक कर्मचारी थे। वेतन और सेवा के अन्य लाभों के ऐसे विभिन्न प्रावधानों के प्रशासन के लिए उन लाभों की संगणना करने और इसे चैक करने के लिए भारत सरकार को काफी स्टाफ रखना पडता था। द्वितीय वेतन आयोग की अनुशंसा के फलस्वरूप वेतनमानों की संख्या घटकर लगभग 200 रह गयी।

3. **तृतीय वेतन आयोग एवं उसकी सिफारिशें-** सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायधीश श्री रघुबर दयाल की अध्यक्षता में 23 अप्रैल 1970 को भारत सरकार द्वारा गठित तृतीय वेतन आयोग ने अपनी रिपोर्ट दो खंडों में 1973 में प्रेषित की थी। इस आयोग को उन सिद्धान्तों पर विचार करना था जिनके तहत केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की सेवा शर्तें और वेतनमान का ढ़ाँचा शासित हो। साथ ही इसे वे उपाय भी बताने थे जो सेवा शर्तों और वर्तमान के ढाँचे में परिवर्तन लाने के लिए किए जाने चाहिए। इस वेतन आयोग को सशस्त्र बलों तथा अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों के लिए मृत्यु अथवा सेवा निवृत्ति पर मिलने वाले लाभों के ढाँचे पर भी विचार करना था। आयोग का मुख्य प्रयास 500 से अधिक वेतन मानों के तर्कसंगत कर 80 तक घटाना और इस प्रक्रिया में कर्मचारियों के विभिन्न वर्गों को अच्छे वेतनमान देना था। आयोग ने वेतनमानों के अंतर को कम करने के लिए न्यूनतम वेतन 185रु प्रतिमाह तक बढाया, जिसके फलस्वरूप 1 जनवरी 1970 को अधिकतम और न्यूनतम वेतन के अंतर का अनुपात 15:4 से घटकर 11:8 हो गया। इस आयोग ने वर्तमान अधिकतम वेतन में किसी परिवर्तन की अनुशंसा नहीं की। आयोग ने काम करने के घंटों, छुट्टियों, ओवर टाइम भत्ते तथा अन्य कल्याणकारी उपायों के बारे में भी अनुशंसाएँ की। साथ ही कर्मचारियों के विभिन्न व्यवसायिक समूहों के विभिन्न स्तरों की कार्यसूची की कल्पित समानता के आधार पर पदों के वर्गीकरण की अनुशंसा की। श्रेणियों की संख्या कम करने के संबंध में आयोग का मत था कि इससे कुछ क्षेत्रों में पदोन्नति के अवसर कम होंगे। आयोग ने अनुभव किया कि

कर्मचारियों द्वारा अपने वेतन में स्थायी कमी स्वीकार करना संभावित नहीं है चाहे वह कमी कितनी भी थोडी क्यों न हो। वेतन ढाँचे के किसी भी सरलीकरण से वर्तमान वेतनमानों में किसी सामान्य कमी के बजाय समूह के उच्चतर स्तर के वर्तमान वेतनमानों के आधिक्य की ही उपेक्षा की जा सकती है। अतएव आयोग ने एकीकृत श्रेणीबद्ध ढाँचे की योजना अपनाना उपयुक्त नहीं समझा। तथापि आयोग ने निरंतरता के आधार पर कार्य मूल्यांकन अपनाए जाने का सुझाव दिया।

तृतीय वेतन आयोग ने वेतन ढाँचा निर्धारित करने में समग्रता, व्यापकता और पर्याप्तता का सार ध्यान में रखा। आयोग ने विचार व्यक्त किया कि सरकारी वेतन तथा संगठित व्यापार और उद्योग के वेतन की विवेचनात्मक तुलना वर्तमान परिस्थितियों की समग्रता और कार्य की विषय सूची पर विचार किए बिना उचित नहीं होगी। सरकार को नियोजक के रूप में तथा देश के विकास और प्रशासन के लिए उत्तरदायी सर्वोच्च प्राधिकारी के रूप में अपनी दोहरी भूमिका ध्यान में रखनी होती है।

आयोग ने सिफारिश की कि सार्वजनिक उद्यमों के लिए एक समान वेतन नीति विकसित की जानी चाहिए और किसी सार्वजनिक उद्योग के वेतनमान दूसरे सार्वजनिक उद्योगों तथा शासन के अधीन वेतनमानों से बहुत ज्यादा भिन्न न हों। यह सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावी सहयोजक मशीनरी स्थापित की जानी चाहिए। आयोग ने शासन के अधीन विभिन्न पदों के वेतनमान उनके कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों, काम की कठिनाईयों और जटिलताओं तथा अर्हताओं के संदर्भ में निर्धारित किये। आयोग की अनुशंसा थी कि विभिन्न वेतनमानों में दक्षतावरोध अधिक प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए और दक्षतावरोध पार करना दिन-प्रतिदिन का मामला नहीं होना चाहिए।

4. **चतुर्थ वेतन आयोग की सिफारिशें-** न्यायमूर्ति श्री पी.एन. सिंहल की अध्यक्षत में जुलाई 1983 में भारत सरकार द्वारा गठित चतुर्थ वेतन आयोग 1 सितम्बर 1983 को अस्तित्व में आया। इस आयोग के विचारार्थ विषयों में वेतन तथा सेवा शर्तों के तत्कालीन विद्यमान ढाँचे का परीक्षण और केन्द्रीय सरकार के सभी कर्मचारियों, अखिल भारतीय सेवा के कार्मिकों, संघशासित क्षेत्रों के कर्मचारियों और सशस्त्र बल के कार्मिकों को प्राप्त हो रहे अन्य लाभों का परीक्षण था। इस आयोग की सिफारिशों से सशस्त्र बल के कर्मचारियों सहित लगभग 52 लाख सरकारी कर्मचारी प्रभावित थे। आयोग ने असैनिक कर्मचारियों के वेतनमानों की संख्या 153 से घटाकर 36 कर दी। आयोग द्वारा अनुशंसित न्यूनतम तथा अधिकतम वेतनमान क्रमशः 750-940 तथा रु 9000 थे। अन्य बातों के साथ इन सिफारिशों में बढे हुए भत्ते, यूनियन टेरीटरीज में केंद्रीय पुलिस के पदों का उन्नयन, सशस्त्र बलों के कर्मचारियों को निःशुल्क भोजन, सेवा निवृत्ति पर 240 दिन तक की अवकाश अवधि का नकदीकरण, सभी कर्मचारियों के लिए शैक्षणिक सहायता, बच्चों के शिक्षण शुल्क की बढ़ी हुई वापसी तथा चिकित्सा भत्ता, विधवाओं, तलाकशुदा और कानूनी तौर पर अलग हुई महिलाओं के लिए 35 वर्ष तक आयु सीमा शिथिल करना, कुशल प्रशासन के लिए आधुनिक तकनीकों को लागू करना, सभी स्तरों पर कर्मचारियों को नियमित प्रशिक्षण, सशस्त्र बलों के लिए तर्कसंगत और समुन्नत भत्ते तथा सुविधाएं, अर्जित और संगृहीत अर्द्ध वेतन अवकाश को विशेषाधिकार अवकाश मानना, सांप्रदायिक छुट्टियों की समाप्ति तथा आकस्मिक अवकाश में वृद्धि सम्मिलित थी।

5. **पंचम वेतन आयोग की सिफारिशें-** श्री रत्नाबेल पाण्डियन की अध्यक्षता में वर्ष 1994 में पाँचवें वेतन आयोग का गठन किया गया। 1997 में आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। इसकी अनुशंसाओं के आधार कार्मिकों के वेतन प्रशासन में 35 ग्रेडों को स्वीकार करते हुए न्यूनतम वेतन 2750-70-3800-75-4000 स्वीकार किया और अधिकतम वेतन कैबिनेट सचिव रु 30,000 नियत कर दिया गया। जबकि वर्ग का वेतनमान 8000-275-13500 निर्धारण किया गया। भारत सरकार द्वारा अधिकांश बिन्दुओं पर

सहमति प्रदान करने के पश्चात सेवानिवृत्ति के सम्बन्ध 58 वर्ष को बढाकर 60 वर्ष कर दिया गया साथ ही सप्ताह को 6 कार्यदिवस के रूप में करना और ओवर टाइम समाप्त करने सिफारिश को भी स्वीकार नहीं किया गया। आकस्मिक अवकाशों को 12 से घटाकर 8 कर दी गयी। कार्यकुशलता बढाने एवं अवकाशों की संस्कृति से आगे बढते हुए यह स्वीकार किया गया कि केवल राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री की मृत्यु के अतिरिक्त अन्य किसी राजनेता की मृत्यु पर अवकाश घोषित नहीं होगा। पूर्व राष्ट्रपति एवं पूर्व प्रधानमंत्री भी इसी श्रेणी में आयेंगें। पाँचवें वेतन आयोग द्वारा ही भारतीय वन सेवा को भारतीय पुलिस सेवा के समकक्ष बनाया गया। सवैच्छिक सेवा निवृत्ति को आकर्षक बनाया गया तो शिथिल एवं अकुशल कार्मिकों के लिए अनिवार्य सेवानिवृत्ति के प्रावधान भी लाए गये। अवकाश यात्रा भत्ता (L.T.C.) के प्रावधानों पर भी रोक लगा दी गयी इस प्रकार पाँचवे वेतन आयोग द्वारा वेतन प्रशासन में बडे बदलाओं और कार्मिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने वाला एवं वेतन समानता वाला था। सेना, शिक्षा, विभागों के कार्मिकों के वेतन एवं पेंशन भत्ते बढाए गये। साथ कई विभागों के विलयीकरण पर भी विचार हुआ।

6. **षष्ठम वेतन आयोग एवं सिफारिशें-** न्यायमूर्ति बी0एन0 श्री कृष्णा की अध्यक्षता में वर्ष 2006 में छठे वेतन आयोग की स्थापना की गयी जिसने अपनी रिपोर्ट वर्ष 2008 में भारत सरकार को सौंप दी अपनी सिफारिशों के माध्यम से सुझाया कि वेतन प्रतिमाह ही किन्तु पूर्णतः रुपये में देय होगा। अपने पूर्ववर्ती वेतनमानों की संख्या को घटाते हुए पे-बैंड एवं ग्रेड-पे का प्रावधान किया। पहले की 35 ग्रेडों की संख्या कम करके 20 कर दी गयी। न्यूनतम पे बैंड 4860 तथा ग्रेड पे 1800 रुपये के साथ अधिकतम वेतन 90,000रु निश्चित किया गया। इसमें सैन्य प्रमुख एवं कैबिनेट सचिव बराबर वेतन पर लाए गये। सभी मामलों में वार्षिक वेतन वृद्धि मूल वेतन का 3 प्रतिशत देय होगा और 1 जुलाई और 1 जनवरी निर्धारित की गयी। प्रसूति अवकाश को 6 माह कर दिया गया और 2 वर्ष का बच्चों के पालन पोषण अवकाश प्रावधान किया गया। केन्द्र सरकार द्वारा छठे वेतन आयोग की सिफारिशों को 14 अगस्त 2008 को स्वीकृत करते हुए 1 जनवरी 2006 से प्रदान किया गया तथा भत्ते आदि को पुनरीक्षित कर 1 सितम्बर 2008 से दिया गया। 3 प्रतिशत वार्षिक वेतन वृद्धि के साथ ही सुनिश्चित किया कि कार्मिकों को कैरियर एडवांसमेन्ट योजना के अंतर्गत 10, 20, 30, वर्ष की सेवा पर पदोन्नति का प्रावधान किया गया। प्रत्येक कार्मिक के वेतन में औसतन 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ग्रेच्युटी की अधिकतम 10 लाख रुपये की गयी। छठा वेतन आयोग निष्पादन आधारित वेतन प्रशासन का पक्षधर रहा है। सरकारी कार्यालय में कार्यसंस्कृति तथा गुणवत्ता में सुधार के प्रयासों के लिए जाना जाता है। कार्मिकों की निगरानी प्रणाली का सुदृढ़ करना इसी विशेष अनुशंसा में शामिल है।

   अनुबन्धित सेवाओं का विस्तार भी आवश्यक है और इस प्रकार की सेवाओं को बढाया जाए। सरकारी क्षेत्रों में कार्मिकों की संख्या को कम कर मितव्ययता को अपनाने पर बल था। सैनिक सेवाओं को विशेष सेवा मानते हुए उनका वेतन मौजूदा दो गुना कर दिया गया। कार्मिकों के कार्यस्थलों पर कागजी कार्यवाही को कम करते हुए तकनीकी विकास को बढावा दिया जाए।

7. **सप्तम वेतन आयोग एवं उसकी सिफारिशें-** भारत सरकार द्वारा न्यायमूर्ति अशोक कुमार माथुर की अध्यक्षता में सातवें वेतन आयोग का गठन 04 फरवरी 2014 को किया गया और 29 जून 2016 को भारत सरकार द्वारा आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया। 7 वें वेतन आयोग की मुख्य सिफारिशें कार्मिकों के लिए न्यूनतम वेतन 18000 प्रतिमाह रखा गया था जिसे बाद में भारत सरकार द्वारा 21000 प्रतिमाह कर दिया गया। जबकि कैबिनेट सचिव के वेतन को 250000 प्रतिमाह कर दिया गया है। यह कार्मिकों के मामले में देश का अधिकतम वेतन है। सामान्य रूप से सभी कार्मिकों के लिए वेतन आयोग द्वारा 3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि को स्वीकार किया गया है। छठें वेतन आयोग के वेतन बैंड और

ग्रेड-पे की व्यवस्था को समाप्त करते हुए उसके स्थान पर ज्यादा पारदर्शिता और सहजता के लिए पे-मेट्रिक्स व्यवस्था को अपनाया गया है। इससे कार्मिकों के मूल वेतन में 2.57 प्रतिशत के गुणांक से बढोतरी होगी।

जहां तक कार्मिकों को मिलने वाले भत्तों और सुविधाओं का प्रश्न है आयोग द्वारा अपनी सिफारिशों में 52 भत्तों और सुविधाओं को समायोजित करते हुए 36 भत्तों और सुविधाओं में विभाजित कर दिया गया है जो ज्यादा स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

आवासीय भत्ता दरों में संशोधन करते हुए उसे मंहगाई भत्ते के साथ सहसंबंध स्थापित करते हुए 50 प्रतिशत मंहगाई भत्ते पर शहरों की तीन श्रेणियां X, YZ, के लिए मकान भत्ता क्रमशः 27 प्रतिशत, 18 प्रतिशत एवं 9 प्रतिशत होगा। मंहगाई भत्ता 100 प्रतिशत होने पर मकान भत्ते को 30 प्रतिशत, 20 प्रतिशत और 10 प्रतिशत कर दिया जाएगा।

केन्द्रीय कार्मिकों एवं पेंशन भोगियों के लिए सामूहिक स्वास्थ्य बीमा योजना की सिफारिश की गयी है ताकि समय पर उनके स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके।

पेंशन धारकों को भी 7वें वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर पुनरीक्षित पेंशन देने की व्यवस्था की गयी है। आयोग की एक महत्व पूर्ण सिफारिश में ग्रेच्युटी की राशि 10 लाख से बढाकर 20 लाख करने को मान लिया गया है साथ ही आयोग द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी है कि कार्मिकों को मिलने वाले वेतन और प्रोन्नति का आधार उनके द्वारा किया जाने वाला कार्य दायित्व बेहतर प्रदर्शन/निष्पादन (Performance) से तय होगा।

एक अन्य सिफारिश के तहत सेवानिवृत्ति की आयु संबंधी निर्णय को आयोग द्वारा भारत सरकार की इच्छा पर छोड़ दिया है।

## 5.9 प्रोत्साहन, भत्ते एवं अन्य लाभ

प्रोत्साहन शब्द का प्रयोग कर्मचारियों द्वारा उत्पादकता और दक्षता की अभिवृद्धि के लिए किए गये उनके सर्वोतम प्रयासों के लिए उनके सामान्य वेतन के अतिरिक्त दिए जाने वाले आर्थिक और गैर आर्थिक लाभों के लिए किया जाता है। इस प्रकार प्रोत्साहन योजनाओं का मानक आधार होना चाहिए।

बेंडेल फ्रेच के अनुसार प्रोत्साहन योजनाओं का मूल उद्देश्य मूल वेतन के अतिरिक्त वित्तीय प्रलोभन देकर संगठन के लक्ष्यों में योगदान प्राप्त करने हेतु कर्मचारियों के मनोबल और प्रेरणा में अभिवृद्धि करना है। यह मुख्य तौर पर दो प्रकार की हैं-

1. **आर्थिक प्रोत्साहन योजनाएं-** कार्मिकों को आर्थिक प्रोत्साहन देने के लिए व्यक्तिगत, सामूहिक और भागीदारी योजनाओं का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार की योजनाओं में वित्तीय आधार पर लाभान्वित किया जाता है। अलग-अलग प्रोत्साहन योजनाओं को पीस'रेट योजनाओं तथा उत्पादकता- बोनस योजनाओं में वर्गीकृत किया जाता है।

   वैयक्तिक प्रोत्साहन योजनाओं को सबसे गम्भीर समस्या मानकों को निर्धारित करने की होती है। इसमें कटुता पैदा हो सकती है और गुणवत्ता घट सकती है। उत्पादकता बढाने एवं लागत करने के लिए संगठन के कर्मचारियों को सुझाव पेटी के माध्यम से उत्तम सुझाव के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। साथ ही जब सम्पूर्ण संगठन को निर्णय व नीति-निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी बनाया जाता है तो इसमें भी परिणाम सुखद आते हैं।
2. **गैर-आर्थिक प्रोत्साहन योजनाएं-** इस प्रकार की प्रोत्साहन योजनाओं में कार्मिकों को नगद धनराशि की अपेक्षा सामाजिक मान सम्मान बढाने वाले प्रमाण पत्रों को प्रदान किया जाता है। कार्मिकों को उनके बेहतर लक्ष्य प्राप्ति पर प्रशस्ति पत्रों, मेडल्स, पुरुस्कारों एवं योग्यता प्रमाण पत्रों को प्रोत्साहन के रूप में

प्रदान करना भी अच्छा विकल्प सिद्ध हो रहा है। इससे परिश्रमी कर्मचारियों का मनोबल उच्च स्तर पर बना रहता है और उनके प्रभाव का असर संगठन के अन्य कर्मचारियों पर भी सकारात्मक पड़ता है।

3. **भत्ते एवं अन्य लाभ-** लोक सेवकों को उनके कार्य, पद तथा सेवा शर्तों के अनुरूप भत्ते भी दिए जाते हैं। शर्तों के अनुरूप भत्ते भी दिए जाते हैं जो वेतनमान से ही सम्बद्ध रहते हैं। पारिश्रमिक केवल वेतन के ही रूप में नहीं होता कुछ सीमांत लाभ भी वेतन के अनुपूरक होते हैं। कार्मिकों को मिलने वाले ये सीमान्त लाभ ही अधिक आय, अतिरिक्त सुरक्षा अथवा अधिक वांछनीय कार्यस्थिति के परिचायक हैं ये लाभ कार्मिकों के मनोबल को बढाने में सहायक सिद्ध होते हैं। इन लाभों को दो वर्गों में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है-

कार्मिकों का दिए जाने वाले प्रथम प्रकार के भत्ते एवं परिलब्धियों में निम्न को शामिल किया जाता है-

- मँहगाई भत्ता(डी.ए.)- समय-समय पर जीवन निर्वाह व्यय तथा कीमतों में सतत वृद्धि की प्रतिपूर्ति करना इसका उद्देश्य है।
- नगर क्षति-पूर्ति भत्ता (सी.सी.ए.)- नगरों तथा काफी बडे कस्बों में अन्य कारणों जैसे पैट्रोलियम पदार्थों की बढती हुई कीमत, से यात्रा व्यय में वृद्धि हो रही है और कर्मचारियों को अपने कार्यस्थल तक पहुंचने के लिए सहायता आवश्यक है।
- मकान किराया भत्ता (एच.आर.ए.)- यह कर्मचारियों को मकान किराया सुविधा की पूर्ति हेतु दिया जाने वाला भत्ता है। कर्मचारी के मूल वेतन के अनुसार इसका भुगतान किया जाता है।
- यात्रा भत्ता (टी.ए.)- एक स्थान से दूसरे स्थान तक कार्यालयीय कार्य हेतु यात्रा करने में जो व्यय होता है उसकी पूर्ति हेतु कर्मचारी को दिया जाने वाला भत्ता यात्रा भत्ता कहलाता है।
- दैनिक भत्ता (डी.ए.)- यह मुख्यालय से बाहर रहने के प्रत्येक दिन का भत्ता है, जिसका उद्देश्य कर्मचारी द्वारा अपने पोषणार्थ किए गए सामान्य दैनिक व्यय की पूर्ति करना है।
- अवकाश यात्रा अनुदान (एल.टी.सी.)- यह कर्मचारियों को 3 अथवा 5 साल में एक बार स्वीकृत किया जाता है क्योंकि वे नियोजक की सहायता के बिना ऐसी यात्राएं नहीं कर सकते हैं। यह कल्याणकारी कार्य है।
- चिकित्सा भत्ता- औषधि के असामान्य व्यय को बचाने की दृष्टि से कल्याणकारी उपाय के रूप में कर्मचारियों का चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है।
- वाहन भत्ता- एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान ले जाने के संबंध में यह भत्ता दिया जाता है।
- वर्दी भत्ता- सरकारी कर्मचारियों के कुछ वर्गों उदाहरणार्थ- पुलिस, भृत्य वर्ग आदि को अपने कर्तव्य करते समय विशिष्ट पोषाक (वर्दी) पहनना आवश्यक होता है। उन्हें अपनी पोषाक के लिए विशिष्ट भत्ता दिया जाता है।
- बच्चों का शिक्षण भत्ता- यह कर्मचारी को इसलिए दिया जाता है कि वह कुछ परिस्थितियों में अपने बच्चों को शिक्षित कर सकें।

विभिन्न नियोक्ताओं (निजी या सरकारों द्वारा) कार्मिकों को उपरोक्त भत्तों और परिलब्धियों के अतिरिक्त कार्यावधि की सुरक्षा, ब्याज, सहित तथा ब्याज रहित अग्रिम धन, छुट्टियों, पदोन्नति, भविष्यनिधि तथा सेवा काल एवं सेवा निवृत्ति के लाभ तथा पेंशन आदि के सीमान्त लाभ भी प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त पितृत्व अवकाश, मातृत्व अवकाश, बच्चों के पालन-पोषण अवकाश, धारणा अधिकार, अध्ययन अवकाश इत्यादि।

- पैंशन योजना- पैंशन योजना में सेवा निवृत्त कार्मिक को निश्चित मासिक राशि का भुगतान निहित है पैशन योजना कार्मिकों को जब तक वे जीवित रहते हैं तक तक उन्हें सुरक्षित जीवन की गारन्टी प्रदान करती हैं। वेतन प्रशासन में पाँच प्रकार की पैंशन योजनाएं हैं। जैसे सेवा निवृत्ति पैंशन, रिटायरिंग पैंशन, असमर्थता पैंशन, क्षतिपूरक पैंशन, और संवेदना भत्ता है।
- सामान्य/अंशदायी भविष्य निधि- कार्मिकों के लिए एक भविष्य निधि का प्रावधान है। इस योजना में कार्मिक अपने सेवा काल के दौरान प्रतिमाह एक निश्चित धनराशि भविष्य निधि में देता है और फिर निर्धारित आयु, त्यागपत्र असमर्थता की स्थिति में स्वयं कार्मिक को और मृत्यु पर उसके आश्रितों को ब्याज सहित निधि राशि प्रदान की जाती है।
- सेवा निवृत्ति पैंशन- चतुर्थ वेतन आयोग की सिफारिशों पर आधारित नवीन सेवा निवृत्ति का लाभ कार्मिकों को प्राप्त है।

कार्मिक जब अपनी सेवानिवृत्ति की आयु 60/62/65 वर्ष को प्राप्त कर लेता है तो उसकी अर्हकारी सेवा अवधि पर अन्तिम दस माह की औसत परिलब्धियों पर पेंशन प्राप्त होती है। 33 वर्ष की अर्हकारी सेवा पर पूर्ण पेंशन स्वीकार होती है अन्यथा अनुपातिक पेंशन ही स्वीकार होती है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. सेलीरी (Salary) मूल रूप से लैटिन भाषा के किस शब्द से बना है?
2. सामान्यतया वेतन के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाता है?
3. ''चने और मूँगफली देकर आप केवल बंदर ही पा सकते हैं'' यह कथन किसका है?
4. प्रथम वेतन आयोग का गठन कब किया गया?
5. छठा वेतन आयोग कब गठित हुआ और इसके अध्यक्ष कौन थे?
6. ग्रेड-पे की व्यवस्था को समाप्त कर पे-मेट्रिक्स की वयवस्था की शिफारिश किस वेतन आयोग में की गयी?

## 5.10 सारांश

सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि वेतन प्रशासन के माध्यम से, दुनिया के सभी देशों सहित भारत में कार्मिक के वेतन संबंधित सिद्धान्तों द्वारा वेतन निर्धारण का उद्देश्य कार्मिकों का हर सम्भव कल्याण है, ताकि वेतन निर्धारण की विसंगति न रहे और कार्मिकों का मनोबल उच्च स्तर का बना रहे। सरकारी कार्मिकों के वेतनमान निजी क्षेत्र के कार्मिकों की भाँति ही संतोषजनक है और कई आधारों पर उनसे बेहतर भी है। बेहतर कार्य परिस्थिति बेहतर कार्य संस्कृति को जन्म देती है। बेहतर कार्य संस्कृति संगठन को अपने उद्देश्यों के प्रति निष्ठावान बनाती है और बेहतर निष्ठा के लिए बेहतर समर्पण चाहिए। यह सब उचित वेतनमानों के निर्धारण बिना सम्भव नहीं है। समय-समय पर वेतन प्रशासन में गठित वेतन आयोगों द्वारा भी प्रशासकीय दक्षत सम्बंधी वेतनमान के निर्धारण की सिफारिशें की गयी हैं। यह भी सही है कि केवल प्रोत्साहन या वेतन निर्धारण से ही दक्षता का स्तर नहीं बढ सकता। इसके लिए एक ज्यादा समन्वित और सारगर्भित दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। यह दक्षता बेहतर कार्य आयोजन, अच्छे सम्बन्धों और वैज्ञानिक प्रबन्धन के साथ उचित वेतन प्रशासन के अन्तर अनुशासनात्मकता मार्ग से ही प्रापत हो सकती है।

## 5.11 शब्दावली

वेतन विसंगति- वेतन में असमानता का होना, अनुबंधित- ठेका या संविदा पर रखना, प्रोत्साहन- वेतन के अतिरिक्त आर्थिक या गैर आर्थिक लाभ, आदर्श नियोजक- सेवा नियुक्ति के लिए अच्छे एवं अनुकरणीय नियोजक, अन्तर-अनुशासनात्मक- एक-दूसरे से जुडे होना, नियोजन- भविष्य के कार्यों की योजना

## 5. 12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** सेलेरियम (Salarium), **2.** पे(Pay), **3.** विप्रो के अध्यक्ष अजीम प्रेमजी, **4.** 1947, **5.** 2006 में न्यायमूर्ति बी.एस. कृष्णा, **6.** सातवें वेतन आयोग

## 5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. सुषमा यादव एवं बलवान गौतम, लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, ओरियन्ट ब्लैकस्वान प्रा0 लि0 नई दिल्ली, 2015
2. डा0 सुरेन्द्र कटारिया, लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 2011
3. डा0 महादेव प्रसाद शर्मा एवं डा0 बी0 एल0 सडाना, लोक प्रशासनः सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल इलाहाबाद, 2004
4. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2011
5. अवस्थी एण्ड अवस्थी, भारतीय प्रशासन, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2011


## 5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. डा0 महादेव प्रसाद शर्मा एवं डा0 बी0 एल0 सडाना, लोक प्रशासनः सिद्धान्त एवं व्यवहार, किताब महल इलाहाबाद।
2. अवस्थी एवं माहेश्वरी, लोक प्रशासन, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. अवस्थी एण्ड अवस्थी, भारतीय प्रशासन, प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।


## 5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्मिकों के वेतन निर्धारण के सिद्धान्तों को विस्तार से समझाइये।
2. अंग्रेजी शासन के दौरान वेतन प्रशासन के इतिहास पर प्रकाश डालिए।
3. कार्मिकों के वेतन निर्धारण की पद्धतियों का उल्लेख करते हुए वेतन निर्धारण में कार्य मूल्यांकन की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
4. स्वतंत्र भारत में वेतन प्रशासन हेतु अपनाये गये सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
5. भारत में कार्मिकों के लिए वेतन प्रशासन की प्रासंगिकता स्पष्ट करते हुए बताएं कि क्या कार्मिकों को मिलने वाला वेतन उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप है या नहीं।
6. वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत भारत के कार्मिकों को मिलने वाले विभिन्न भत्तों एवं सुविधाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

# इकाई- 6 आचरण एवं अनुशासन

**इकाई की संरचना**

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 कार्मिक प्रशासन में आचरण एवं अनुशासन
6.3 आचरण नियमावली में सम्मिलित विषय
6.4 अनुशासनात्मक कार्यवाही का अर्थ एवं परिभाषा
6.5 अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण
6.6 अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न रूप एवं तरीके
6.7 ब्रिटिश शासन के दौरान कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही
6.8 भारतीय संविधान में अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया संबंधी प्रावधान
6.9 कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संबंधी विभिन्न चरण
6.10 अनुशासनात्मक कार्यवाही की समस्याएं एवं समाधान
6.11 सारांश
6.12 शब्दावली
6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

## 6.0 प्रस्तावना

'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात आमजन राजा के आचरण का अनुसरण करता है। राजा में पाए जाने वाले गुण प्रजा के लिए सदैव अनुकरणीय होते हैं। वर्तमान की लोकतांत्रिक प्रणालियों में राजा तो नहीं हैं किंतु मंत्रीगण एवं लोक सेवक ही सरकार का वास्तविक स्वरुप हैं। हर युग की भांति राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए कुछ ना कुछ मर्यादाएं अवश्य रही हैं जिससे वे शक्तियों का दुरुपयोग ना कर सकें और जन कल्याण की भावना से ही कर्तव्यों का पालन करें। क्योंकि सरकारों को भी संगठन के रूप में परिभाषित किया गया है साथ ही संगठन को मजबूती प्रदान करने के लिए विशेष प्रकार के आचरण नियमों का निर्माण जरूरी है, फिर चाहे संगठन सार्वजनिक हो अथवा निजी, अपनी व्यवस्थाओं में संलग्न कार्मिकों के व्यवहार एवं आचरण को नियंत्रित एवं संतुलित करने के लिए कुछ नियम एवं विनियम रखते हैं। मानवीय स्वभाव में गुण एवं दोष दोनों का समावेश होता है किंतु वे औचित्यपूर्ण मार्ग पर चलें अथवा कार्मिकों को उचित मार्ग पर बनाए रखने के लिए प्रत्येक संगठन को अपने भीतर आचरण और अनुशासन के नियमों संबंधी संहिता की आवश्यकता होती है। राजनीतिक व्यवस्थाओं के औपचारिक संगठनों में व्यवहार कं नियत नियमों द्वारा आचरण के उच्च आदर्शों को स्थापित किया जाना न केवल संगठन के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में कारगर साबित होता है बल्कि आम जन के मध्य अनुकरणीय उदाहरणों से जीवन मूल्यों के रूप में प्रति स्थापित होनेकी संभावनाओं को पुख्ता कर देता है। एक सफल कार्मिक व्यवस्था की वास्तविक आधारशिला यह होती है कि उस व्यवस्था में सेवाओं के प्रति अनुशासन एवं सत्य निष्ठा का आचरण किस स्तर का है। यह जितना उच्च स्तर का होगा समाज उतना ही सभ्य नागरिकों के स्तर को प्राप्त करेगा। कहते हैं 'सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्णसत्ता पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है' अर्थात कार्मिकों के द्वारा अधिकारिक सत्ता का दुरुपयोग रोकने के लिए भी

किसी उच्चतम आदर्शों के व्यवहार संबंधी अनुशासन की आचरण संहिता अपनाई जानी चाहिए। वर्तमान युग राज्य जैसी संस्था के सकारात्मक पहलुओं की दिशा में बढ़ते जाने का युग है जहां पुलिस राज्य की कार्यप्रणाली निष्क्रियता के दायरे से बाहर निकल रही है और मानव जीवन की बेहतरी के लिए सक्रिय भूमिका का निर्वहन कर रही है। राज्य का दायरा बढ़ने से मानवीय जीवन संबंधी उद्देश्यों को प्राप्त करने में राज्य कल्याणकारी हो चला है। वह जीवन की रक्षा ही नहीं कर रहा अपितु सदजीवन की आशाएं तलाश कर रहा है। सदजीवन के संबंध में विकास कार्यक्रमों का आयोजन राज्य के कुशल नेतृत्वएवं प्रबंधन से ही साकार हो सकता है। इन सभी विस्तृत होते आयामों का आधार वह प्रशासनिक व्यवस्था है, जिसमें कार्यरत कर्मचारी(कार्मिक) अगर अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से विमुख हो जाते हैं तो संपूर्ण नागरिक समाज विघटन की कगार पर खड़ा होगा इस विघटन के आधार, कारण और परिणाम लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, कार्य संस्कृति में गिरावट, समय बद्धता का अभाव और मनो-सामाजिक समस्याओं में तेजी से वृद्धि देखी जा सकती है।

किसी प्रजातांत्रिक/नागरिक समाज में संपूर्ण विकास के कार्यक्रमों की सफलता समन्वित प्रयासों पर निर्भर होती है। विशेष रूप से सरकारी कार्मिक वर्ग इसके लिए उत्तरदाई होता है। नागरिक कल्याण के उद्देश्यों की प्राप्ति में यदि राज्य या सरकार की रीढ़ समझी जाने वाली कार्मिक व्यवस्था,कदाचार और अनुशासनहीनता का शिकार हो जाए तो इस दुर्बलता से न केवल प्रशासनिक व्यवस्थाओं के दुर्बल होने की संभावना बढ़ती है बल्कि अंतर-अनुशासनात्मकता के कारण मानव समाज के दुर्बल होने की संभावना बढ़ जाएगी। इस प्रकार यथा राजा तथा प्रजा के क्रम में एक आचार संहिता की नितांत आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी।

## 6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्मिक प्रशासन में आचरण और अनुशासन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगें।
- आचरण के सम्भावित नियमों और अनुशासनात्मक कार्यवाही संबंधी अवधारणाओं की परख कर सकेंगे।
- भारत में कार्मिकों के विरुद्ध होने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही को स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् समझ सकेंगें।
- अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया को चरणबद्ध करके समझ सकेंगें।
- कार्मिक प्रशासन और आचरण एवं अनुशासन के प्रति चिन्तन में सहभागी बन ज्ञानार्जन कर सकेंगें।

## 6.2 कार्मिक प्रशासन में आचरण एवं अनुशासन की विशेष भूमिका एवं आवश्यकता

किसी संगठन के प्रशासनिक कार्यों में कुशलता लाने के लिए तथा प्रशासकीय व्यवहार के सफल संचालन हेतु अनुशासन की महति आवश्यकता होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि कार्मिकों को अच्छा वेतनमान एवं सेवा शर्तें प्रदान कर देने से ही अनुशासन स्थापित नहीं किया जा सकता और न ही कार्मिकों किससे अपेक्षित उद्देश्यों को पूर्ण करवाया जा सकता है। समस्या यह है कि कार्मिकों में प्राय अनुशासनहीनता की प्रवृति को किस प्रकार दूर किया जा सकता है ताकि संगठन अपने लक्ष्य को सामूहिक एवं सम्मिलित ढंग से पूर्ण कर सके। निश्चित तौर पर इसके लिए हमें आचरण नियमावली की आवश्यकता होती है जो एक ओर कार्मिकों के अपेक्षित व्यवहार को नियंत्रित और नियमित करती है तो दूसरी और उन्हें दंडित एवं पुरस्कृत भी करती है। विश्व शब्दकोश में आचरण एवं अनुशासन को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'आचरण' कार्य संचालन अथवा स्वयं के व्यवहार की पद्धति है जबकि 'अनुशासन' एक मानसिक तथा नैतिक प्रशिक्षण है। अथवा 'आचरण और अनुशासन' नियंत्रण

व अधिकारों के अधीन व्यक्तियों के मध्य एक संपोषित व्यवस्था होती है। इस कार्य से कार्मिकों के व्यवहार में एक निर्धारित परिवर्तन लाते हुए, नियंत्रण व्यवस्था के अंतर्गत आज्ञा अनुपालन में पारंगत करना है, साथ ही साथ बेहतर व्यवस्था स्थापन में प्रशिक्षण प्रक्रिया को आचरण एवं अनुशासन का अभिन्न अंग बनाना शामिल है।

उक्त बातों के अनुपालन से एक ऐसी कार्मिक प्रणाली का निर्माण संभव हो सकता है जो समान आचरण के उत्साही प्रभाव से ओतप्रोत होगी जो अपनी कार्यप्रणाली में ज्यादा तटस्थ, निर्दोष, जवाबदेह और पारदर्शी होगी, जिसमें बेहतर कार्य क्षमता वाली कार्य संस्कृति का आभाश होगा जो चरणबद्धता एवं समयबद्धता की कसौटी पर खरी उतरेगी और यह स्वयं से उपजे दुर्व्यवहारों से निपटने की अनुशासनात्मक कार्यवाही की अद्भुत क्षमता रखेगी। यह सब कुछ तबीयत संभव होता है जब कार्मिक व्यवस्था में आचरण एवं अनुशासन की भूमिका पर न केवल ध्यान दिया जाए बल्कि उसकी भूमिका और आवश्यकता को रेखांकित करने पर बल दिया जाना चाहिए।

आचरण एवं अनुशासन की आवश्यकता एवं उसकी भूमिका निम्न बिंदुओं के आधार पर समझ सकते हैं-

1. कार्मिक वर्ग का सरकारों के प्रति दृढ़ निष्ठावान रहना और अपने उच्च अधिकारियोंके प्रति सदव्यवहार की अनिवार्यता।
2. कार्मिकों के निजी व्यवसाय एवं व्यवहार पर प्रतिबंध ताकि वे अपने दायित्वों के प्रति पूर्ण इमानदार रहें और पूर्ण मनोयोग से आपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोगी बने रहें।
3. कार्मिकों के राजनीतिक क्रियाकलापों पर प्रतिबंध होता कि उनकी सत्य निष्ठा प्रभावित न हो वे राजनीतिक तटस्थता बनाए रखें।
4. 'यथा राजा तथा प्रजा' के आदर्श को प्राप्त करते हुए अच्छे नागरिक समाज की स्थापना करना।
5. सत्ता में अधिकार प्राप्त वर्ग के सत्ता संबंधी दुरुपयोग पर प्रतिबंध लगा कर उसे स्वार्थ रहित बनाने के लिए।
6. कार्मिक अपने दायित्व और कर्तव्य से बंधे रहें और उनमें प्रशासनिक कुशलता संबंधी क्षमता का संचार होता रहे।
7. कार्मिकों का आचरण नैतिक बना रहे ताकि कोई भी उन पर आरोप या उंगली न उठा सके।

उक्त उक्त सभी नियमों की अनिवार्यता से ही राज्य के कल्याणकारी स्वरुप को प्राप्त किया जा सकता है जो जन्म से मृत्यु तक मानवीय विकास की सभी संभावनाओं का धरातलीय सूत्रपात करता है इसके लिए आचरण एवं अनुशासन की आवश्यकता अपरिहार्य हैं।

## 6.3 आचरण नियमावली में सम्मिलित विषय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 309 में महामहिम राष्ट्रपति को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह सरकारी कार्मिकों के आचरण संबंधी आवश्यक नियम बनाए। यद्यपि सरकार कर्मचारियों को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जाता है किंतु सार रूप में सभी के लिए समानता पर आधारित आचरण नियमों को प्रतिस्थापित किया गया है। इसके तहत भारत सरकार द्वारा 1951 में 'अखिल भारतीय सेवा कानून' तथा 'अखिल भारतीय सेवा आचरण नियमावली-1954' बनाए गए थे।

सन 1965 में केंद्रीय सिविल सेवा आचरण नियमावली का निर्माण कर लागू किया गया और समय-समय पर इसमें संशोधन भी किया जाता रहा है। भारत सरकार के रेलवे उपक्रम द्वारा भी अपने गर्मी को के लिए रेलवे सेवा (आचरण) नियमावली 1956 बनाई गई।

उक्त विभिन्न नियमावलियों के बावजूद समान आचरण के लिए सन् 1969 में प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अपनी सिफारिशें भी इस संबंध में दी जाती रही हैं।

सामान्य रूप से राजनीतिक कार्यकलापों पर प्रतिबंध, प्रेस, रेडियो तथा बाहरी संस्थाओं से संबंध, सरकार की आलोचना, सार्वजनिक प्रदर्शनों पर प्रतिबंध, संपत्ति, निजी व्यापार और निवेश पर प्रतिबंध आचरण नियमों को केंद्रीय विषय हैं।

संक्षेप में लोकसेवकों से संबंधित आचरण नियमों में निम्न को भी सम्मिलित किया जा सकता है-

1. कर्तव्य पालन- सरकारी कर्मचारियों को हमेशा अपने कर्तव्यों का पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ अनुपालन करना चाहिए।
2. उपहार लेने व देने पर प्रतिबंध- किसी भी सरकारी सेवक को विवाह उत्सव, जन्म दिवस,अंत्येष्टि या धार्मिक उत्सव में उपहार देना या प्राप्त करना प्रतिबंधित है विशेष रूप से 20रु0 से अधिक मूल्य की राशि का हिसाब सरकार को देना चाहिए।
3. संपत्ति संबंधित नियम- सेवा में आने पर कार्मिक को संपत्ति की अद्यतन स्थिति का हलफनामा/शपथ पत्र देना होता है और प्रतिवर्ष आयोजित होने वाली संपत्ति का विवरण सरकार को देना शामिल है, ताकि आय से अधिक संपत्ति पर निगाह रखी जा सके।
4. दूसरे विवाह का निषेध- सरकारी कार्मिक के लिए आचरण संबंधी नियम यह भी है कि पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरी विवाह की मनाही है। कानून में भी इसके संबंधी प्रावधान हैं।
5. निजी व्यापार का निषेध- सरकारी कार्मिक निजी व्यवसाय, सट्टेबाजी और निकट संबंधी नियुक्ति की मनाही है।
6. राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध- सरकारी कर्मचारी होने के नाते कार्मिकों को जहां कुछ विशिष्ट अधिकार और उत्तरदायित्व होते हैं वहीं वह सामान्य नागरिक भी होता है, किंतु उसकी प्राथमिक निष्ठा सरकार के साथ होनी चाहिए और ऐसे में उस पर कुछ आचरण संबंधी नियमों के लागू होने से कुछ व्यवहारों का प्रतिषेध करना होता है। राजनीतिक निष्पक्षता के क्रम में प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को राजनीतिक दलों की सदस्यता ग्रहण नहीं करनी चाहिए। किसी राजनीतिक गतिविधियों में प्रतिभाग का निषेध होता है, उसे किसी राजनीतिक दल को चंदा अथवा दान की मनाही होती है। इसके अलावा सरकार के विरुद्ध राजनीतिक हड़तालों में सहभागी बनने पर प्रतिबंध होता है। कार्मिकों को सरकार की और उसके राजनीतिक विचारों की आलोचना करने का अधिकार नहीं है। अर्थात जहां तक राजनीतिक व्यवहार का प्रश्न है प्रशासनिक कार्मिकों को राजनीति तटस्थताके आदर्श का अनुपालन करना चाहिए। इससे सार्वजनिक हित बनाए रखने में मदद मिलती है और निष्पक्षता से जनसाधारण का विश्वास कार्मिक वर्ग में बढ़ता है।

दुनिया के तमाम देशों में सरकारी कार्मिकों के राजनीतिक अधिकारों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है-

- मतदान संबंधी अधिकार और सामान्य एवं आंशिक रूप से राजनीतिक क्रियाओं में प्रतिभाग का अधिकार।
- सरकारी कर्मचारियों को जनप्रतिनिधि बनने में उम्मीदवारी संबंधी छूट का अधिकार।

संयुक्त राज्य अमेरिका में यह परंपरा बनी हुई है कि सरकारी कर्मचारियों को राजनीति में प्रतिभाग की अनुमति नहीं होनी चाहिए जबकि ब्रिटेन में कर्मचारियों को राजनीतिक रुप से तटस्थ रहने संबंधी दिशा निर्देश हैं। फ्रांस जैसे गणराज्य में कर्मचारियों को राजनीतिक कार्यक्लापों में आंशिक रूप से प्रतिभाग करने की छूट है किंतु ऐसा करना औचित्यपूर्ण एवं न्यायपूर्ण होना चाहिए।

भारत में सरकारी कार्मिकों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि सरकारी कर्मचारी मत देने एवं संघ बनाने का अधिकार तो रखते हैं किंतु उनका किसी राजनीतिक गतिविधि में सहभागी बनना प्रतिबंधित है। सरकारी कर्मचारी किसी दल के नए तो सदस्य होंगे और न ही वे किसी राजनीतिक दल को सहयोग राशि अथवा चंदा देंगे।

1960 में गृह मंत्रालय द्वारा जारी एक परिपत्र में निर्देशित किया गया है कि समस्त सरकारी कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे किसी भी राजनीतिक कार्यक्लाप अथवा गतिविधि में प्रतिभाग नहीं करेंगे। किंतु भारत सरकार उन्हें अपने हित एवं कल्याण के लिए संघों के रूप में संगठित होने का स्वागत करती है ताकि वे न्यायोचित हितों का वर्धन कर सकें।

भारतीय संदर्भ में सरकारी कर्मचारियों के लिए कुछ महत्वपूर्ण आचरण नियम निर्धारित किए हैं-

उक्त बातों के होते हुए केंद्रीय सेवा आचरण नियमावली के नियम 4 में यह निर्धारित किया गया है कि "कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी संसद अथवा विधानसभा के चुनावों के लिए प्रचार नहीं करेगा अथवा हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही चुनावों को प्रभावित करने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग करेगा और न चुनाव में भाग लेगा"।

कार्मिक की राजद्रोही भावनाओं की अभिव्यक्ति सिद्ध होने पर उसकी सेवा समाप्त कर दी जाएगी।

सरकारी कर्मचारियों के संघ बनाने और हड़ताल करने का प्रश्न एक दूसरे से जुड़े हैं। हड़ताल सर्वाधिक विवादित प्रश्नों में से एक है। यद्यपि भारत में सरकारी कर्मचारियों को सामान्य रूप से हड़ताल से रोका नहीं जा सकता किंतु जनमानस के लिए सेवाओं की अनिवार्यता को देखते हुए 'एस्मा' (ASMA) आवश्यक सेवा संधारण अधिनियम- 1960 के प्रावधानों का प्रयोग करते हुए हड़ताल को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता है। इसे निम्न क्षेत्र में लागू किया जा सकता है यथा बिजली, पानी, यातायात, संचार, डाकतार,चिकित्सा, खाद्य जरूरतें आदि।

## 6.4 अनुशासनात्मक कार्यवाही का अर्थ एवं परिभाषा

मनुष्य अच्छाई और बुराई दो भिन्न प्रकृतियों का सम्मिश्रण है। इसके चलते यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि किसी प्रशासनिक संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में संगठन के सभी सदस्य निर्दोष तरीके से उच्च एवं समान उत्साह के साथ आचरण करेंगे। किसी संगठन की मजबूती इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह आपेक्षित व्यवहार करने पर अपने सदस्यों के प्रति दंड के क्या प्रावधान करता है। इसलिए प्रत्येक संगठन में किसी न किसी रूप में अनुशासनात्मक कार्यवाही का प्रावधान होता है ताकि लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्मिकों के आपेक्षित व्यवहार को सही दिशा में नियंत्रित एवं संचालित किया जा सके।

टोरपे के अनुसार, ''अनुशासनात्मक कार्रवाई वे प्रशासनिक कदम हैं जो कार्य की संपन्नता से संबंधित कर्मचारी के दुर्व्यवहार को ठीक करने के लिए उठाए जाते हैं।"

डॉ0 स्प्रिंगल के अनुसार, ''अनुशासन वह शक्ति है जो व्यक्ति अथवा समूह को उन नियमों, विनियमों और प्रक्रियाओं का पालन करने के लिए प्रेरित करती हैं जो किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझी जाती हैं। यह शक्ति या शक्ति का डर है जो व्यक्ति अथवा समूह को ऐसे काम करने से रोकती है जो समूह के उद्देश्यों के लिए विनाशकारी माने जाते हैं। यह समूह के विनियमों के उल्लंघन के लिए दंड का प्रवर्तन अथवा नियंत्रण का अनुष्ठान भी है।"

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही का आशय कर्मचारियों के कार्य निष्पादन से जुड़े आचरण नियमों को बनाए रखना और आपेक्षित व्यवहार के विपरीत कदाचार को दुरुस्त करने हेतु संभावित प्रशासनिक उपायों से है। इससे वैयक्तिक्त एवं सामूहिक कार्य क्षमता को बनाने रखने में सहायता मिलती है। आचरण के नियमों के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही और दीवानी/फौजदारी प्रक्रियाओं में काफी विभेद पाया जाता है। फौजदारी एवं दीवानी मामलों में किसी कानूनी उल्लंघन की प्रवृत्ति पाई जाती है जिसका न्यायालयों द्वारा निराकरण किया जाता जाता है। जबकि अनुशासनात्मक कार्यवाही के नियमों को किसी कार्यालय विशेष के संबंध में स्थापित आचरण नियमावली में व्यवहारिक त्रुटियों के क्रम में देखा जा सकता है।

सामान्य रूप से आचरण नियमों के अंतर्गत निम्न विषयों को शामिल किया गया है, जहां कठोरता अधिक बढ़ती जाए-

1. राज्य के प्रति निष्ठा।
2. विशिष्ट पदाधिकारियों के प्रति उचित व्यवहार कायम रखना।
3. राजनीतिक गतिविधियों में विनियमन एवं कार्मिकों की तटस्थता संबंधी नियमों की स्थापना।
4. एक से अधिक विवाह संबंधी निषेध के अनुपालन में।
5. रिश्वत, अवैध चल-अचल संपत्ति अर्जन, निवेश ऋण, उपहार, पारितोषिक, आदि पर प्रतिबंध।
6. पारदर्शिता एवं जवाबदेही के लिए ईमानदारी की सुरक्षा करना।

इसके अतिरिक्त प्रोफेसर एल0 डी0 व्हाइट ने उन परिस्थितियों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया जहां अनुशासनात्मक कार्यवाही आवश्यक हो जाती हैं-

- कर्तव्य पालन की ओर ध्यान नहीं देना, आलसपन, कार्य के प्रति असावधानी तथा कार्य करने से मन चुराना।
- अकार्यकशलता का प्रदर्शन।
- स्थापित कानूनों का उल्लंघन, नियमों को तोड़ना, अवज्ञा अथवा पदसोपान के नियमों का पालन न करना।
- अनैतिकता।
- उन्माद।
- भ्रष्टाचार एवं पक्षपात को प्रस्ताव प्रोत्साहित करना।
- ईमानदारी का अभाव।
- जानबूझकर किसी कानून अधिनियम को लागू करने से मना करना।

उक्त के संदर्भ में अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के लिए निम्न प्रकार के कारणों पर चर्चा करना समाचीन होगा।

## 6.5 अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण

सरकारी कर्मचारियों पर किसी आपेक्षित आचार संहिता के उल्लंघन पर अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न कारणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

1. सामान्य एवं छोटे अपराधों के समान आचरण-
    - आदेशों की अवहेलना
    - अभद्रता (जनता एवं सहकर्मियों के साथ)
    - अविनय अथवा शख्त लहजा
    - कदाचार (षड्यंत्र, आलोचना, आचार संहिता उल्लंघन, पक्षपात आदि)
2. गंभीर अपराधों के समान आचरण-
    - रिश्वत
    - भ्रष्टाचार
    - लेखा में जालसाजी
    - दस्तावेजों की जालसाजी एवं दुरुपयोग
    - सरकारी संपत्ति की चोरी

- सरकार को धोखा देना
- आय से अधिक संपत्ति का अर्जन
- गबन
- छल कपट पूर्ण दावे (यात्रा भत्ता, मकान किराया भत्ता) आदि
- कर्मचारियों के लिए स्थापित अध्यादेश कानूनों और दिशा निर्देशों का उल्लंघन

इन सभी उल्लेखित कारणों एवं परिस्थितियों के संदर्भ प्रकाश में सरकारी कर्मचारियों का दोष सिद्ध होने पर दंडस्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

## 6.6 अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न रूप एवं तरीके

सरकारी कर्मचारियों के किसी भी प्रशासनिक संगठन में अनुशासन बनाए रखने के लिए दंड स्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाही के ऐसे प्रावधान होना चाहिए, जिन्हें कर्मचारियों के अनुशासनहीनता होने पर उपयोग में लाया जा सके और वे नियंत्रित एवं संचालित होते रहें। कहा भी जाता है कि भय बिनु होय न प्रीत' भारतीय संविधान की धारा- 311 में स्पष्ट है कि अनुशासनिक कार्यवाही औपचारिक तथा अनौपचारिक हो सकती है। अनौपचारिक अनुशासनिक कार्यवाही का तात्पर्य कम वांछित कार्यों का आवंटन, निकट निरीक्षण, सुविधाओं की हानि, अथवा उन पर रोक, प्रासंगिक मामलों में परामर्श ना करना, प्रस्तावों अथवा सिफारिशों की अस्वीकृति से हो सकता है। इसमें कर्मचारियों के अधिकारों में काट-छांट और उस की जिम्मेदारियों को कम करना भी सम्मिलित हो सकता है। अनौपचारिक अनुशासनिक कार्यवाही करने का कारण यह भी हो सकता है कि सीधी और औपचारिक कार्यवाही को न्याय संगत सिद्ध करने के लिए यह अपराध बहुत तुच्छ अथवा अति सूक्ष्म हो सकते हैं या इन्हें सिद्ध करना बहुत कठिन हो सकता है।

औपचारिक अनुशासनिक कार्यवाही तब की जाती है जब अपराध गंभीर हो और उसे कानूनी रूप से स्थापित किया जा सकता हो, ऐसे प्रकरणों में सेवा के सदस्यों पर आरोपित की जाने वाली शक्तियां दंड निम्नांकित हैं-

1. चेतावनी देना- उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ कार्मिक कर्मचारी की अनुशासनहीनता पर डाटता फटकारता है और भविष्य में पुनरावृत्ति न होने की चेतावनी देकर छोड़ता है।
2. कार्य पटल में परिवर्तन करना- कई बार विभागाध्यक्ष अथवा उच्च अधिकारी द्वारा कार्मिक की अनुशासनहीनता पर उसके कार्य, कार्यपटलआदि में परिवर्तन कर दिया जाता है।
3. सेवा अभिलेखों में मूल्यांकन- कार्मिक के आचरण में गिरावट पर उसके सेवा अभिलेखों में उच्च अधिकारियों द्वारा टिप्पणी लिख दी जाती है जो पदोन्नति के मार्ग में बाधक बन सकती है।
4. जुर्माना लगाना- सरकारी कार्मिक की अनुशासनहीनता पर आर्थिक दंड भी लगाया जा सकता है।
5. वार्षिक वेतन वृद्धि रोकना- उच्च अधिकारी द्वारा कार्य संतुष्टि न होना अथवा आचरण नियमावली के उल्लंघन पर वेतन वृद्धि पर रोक लगाई जा सकती है।
6. पदोन्नति रोकना- अनुशासनहीनता का परिणाम यह हो सकता है कि कार्मिक की पदोन्नति को रोक दिया जाए। यह कठोर कार्यवाही में शामिल है।
7. स्थानांतरण करना- आचरण नियमावली का अनुपालन न करने पर कार्मिक का स्थानांतरण अन्यत्र कर दिया जाता है। यह भी कठोर अथवा सख्त कार्यवाही का भाग है।
8. पदावनति करना- कार्मिक द्वारा निर्धारित आचरण का अनुपालन न करना उसे पदोन्नति के स्थान पर अवनति भी दिला सकता है।

9. निलंबन- कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक प्रक्रिया के अंतर्गत एक और सख्त कार्रवाई निलंबन है। यह कुछ समय के लिए होता है किंतु यदि आचरण में सुधार नहीं होता तो उसे विभागीय सेवा से विमुक्त(बर्खास्त) कर दिया जाता है।
10. फौजदारी कार्यवाही एवं स्थाई बर्खास्तगी- इसका आशय है कि यदि कार्मिक द्वारा गंभीर प्रकृति का अपराध एवं अनुशासन हीनता की गयी है, जिसके लिए कानूनी प्रावधानों में फौजदारी मामला बनता है तो मुकदमा पंजीकृत कर स्थाई तौर पर बर्खास्तगी कर दी जाती है, जिसका परिणाम यह होगा कि कार्मिक कभी भी किसी प्रकार की सरकारी सेवा में प्रवेश नहीं कर पाएगा। उक्त सभी कार्यवाहियां निम्न शर्तों के साथ ही की जा सकती है-

- कार्मिक को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की जानकारी ससमय देनी होगी।
- विभागीय विनियमों और मौजूदा कानूनों के अंतर्गत ही कार्यवाही संभव होगी।
- बर्खास्तगी करने वाला अधिकारी, नियुक्ति करने वाले अधिकारी से या तो वरिष्ठ होगा या समकक्ष, निचली श्रेणी का अधिकारी यह निर्णय नहीं कर सकता है।
- कार्मिक को अपने बचाव का पूर्ण न्याय संगत अवसर प्रदान किया जाएगा।
- जांच मंडल के रूप में कम से कम एक अधिकारी उसी सेवा से होगा जिस सेवा में कार्मिक है।

## 6.7 ब्रिटिश शासन के दौरान कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही

भारतीय औपनिवेशिक साम्राज्य में ब्रिटिश सरकार को मजबूत करने के जिस सुदृढता एवं स्थायित्व की आवश्यकता थी वह एक अनुशासित कार्मिक वर्ग के बिना संभव नहीं था। इसी कारण भारत में अंग्रेजी सरकार बुनियादी तौर पर अपने स्थायित्व के लिए अपने कर्मचारियों पर निर्भर रहती थी। फलस्वरुप तत्कालीन अखिल भारतीय सेवाओं में सभी प्रकार की सुविधाओं, अधिकारों और उपकारों की भरमार रहती थी। ये सेवाएं गवर्नर जनरल तक के नियंत्रण में नहीं थी। वह सीधे भारत सचिव और उसकी परिषद के अधीन थी।

1. **भारत सरकार अधिनियम-1919 में अनुशासनिक कार्यवाही के प्रावधान-** अखिल भारतीय अधिकारियों राज्य परिषद सचिव के अतिरिक्त अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता था। महत्वपूर्ण अनुशासनिक मामलों में उसके साथ ही प्रतिकूल व्यवहार होता था तो उसे राज्य परिषद सचिव को अपील करने का अधिकार था। प्रांत के गवर्नर से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह किसी भी ऐसे अधिकारी की शिकायत या प्ररीक्षण करे जो यह सोचता हो कि उसके वरिष्ठ अधिकारियों ने उसके साथ अन्याय किया है। वह उसकी शिकायत दूर करे, यदि ऐसा करना न्यायोचित प्रतीत हो। उसकी परिलब्धियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला कोई भी आदेश अथवा उसकी निंदा का कोई भी आदेश गवर्नर की व्यक्तिगत सहमति के बिना पारित नहीं किया जा सकता था। उसकी नियुक्ति के पदांकन आदेश के लिए भी गवर्नर की व्यक्तिगत सहमति अपेक्षित होती थी। उसके वेतन, पेंशन आदि विधानसभा के मतदान के अधीन नहीं थे।

   यें सेवाएं जनमत के प्रति उत्तरदाई और विशेषाधिकृत स्थिति में संस्थापित थी और इसलिए उन्हें भारत सरकार अधिनियम-1919 के अंतर्गत अतिसीमित उत्तरदाई शासन लागू करने वाले सुधारवादी युग के साथ समायोजित करना कठिन प्रतीत हुआ। प्रांतीय तथा केंद्रीय विधान मंडलों में प्रश्नों के द्वारा सेवा के सदस्यों की व्यक्तिगत आलोचना प्रांतों में भारतीय मंत्रियों के अधीन कार्य की अपकीर्ति, 1920-22 के असहयोग आंदोलन में अधिकारियों और उनके परिवारों को व्यक्तिगत असुविधा, प्रथम विश्व युद्ध के फलस्वरुप किमतों में वृद्धि के कारण वेतन की अपर्याप्तता- इन सभी ने इन सेवाओं के यूरोपीय सदस्यों को

हतोत्साहित और व्याकुल कर दिया तथा उनमें से कई लोगों ने मजबूरन सेवा से निवृत्त होने का निर्णय ले लिया। इस प्रवृत्ति ने 1924 ने ली आयोग की सिफारिश के कारण इन सेवाओं का अधिक से अधिक भारतीयकरण सुगम बना दिया।

2. **भारत सरकार अधिनियम-1935 में अनुशासनिक कार्यवाही के प्रावधान-** यूरोपीय अधिकारियों ने भारतीय मंत्रियों के अधीन सेवा करने की अपेक्षा सेवा से निवृत्ति लेने की इच्छा व्यक्त की। जिसके कारण भारत में सरकारी सेवाओं की विशेषाधिकृत स्थिति बनाने हेतु उन्हें ब्रिटिश सरकार ने विशिष्ट सुरक्षा देने में और अधिक रुचि ली।अतएव भारत सरकार अधिनियम-1935 में गवर्नर जनरल और गवर्नरों की विशेष जिम्मेदारियों की सूची में सरकारी सेवाओं के हितों का संरक्षण भी शामिल किया गया।(धारा 247, 249) इस प्रकार यदि राज्य सचिव की सेवाओं का कोई भी अधिकारी अपनी सेवा शर्तों से संबंधित प्रतिकूल रूप से किसी आदेश से प्रभावित होता था तो उसे गवर्नर को शिकायत करने का अधिकार था और गवर्नर को ऐसे मामले में अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करते हुए मंत्रियों की सलाह लिए बिना निपटारा करना होता था।

## 6.8 भारतीय संविधान में अनुशासनात्मक कार्यवाहीकी प्रक्रिया संबंधी प्रावधान

लंबे समय तक ब्रिटिश उपनिवेश रहने के कारण भारतीय परिवेश पर अंग्रेजी प्रशासनिक छाप रही है जो आजादी के पश्चात भारतीय संविधान पर भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। जहां तक कार्मिक प्रशासन में अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रक्रिया संबंधी प्रावधानों का प्रश्न है उस पर भी अंग्रेजी शासन के जमाने से चली आ रही आचरण नियमावली के कुछ एक संशोधनों के साथ उसे अपना लिया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-309 में निहित है कि संघ राज्यों के मामलों से संबंधित सरकारी नौकरियों तथा पदों पर नियुक्त किए गए व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तें विधानमंडल के अधिनियम द्वारा विनियमित होंगी, जब तक उपयुक्त विधानमंडल के अधिनियम द्वारा प्रावधान नहीं बनाया जाता तब तक राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, जैसा कि प्रकरण हो सरकारी नौकरियों की भर्ती और सेवा शर्तों को विनियमित करने हेतु सक्षम होंगें। संसद और हमारे विधानमंडल, राष्ट्रपति, राज्यपाल सक्षम संस्थाएं हैं।

अनुच्छेद-310 के अनुसार रक्षा सेवा अथवा संघ की असैनिक सेवा अथवा अखिल भारतीय सेवा का सदस्य अथवा संघ शासन के अधीन कोई भी सैनिक अथवा असैनिक पद ग्रहण करने वाला व्यक्ति राष्ट्रपति की कृपा के अधीन ही अपना पद ग्रहण करता है और राज्य सरकार की सेवा का सदस्य या नियुक्त व्यक्ति उस राज्य के राज्यपाल की कृपा के अधीन अपना पद धारण करता है। संघ अथवा राज्य के अधीन कोई असैनिक पद धारण करना राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल की कृपा के अधीन है। इस बात के होते हुए भी यदि कोई व्यक्ति (जो रक्षा सेवा या अखिल भारतीय सेवा संघ अथवा राज्य कीअसैनिक सेवा का सदस्य ना हो), संविधान के अधीन किसी पद पर किसी संविदा के अधीन नियुक्त है और यदि राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल किसी विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति की सेवाएं प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक समझे तो निश्चित अवधि से पूर्व पद समाप्ति पर अथवा इस पद को खाली करने के आदेश पर क्षतिपूर्ति का भुगतान नियुक्त व्यक्ति को किए जाने का प्रावधान उस संविदा में होगा जो संविदा नियमावली समय-समय पर लागू की गई हो।

42वें संशोधन द्वारा यथा संशोधित अनुच्छेद-311 में यह प्रावधान है कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को जो संघ की असैनिक सेवा अथवा अखिल भारतीय सेवा अथवा राज्य की असैनिक सेवा का सदस्य है अथवा संघ या राज्य के अधीन असैनिक पद ग्रहण किए हुए हैं उस प्राधिकारी के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा सेवा से बर्खास्त नहीं किया जाएगा अथवा हटाया नहीं जाएगा। जिस प्राधिकारी द्वारा यह वह नियुक्त किया गया था उपरोक्त कोई भी व्यक्ति ऐसी जांच के बिना, जिसमें उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सूचना दी गई हो और उन आरोपों के बारे में

सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया हो,न तो सेवा से अलग किया जाएगा और न उसे पदावनत किया जाएगा। जब ऐसी जांच के उपरांत उस पर कोई दंड आरोपित करना प्रस्तावित हो तो वह शास्ती जांच के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर ही आरोपित की जाएगी और उस व्यक्ति को प्रस्तावित शास्ती पर बचाव का अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं होगा। यह खंड उन प्रकरणों पर लागू नहीं होगा जिनमें व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदावनत अथवा सेवा मुक्त किया गया हो जिससे उसका अपराधिक आरोप सिद्धहुआ हो। साथ ही यह खंड उन प्रकरणों पर भी लागू नहीं होगा जहां पर पदावनत अथवा सेवा मुक्त करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो की किन्ही कारणों से उपरोक्त जांच करना संभव नहीं है अथवा जहां राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल, जैसा कि प्रकरण हो इस बात से संतुष्ट हों कि राज्य की सुरक्षा के हित में इस प्रकार की जांच करना उचित नहीं होगा। उपरोक्त प्रकार के व्यक्ति के संबंध में यदि यह प्रश्न उठता है कि उपरोक्त जांच करना युक्तियुक्त प्रकार से संभव है तो पदावनति अथवा सेवा मुक्ति के लिए प्राधिकृत अधिकारी का निर्णय अंतिम होगा।

इस तरह देखा जाए तो भारतीय संविधान किसी कार्मिक को जहां आचार नियमावली के अनुपालन के लिए पुरस्कृत स्वरुप बेहतर वातावरण सुविधाओं का निर्माण करता है वहींसंविधान में अनुशासनात्मक कार्यवाही की विस्तृत एवं न्याय संगत प्रक्रिया का प्रावधान भी किया गया है।

## 6.9 कार्मिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संबंधी विभिन्न चरण

जब यह स्पष्ट हो जाता है कि अमुक कार्मिक द्वारा विभागीय आचरण संहिता का उल्लंघन किया गया है तो उसके विरुद्ध विभिन्न कार्मिक चरणों में के माध्यम से अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ की जाती है-

1. सर्वप्रथम जिस कार्मिक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी है उससे इस बाबत स्पष्टीकरण की मांग करना।
2. स्पष्टीकरण नहीं देना या संतोषजनक नहीं होने पर कार्मिक पर आरोप लगाना।
3. यदि ऐसा प्रतीत हो कि कार्मिक सेवा में रहते हुए साक्ष्यों को प्रभावित कर सकता है तो उस कार्मिक को निलंबित करना।
4. कार्मिक के विरुद्ध आरोपों को सुनना और अभियुक्त कार्मिक को अपने बचाव का एक अवसर अवश्य देना।
5. आरोपों की जांच करना और परिणामों के आधार पर प्रतिवेदन तैयार करना।
6. कार्मिक को प्रस्तावित दंड के विरुद्ध बचाव का एक अवसर पुनः प्रदान करना।
7. 'दंड' के आदेश देना अथवा दोषमुक्ति का आदेश देना।
8. अपील की पूर्ण स्वतंत्रता, यदि कोई नियम या प्रावधान है, प्रदान करना।

जहां तक अपील के अधिकार की बात है, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त कर्मचारी को स्वयं राष्ट्रपति द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार नहीं है। अखिल भारतीय सेवा का सदस्य राज्य सरकार के आदेश पर राष्ट्रपति को अपील कर सकता है। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त सदस्य राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध राष्ट्रपति के यहां अपील कर सकता है। निचली श्रेणी की सेवा के सभी कर्मचारी उस आदेश से संबंधित नियम बनाने वाले प्राधिकारी को अपील कर सकते हैं, जिस आदेश पर अपील है।अपील केवल तभी की जा सकती है जब-

- नियमों के अंतर्गत उसकी अनुमति होनी चाहिए।
- उसका रूप-विधान दोषपूर्ण न हो और उचित माध्यम से प्रेषित की गई।
- जिस आदेश के विरुद्ध अपील की गई है उस आदेश के प्रेषण की तिथि से 6 माह के अंदर वह अपील कर प्रेषित की गई हो।

- यह उसी प्राधिकारी को प्रेषित पिछली अपील की पुनरावृत्ति नही होनी चाहिए।
- यह नियमों के अंतर्गत ग्राह्यकर्ता प्राधिकारी को को संबोधित हो।
- सक्षम प्राधिकारी द्वारा अपील रोकने के विरुद्ध कोई अपील स्वीकार्य नहीं है।

इस प्रकार भारत में कोई बाह्य प्राधिकारी अपील के संबंध में किसी भी स्तर पर हस्तक्षेप नहीं करता। निःसंदेह, भारत या राज्य सरकार में असैनिक पद पर सेवारत व्यक्ति को प्रभावित करने वाले सभी अनुशासनिक मामलों में, जैसा कि प्रकरण हो संघ अथवा राज्य लोक सेवा आयोग से परामर्श करने का प्रावधान संविधान में है, परंतु यह परामर्श केवल उन्हीं मामलों तक सीमित है जिनमें अनुशासन संबंधी आदेश राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा दिया जाता है।

उपरोक्त के साथ-साथ यहां यह भी ध्यान रखना है कि अन्याय पूर्ण बर्खास्तगी अथवा सेवा मुक्ति के विरुद्ध न्यायालय में सदैव अपील की जा सकती है परंतु यह अपील तभी की जा सकती है जब कर्मचारी ने सेवा नियमों के अंतर्गत उपलब्ध सभी उपचारों का प्रयास कर लिया हो।

अंत में यह कहा जा सकता है कि कर्मचारी को निम्नांकित प्रकरणों में अपील करने के अधिकार से वंचित किया जा सकता है-

- जहां व्यक्ति को ऐसे आचरण के आधार पर पदावनत या सेवा मुक्त किया गया हो जिसके फलस्वरुप आपराधिक आरोप जैसे गबन आदि पर सजा मिली हो।
- जहां कर्मचारी को पदावनत अथवा सेवा मुक्त करने हेतु अधिकृत अधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि किसी कारण से, संबंधित व्यक्ति को यथोचित प्रकार के कारण बताने का अवसर देना व्यवहारिक नहीं है।
- जहां राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल प्रकरण के अनुसार इस बात से संतुष्ट है कि संबंधित कर्मचारी को ऐसा अवसर देना राज्य की सुरक्षा के हित में नहीं है।

## 6.10 अनुशासनात्मक कार्यवाही की समस्याएं एवं समाधान

किसी कार्मिक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्राय यह देखा जाता है कि कार्यवाही निष्पक्ष, उचित, समय एवं पदसोपानीय क्रम में न होने के कारण निम्न समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं-

1. अनुशासनात्मक प्रक्रिया में सम्मिलित प्राधिकारी मंडल स्वयं प्रक्रिया के ज्ञान अभाव का शिकार हैं ऐसे में न तो वे कार्मिक के साथ न्याय कर पाते हैं और न ही व्यवस्था के प्रति।
2. सामान्यतया, अनुशासनात्मक कार्यवाही में बहुत लंबा समय लग जाता है यह कार्मिकों को कष्ट पहुंचाने वाला होता है।
3. अधिकांशतः यह प्रवृत्ति पाई जाती हैं कि अपीलीय अधिकारी अपने अधीनस्थों के निर्णयों के अनुकूल व्यवहार करते हैं यह पक्षता न्याय व्यवहार को समाप्त कर देती है। अपील का उद्देश्य ही इस से नष्ट हो जाता है।
4. अधिकतर उच्च अधिकारी (मैं ही राज्य हूँ) के सिद्धांत पर कार्य करते हैं और अपने निर्णयों के विरुद्ध कोई अपील स्वीकार नहीं करते, जो अपीलों को रोकने की प्रवृत्ति का प्रतीक है।
5. नियमों की बहुलता कई बार उचित समझ को नष्ट कर सकती है। अत्यधिक नियम बाहुल्यता भी नियमों के अनुपालन से विमुख कर देगा इसलिए पर्याप्त एक ठोस नियम हो जिस की व्याख्या सरलता से हो सके।

6. अनुशासनात्मक कार्यवाही में प्रायः यह तथ्य स्पष्ट नजर आता है कि एक तो कार्मिक वर्ग असहनशीलता की स्थिति की ओर अग्रसर हो रहा है, और साथ ही उच्च अधिकारी वर्ग शीघ्रता से आपा खो बैठता है जिससे कार्मिकों पर अनुशासन संबंधी कार्यवाही प्रयोजन को प्राप्त नहीं कर पाती।
7. अनेक वादों (क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, भाषावाद, भ्रष्टाचार आदि) के चलते अनुशासनात्मक कार्यवाही असंगत नजर आती है जहां समानता का नितांत अभाव है। जब तक उक्त वादों से मुक्ति नहीं होगी तब तक आचार संहिता व उससे संबंधित कार्यवाही प्रासंगिक नहीं होगी।
8. प्रशासनिक व्यवस्था में आचरण एवं अनुशासन संबंधी मूल्य की स्थापना के लिए केवल दंड ही कारगर उपाय नहीं होगा बल्कि अनुशासनहीनता की पुनरावृत्ति ना हो इसे रोकने के सुझाव प्रस्तुत करने चाहिए।
9. सरकार द्वारा कार्मिकों को त्वरित न्याय प्रदान करने के लिए गठित प्रशासनिक न्यायाधिकरण को उचित स्टाफ के साथ सशक्त बनाना चाहिए।

आचरण एवं अनुशासन का निर्णायक प्रयोग स्वानुशासन बढाने के लिए होना चाहिए और दंड तभी लागू की जानी चाहिए, जब निरोधक उपाय अंसफल हो गए हों। पाल पिंगर्स एवं चार्ल्स ए. मियर्स का कहना था कि सच्चा अनुशासन-

- पारस्परिक समझ तथा संगठन से केंद्रित दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने के प्रयास से प्रारंभ होती है।
- न्यायपूर्ण होती है।
- स्पष्ट रूप से मानवीय संबंधों (उचित प्रक्रिया और अपील के अधिकार सहित) के निर्दोश सिद्धांतों के अनुकूल होती हैं।
- सभी को भली भांति ज्ञात और स्पष्ट अनुशासन नीति विवरण के अनुरूप होती है।
- अनुशासन के अधीन व्यक्तियों के प्रतिनिधियों के परामर्श से धारणाओं को क्रियान्वित करती है।
- प्रत्येक ऐसी परिस्थिति में, किन्ही भी लघुकारी लक्षणों का ध्यान रखती है जहां अनुशासन आवश्यक प्रतीत होता है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. भारत में अखिल भारतीय सेवा कानून कब बनाया गया?
2. अखिल भारतीय सेवा आचरण नियमावली कब बनाई गयी?
3. भारतीय संविधान की किस धारा में सरकारी कर्मचारियों पर औपचारिक और अनौपचारिक अनुशासनिक कार्यवाही का प्रावधान है?
4. किन अधिनियमों के तहत् भारत में ब्रिटिश शासन काल में सरकारी कर्मचारियों पर अनुशासनिक कार्यवाही की जाती थी?

## 6.11 सारांश

आचरण एवं अनुशासन किसी सभ्य नागरिक समाज की बुनियादी जरूरतों में से एक है। जहां आचरण आत्मिकता के निकट है वहीं अनुशासन बाहरी व्यवहार के नियम है, दोनों मिलकर एक बेहतर मनोसामाजिक व्यवहार का निर्माण करते हैं। जो समाज और राज्य के साथ जीवन के संपूर्ण पक्षों को संतुलित एवं समायोजित करता है। जहां तक उक्त विचारों का मूल्यांकन भारतीय संदर्भ में करते हैं तो स्पष्ट होता है कि भारत में सरकारी कर्मचारियों के लिए आचरण नियम इतने कठोर नहीं हैं जितने वे दिखाई पड़ते हैं क्योंकि बारंबार और बहुत सी भूल-चूक होने से

उनके प्रभावी होने में शिथिलता है। इसी प्रकार अनुशासन नियमों का विरले ही प्रयोग किया जाता है तब भी कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सन्देह की छाया से परे सिद्ध करने का दायित्व अनुशासनिक कार्यवाही प्रस्तावित करने वाले अधिकारी पर होता है। इस प्रयोजन के लिए दीर्घकालिक विभागीय जांच होगी ही। इसके अलावा कर्मचारियों को व्यवहारिक कार्यवाही रोकने अथवा उससे बचने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं। भारतीय प्रशासन के किसी अंश में इसी कारण से क्षमता और भ्रष्टाचार की प्रत्यक्ष बुराइयां हैं। पर कुछ भी हो नियमों से सरकारी कर्मचारी अच्छे नहीं बन जाते,बल्कि उनकी अपनी अंतरात्मा द्वारा आरोपित आचरण के मानदंड, सेवा की सहयोगी भावना और परंपराएं अपने सहयोगियों तथा अधिकार प्राप्त अधिकारियों के उदाहरण तथा जनमत की चौकसी उन्हें अच्छा बनाते हैं। निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि बिना प्रशासनिक निष्ठा के राज्य के लक्ष्य जीवन की प्राप्ति को सरकार नहीं किया जा सकता इसके लिए नागरिक समाज में आचरण एवं अनुशासन संबंधी प्रावधानों एवं परंपराओं के जीवन मूल्यों का समावेशन करना अनिवार्य है। यह सब कार्मिकों के मनोबल को न केवल बढ़ाएगा वरन उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को पूर्ण कर एक बेहतरीन कार्मिक प्रशासन की बुनियाद को मजबूती प्रदान करेगा।

## 6.12 शब्दावली

आचरण- स्वयं के व्यवहार की पद्धति, अनुशासन- एक मानसिक एवं नैतिक प्रशिक्षण, समावेशन- बहुआयामी पक्षों का सम्मिलित स्वरूप, प्रयोजन- उद्देश्य या लक्ष्य का निर्धारण, उपचार- समस्या का समाधान ढूंढना, गबन- चालाकी से धन को अपने हित में परिवर्तित करना, दिवालियापन- ऋण चुकाने की अक्षमता का समाप्त हो जाना

## 6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** 1951 में, **2.** 1954 में, **3.** धारा-311 में, **4.** भारत सरकार अधिनियम 1919 और 1935

## 6.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. डॉ. महादेव प्रसाद शर्मा एवं डॉ. बी एल सडाना,'लोक प्रशासनः सिद्धांत एवं व्यवहार' किताब महल इलाहाबाद, 2004
2. डॉ. बी.एल. फाडिया, 'लोक प्रशासन', साहित्य भवन आगरा, 1996
3. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, 'लोक प्रशासन', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर/नई दिल्ली, 2011
4. दीपक कुमार, 'सामान्य अध्ययन, पेपर (प्ट), नीति शास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिक्षमता', कापी राइट जी.एस. वर्ल्ड, मुखर्जी नगर, दिल्ली।
5. सुषमा यादव एवं बलवान गौतम, 'लोक प्रशासन', सिद्धान्त एवं व्यवहार, ओरियन्ट ब्लैक स्वान प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2015


## 6.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. डॉ. बी.एल. फाडिया, 'लोक प्रशासन', साहित्य भवन आगरा, 1996
2. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया, 'लोक प्रशासन', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर/नई दिल्ली, 2011
3. दीपक कुमार, 'सामान्य अध्ययन, पेपर (प्ट), नीति शास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिक्षमता', कापी राइट जी.एस. वर्ल्ड, मुखर्जी नगर, दिल्ली।

## 6.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्मिक प्रशासन में 'आचरण एवं अनुशासन' के महत्व को स्पष्ट करते हुए एक आदर्श आचार संहिता का निर्माण कीजिए।
2. अनुशासनात्मक कार्यवाही का अर्थ स्पष्ट करते हुए कार्यवाही के निर्धारित चरणों को विस्तार से समझाइए।
3. अंग्रेजी शासन और भारतीय शासन में होने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।
4. भारतीय संविधान में अनुशासनात्मक मामलों से संबंधित विभिन्न प्रावधानों की विवेचना कीजिए।
5. आचार संहिता को लागू करने में किन किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है और उनके कौन-कौन से व्यवहारिक समाधान हो सकते हैं? बताइए।

# इकाई- 7 प्रशासनिक नैतिकता एवं कार्मिक प्रशासन में भ्रष्टाचार

**इकाई की संरचना**

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले तत्व
7.3 प्रशासनिक सुचिता के प्रयास
7.4 प्रशासनिक निष्ठा: अर्थ
7.5 प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार
7.6 प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठा ह्रास के कारण
7.7 प्रशासनिक भ्रष्टाचार रोकने हेतु वैधानिक प्रावधान
7.8 प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठा सुदृढ़ करने हेतु सुझाव
7.9 सारांश
7.10 शब्दावली
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

## 7.0 प्रस्तावना

नैतिकता व्यक्ति के आदर्श आचरण और सामाजिक व्यवहार की विवेचना करता है। किसी भी मानव समाज में मनुष्यों का आचरण वैसा नहीं होता जैसा होना चाहिए। जो पाया जाता है वह मनुष्यों के सामूहिक व्यवहार की वास्तविकता है और उनसे जो अपेक्षा की जाती है वह एक ऐसा आचरण है जो अनुशासन चाहता है। दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा आप दूसरों से अपने प्रति अपेक्षा रखते हों, यह कथन मनुष्य के आदर्श रूप को वयक्त करता है। अरस्तू ने जब मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा था तो वह कहना चाहता था की सामाजिकता को बनाए रखने या सबके लिए उपयोगी बनाने के लिए इस बुद्धिमान प्राणी को एक नैतिक प्राणी बनना पड़ेगा। यूनानी दर्शन की दुनिया में एक व्यक्ति, राज्य और समाज तीनों नैतिक इकाइयां थी और नैतिकता का अर्थ यह था की वह बिना कानूनों के अपने अंतःकरण के आदेशों के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करे। प्लेटो और अरस्तू की यह गुणात्मक नैतिकता ज्ञान को गुण मानती है। ज्ञान ही गुण है और जिस व्यक्ति में यह ज्ञान नहीं वह निबुद्धी व्यक्ति पशुवत जीवन भले ही जी ले पर वह शासक नहीं बन सकता। दूसरे शब्दों में नैतिकता का बुद्धिमत्ता पूर्ण आचरण शासन जीवन की एक पूर्व स्थिति है। मनुष्य का पशु जैसा आचरण स्वाभाविक तो है पर वह कम से कम पाश्विक होना चाहिए जिससे समाज में एक अच्छा जीवन संभव हो सके। अरस्तू लिखता है ''मनुष्य का जंगलीपन कम करने के लिए राज्य बना है, पर वह चल इसलिए रहा है की वह मनुष्य को सदाचारी बना सके।'' यह सदाचार ही जीवन है और इसके अभाव में राज्य और सरकार दोनों ही निरर्थक और उद्देश्यहीन हो जाते हैं।

लोकतंत्र में शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए नैतिकता और निष्ठा की मूल आवश्यकता है। इसके आभाव में शासन व्यवस्था लड़खड़ा जाएगी। सरकारी सेवा में निष्पक्षता, ईमानदारी, नैतिकता और निष्ठा सुनिश्चित करने हेतु बनाए गए नियम, अधिनियम और विनियमों के होते हुए भी प्रशासनिक दायरा शेष रह जाता है कि इसमें औपचारिक कानूनों, प्रक्रियाओं और पद्यतियों से नियंत्रण नहीं किया जा सकता। मैक कैनी के शब्दों में, ''ऐसे

सभी क्षेत्रों में उन्हें स्वयं अपनी अंतरात्मा, अपनी प्रतिष्ठा तथा स्वाभिमान की भावना, अपने साथियों के अभिमत और इन सबसे ऊपर अपनी निष्ठा, पूर्व कल्याण परिभाषित करने और उसे पूरा करने के अपने ईमानदार प्रयासों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।" सरकारी कर्मचारी वर्ग को सेवा के आदर्शों के अभिभूत होना चाहिए। गार्नर ने सही कहा था कि 'कोई भी समाज तक तब अपनी महानता की ऊंचाइयों तक नहीं पहुंच सकता जब तक कि उसकी सर्जनशीलता और बुद्धि के विवेचित क्षत्रों में निष्ठावान पुरुष और महिलाएं प्रचुरता से उपलब्ध न हो।'

सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है की किसी प्रशासकीय संगठन के कुशल संचालन में जिन महत्वपूर्ण उपकरणों और घटकों की आवश्यकता होती है सरकारी कर्मचारी उसमे सबसे महत्व पूर्ण और आवश्यक साधन माना जाता है। यह सर्वविदित है की किसी भी राष्ट्र का विकास और नागरिकों का कल्याण सरकार की कुशलता पर निर्भर है और यह कुशलता उसके सरकारी कर्मचारी वर्ग पर निर्भर करती है। इसलिये इनमें अपने दायित्वों के प्रति कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, नैतिकता, आदि गुणों का समावेश होना अनिवार्य है।

## 7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कर सकेंगे।
- प्रशासनिक सुचिता के प्रयास को जान सकेंगे।
- सरकारी सेवाओं में निष्ठापतन के कारणों की विवेचना कर सकेंगे।
- प्रशासनिक भ्रष्टाचार रोकने के वैधानिक प्रावधानों का वर्णन कर सकेंगे तथा
- प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठा सुदृढ़ करने हेतु सुझाव दे सकेंगे।

## 7.2 प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले तत्व

प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों का विवरण निम्नलिखित है-

1. **विश्वास और कार्यों के प्रति सेवा भाव-** कोई भी संगठन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसका राजनीतिक और प्रशासनिक नेतृत्व सशक्त न हो कहने का अभिप्राय यह है की प्रशासन में नेतृत्व करने वाला व्यक्ति अर्थात लोकसेवकों पर जनता के प्रति विश्वास और अपने कार्यो के प्रति सेवाभाव होना अति आवश्यक है। शासन का व्यापक आकार और समाज के जीवन पर उसका बढ़ता प्रभाव, इनके कारण सरकारी कर्मचारी (लोकसेवकों) के नैतिक स्तर का अधिक ऊंचा होना आवश्यक हो गया है क्योंकि यें निति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। इस संदर्भ में सीनेटर पाल डगलस का कथन प्रसंगिक हो जाता है, ''यह शुभ है की सरकार में बड़ी संस्था में ऐसे पुरुष और महिलाएं हैं जो लोकसेवा में समर्पित जीवन बिताते हैं वे उस वेतन से कम पर कठिन परिश्रम करते हैं। जो वें निजी उद्योग में प्राप्त कर सकते थे। वे कभी भी लोकहित के प्रति विश्वासघात नहीं करते प्रत्युत बड़ी कठिनाई से इसकी रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण प्रशंसा पाए बिना ही वे ये सब करते हैं। वें सामान्यतः जनता द्वारा कम ही जाने जाते हैं या वस्तुतः उपेक्षित रहते हैं। कभी कभी वें अनुचित लाभ प्राप्त करने के इच्छुक या निराधार पूर्वाग्रहों से प्रभावित स्वार्थों के प्रति कटु आक्रमण के शिकार होते हैं। यें स्त्री और पुरुष वास्तव में कीर्ति-विहीन नायक हैं और प्राप्त मान्यता से अधिक के पात्र हैं।''

   प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को अपने कार्यों के प्रति समर्पण की भावना होनी चाहिए। लोकसेवक जो भी नीतियों का निर्माण करते हैं उसका प्रत्यक्ष प्रभाव जनता पर पड़ता है। इसलिए नीतियां लोकहित में होनी

चाहिए। जब तक लोकसेवक सेवाभाव से कार्य नहीं करेंगे तब तक राज्य का विकास संभव नहीं हो सकता।

जैसा की जवाहरलाल नेहरू ने कहा है, ''कोई भी शासन कर्तव्य भाव के बिना, जिहाद भावना के कुछ कार्यों के बिना वस्तुतः प्रथम श्रेणी का कार्य नहीं कर सकता। मैं यह कह रहा हूं, मुझे यह एक बड़े उद्देश्य के महान आंदोलन के एक अंश के रूप में प्राप्त करना है। यह न तो व्यक्तिगत भाव, न मजदूरी के रूप में वेतन पर, कार्यालय में काम करने की संकुचित भावना, ही अपने जीवन के दृष्टिकोण या अन्य कुछ से सम्बंधित कोई चीज, न ही शायद उस विशिष्ट कार्य में अपनी व्यक्तिगत पदोन्नति हेतु हित बद्धता का भाव, जैसे की लोगों में अनिवार्य रूप से होते हैं, प्रत्युत कर्तव्य का भाव प्रदान करता है।''

2. **राजनीति में नैतिकता का मिश्रण-** राजनीति में नैतिकता का मिश्रण से हमारा अभिप्रायः यह है की राजनीतिक अभिजात्य वर्ग ईमानदारी के मार्ग पर चल सके और अपनी न्यायप्रियता और निष्पक्षता के बारे में अधीनस्थों के हृदय में विश्वास बैठा सके।

   समकालीन परिदृश्य में लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण समस्याओं में से राजनीतिक भ्रष्टाचार और हस्तक्षेप है। इस कारण राजनीतिक और प्रशासनिक नेतृत्व के मध्य विश्व सनीयता की खाई चौड़ी होती जा रही है। इस समस्या को लेकर विभिन्न आयोग, समितियां और दैनिक समाचार पत्र में विचार मंथन किया जाता रहा है। आवश्यकता इस बात की है की राजनीतिक अभिजात्य वर्ग को नैतिक तरीके के अनुसार काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए जिससे की वे अच्छा और स्वच्छ जीवन बिताने का जनता को दिया गया वचन पूरा कर सकें। कहे और लिखे शब्दों का कोई महत्व नहीं है जब तक की उनके अनुसार कार्य न किया जाए कागजी आयोजनों की अपेक्षा कार्य को व्यवहार में किए जाने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। संक्षेप में किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र का भविष्य इसके राजनीतिक और प्रशासनिक अभिजात्य वर्ग की मनोवृत्ति पर निर्भर करता है।

3. **निष्पक्षता-** लोकतंत्र में नीतियाँ बदलती रहती है, पर उनमें एक निरंतरता भी रहती है, जो प्रशासक (लोकसेवक) की निष्पक्षता को आवश्यक ही नहीं उपयोगी भी बनाती है। एक लोकतान्त्रिक समाज अपने सरकारी सेवकों से यह उम्मीद करता है कि वे सरकार को बिना किसी राजनीतिक पूर्वाग्रह के उचित सलाह दें।

   राजनीति निष्पक्षता पर बल देने का कारण यह है कि -

   - इसमें आम नागरिकों में लोकसेवकों के प्रति विश्वास पैदा होता है और उन्हें यह लगता है की प्रशासकों के कार्य राजनीतिक प्रभाव से मुक्त हैं।
   - मंत्रियों के निर्णय और आदेश निष्ठापूर्वक लागू हो सकेंगे और लोक सेवकों द्वारा अपने कार्य निष्पादन में उनके व्यक्तिगत राजनीतिक रूझान या सिद्धांत आड़े नहीं आएंगे।
   - इससे लोकसेवकों के कार्य का मूल्यांकन तथा उनकी पदोन्नति आदि को किसी राजनीतिक हित से प्रभावित होने की संभावना न्यूनतम हो सकती है।

   प्रशासकों द्वारा इस प्रकार के प्रयास किए जाने चाहिए कि उनके अधिकारिक निर्णय निर्माण में सार्वजानिक हित को प्राथमिकता मिलें। वस्तुतः सभी प्रशासकों को सार्वजानिक हित और जनता की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। उनसे इस बात की भी उम्मीद की जाती है कि वे उस परिस्थिति में हस्तक्षेप करें जहां उन्हें लगे की सार्वजानिक हित की अनदेखी की जा रही है।

लोकसेवकों का यह कर्तव्य है कि किसी भी राजनीतिक गतिविधि में भाग लेने से बचें अर्थात कर्मचारी, संसद, विधानमंडल या स्थानीय संस्थाओं के चुनाव में भी भाग नहीं लें। इसके अलावा वें किसी भी राजनीतिक दल के प्रचार अभियान में भी हिस्सा न लें।

लोकसेवक प्रेस या रेडियो से कोई संपर्क न रखें वें किसी प्रकार भी अधिकृत सूचनाएं ना दें और सरकार के किसी गोपनीय पहलू को प्रकट ना करें।

लोकसेवक का यह कर्तव्य है कि वे ऐसी कोई सूचना, रिपोर्ट या दस्तावेज को सार्वजानिक नहीं करें जिससे समकालीन केन्द्र या राज्य सरकार की किसी भी समसामयिक नीति की आलोचना हो या फिर उसका गलत तरीके से विरोध हो।

सरल शब्दों में यह माना जा सकता है की न्याय और प्रशासन की दुनिया में निष्पक्षता एक ऐसा गुण है, जो निर्णयकर्ता के साहस और निडरता का प्रतीक कहलाता है।

4. **चरित्र निर्माण की आवश्यकता-** किसी भी सरकार की सफलता उसके नागरिकों के प्रभावी सहयोग पर निर्भर करती है। राष्ट्र और सरकार की प्रगति के लिए नागरिकों में चेतना का प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। यह तभी संभव है जब हमारी शिक्षा पद्धति और जन माध्यम लोगों में चरित्र निर्माण हेतु पुर्नस्थापित किए जाए।

शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा और क्रियात्मक साक्षरता के माध्यम से नागरिकों में जागरूकता, देशभक्ति और अनुशासन अनुप्राणित करने की आवश्यकता है। तब सभी समाजों के सदस्य सरकारी सेवाओं के कार्मिकों के साथ सहयोग करेंगे और सरकारी सेवाओं के कार्मिक जनसमुदाय बहुमुखी विकास के लिए कठिन परिश्रम करेंगे भूतपूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीवा रेड्डी ने 11जनवरी 1989 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के रजत जयंती समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा था कि, ''भारत को ऐसी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है जो बच्चो को एक-एक पंखुड़ी खोलती हुई कली के रूप में देखें और उसे सत्यम शिवम सुंदरम के आदर्शों को प्रकाश दे। केवल ऐसे नागरिक जिस किसी भी क्षेत्र में कार्यरत होंगे देश की समृद्धि में योगदान देने में समर्थ होंगे।''

कहने का अभिप्राय यह है की शिक्षा, लोकतंत्र के आदर्शों को प्राप्त करने में, उच्च सामाजिक स्थितियों या पदों को प्राप्त कराने और उत्तम आदतों एवं स्थाई भावों के निर्माण में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति को उसकी योग्यता, क्षमता तथा प्रकृती के अनुसार सामाजिक पद प्राप्त करने के योग्य बनाती है जिससे उनका चरित्र निर्माण हो सके।

5. **राजनीतिक तटस्थता-** राजनीतिक तटस्थता का अभिप्राय है कि सरकारी अधिकारी न केवल राजनीतिक गतिविधियों में पूरी तरह अलग रहेंगे वरन अधिकारी तंत्र सरकार की इच्छा का चाहे सरकार का राजनीतिक स्वरूप कुछ भी पूरी ईमानदारी और निष्ठां से पालन करेंगे। राजनीतिक तटस्थता में निम्नलिखित आधारभूत गुण होने चाहिए जो प्रशासनिक व्यवहारों से जोड़ती है-

- समानता और विविधता के प्रति एक ऐसी प्रतिबद्धता जो उचित, समतावादी और ईमानदार हों।
- राजनीतिक विचारों की तटस्थता और अपनी मान्यताओं के विरुद्ध भी सभी प्रकार की सरकारों के आदेशों का निष्ठा से अनुपालन करना।
- मंत्रियों या राजनीतिक प्रतिनिधियों को यह महसूस करवाना की राजनीतिक सरकार की परिवर्तन से उनकी ईमानदारी की प्रति निष्ठा में कोई परिवर्तन नहीं आया है।
- अपनी राजनीतिक सोच और गतिविधियों पर आत्म अंकुश लगाना।

राजनीतिक तटस्थता के मायने यह भी है कि सिविल सेवक (नौकरशाह) की निणयों और कार्य सत्ताधारी सरकार की नीतियों और उसके मानकों को भी परिलक्षित करें राजनीतिक निष्पक्षता पर बल देने का कारण यह है कि-

- इससे आम नागरिकों में सिविल सेवकों के प्रति विश्वास पैदा होता है और उन्हें यह लगता है की प्रशासकों की कार्य राजनीतिक प्रभाव से मुक्त हैं।
- मंत्रियों की निर्णय और आदेश निष्ठापूर्वक कार्यान्वित हो सकेंगे और सिविल सेवकों द्वारा अपने कार्य निष्पाठन में उनके व्यक्तिगत राजनीतिक रूझान या सिद्धांत आड़े नहीं आएंगे।
- इससे सिविल सेवकों के कार्यों का मूल्यांकन और उनकी पदोन्नति आदि की किसी राजनीतिक हित से प्रभावित होने की संभावना न्यूनतम हो सकती है।

भारत की सन्दर्भ में आचरण का संकट बहुत गंभीर है, क्योंकि तटस्थ लगने के लिए सिविल सेवक की दृष्टि गैर-दलीय होनी ही नहीं चाहिए बल्कि दिखना भी चाहिए। भारत में स्वामीभक्ति एक सामती दुर्गुण है, जिसे समाज में गुण माना जाता रहा है। यह स्वामीभक्ति स्वार्थो की कारण व्यक्ति पूजा तक पहुँच जाती है और सिविल सेवक भी समय से साथ दास जैसे बन जाते हैं। यह अंधभक्ति इन सेवकों को कुछ समय के लिए सुरक्षित और सशक्त बनाती है। यदि सिविल सेवक ईमानदार भी हों तो भी समाज उन्हें आसानी से ऐसा नहीं मानता। एन. राजगोपालन ने लिखा है कि 'कोई भी सरकारी कर्मचारी कल्याण और प्रगतिरोध के बीच, सेवा और भाव शून्यता के बीच तथा क्रियाशीलता और निष्क्रियता के बीच तटस्थ नहीं रह सकता है। राज्य के लक्ष्यों और उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता अनिवार्य है, तटस्थता को उदासीनता या राजनीतिक निष्फलता में विकृत नहीं किया जा सकता और इसे राजनीतिक संवेदनहीनता से ग्रस्त नहीं होना चाहिए।"

6. **जवाबदेही-** जवाबदेही का अर्थ है की प्रशासन को जो सत्ता सौंपी गई है उसके उपयोग के लिए जिम्मेदार होना। प्रशासनिक जवाबदेही एक संगठनात्मक आवश्यकता है क्योंकि सर्वप्रथम यह लक्ष्यों के सन्दर्भ में इसके निष्पादन के मूल्यांकन का प्रयास करती है। लक्ष्य को निश्चित कार्यों और दायित्वों में विभाजित किया जाता है और प्रशासकों से व्यक्तिगत रूप से पूछा जाता है की वे बतायें कि किस प्रकार अपने दायित्वों को पूरा कर रहे हैं। जवाबदेही प्रशासनिक दायित्व की सहगामी है दूसरे शब्दों में सिक्के का दूसरा पहलू है। यह किसी भी संगठन के अंतर्गत पदसोपान, नियंत्रण क्षेत्र, आदेश की एकता, निरीक्षण आदि सभी धारणाएं जवाबदेही को प्रोत्साहित करने और लागू करने का यंत्र हैं।

   संभवतः किसी अधिकारी के अनुचित आचरण को रोकने का सबसे बड़ा तरीका यह है कि उसे प्रत्यक्षतः अपने वरिष्ठ अधिकारी के प्रति और अप्रत्यक्षतः मंत्री के द्वारा संसद के प्रति अपने आचरण के औचित्य के लिए उत्तरदायी होना चाहिए। फाइनर के अनुसार, ''जवाबदेही को लागू करने का सर्वोत्तम तरीका ऐसे संस्थानों का विकास करना है जो लोग नौकर शाही के कार्यों की सक्रिय ढंग से निगरानी करें और ऐसे अधिकारियों को दंड दें जो कुशासन के अपराधी हों। अपनी एजेंसी से बाहर के लोगों के बल और निगरानी के कारण प्रशासक उचित व्यवहार करते हैं। उनकी धारणा है कि जो लोग सरकार के भीतर काम करते हैं वे उनसे भिन्न नहीं जो शेष समाज में रहते हैं। लाभ की इच्छा जैसे नियंत्रणों के आभाव में नीति निर्माताओं के लिए आवश्यक है की औपचारिक नियमावली के माध्यम से लोग प्रशासकों के निष्पादन की निगरानी करें।''

   विधानमंडल के प्रति कार्यकारणी का उत्तरदायित्व, विधानमंडल की निगरानी, न्यायिक पुनर्निरीक्षण, लेखा परिक्षण, मंत्रालय में वित्तीय परामर्श व्यवस्था आदि वाह्य औपचारिक नियंत्रणों के उदहारण हैं।

7. **उत्तरदायित्व-** शक्ति का दुरूपयोग न हो, यह अनिवार्य है कि इसके साथ उत्तरदायित्व जुड़ा हुआ होना चाहिए। प्रशासनिक अभिकरणों और अधिकारियों को जो शक्तियां सौंपी गई हैं उनके उचित प्रयोग के

लिए उन्हें उपयुक्त सत्ताधारियों के प्रति उत्तरदायी बनाना अनिवार्य है। प्रशासन में उत्तरदायित्व की व्यवस्था संवैधानिक धाराओं, संसद द्वारा पारित कानून, नियमों, न्यायिक निर्णय तथा पूर्व निर्णयों, परम्पराओं तथा रूढियों के आधार पर स्थापित की जा सकती है।

प्रायः उत्तरदायित्व और जवाबदेही शब्द का प्रयोग एक-दूसरे के लिए किया जाता है। जवाबदेही, उत्तरदायित्व की वैधानिक तथा पदानुक्रम स्थिति को कहते हैं जबकि उत्तरदायित्व का अभिप्राय यह है की लोक अधिकारी उचित प्रशासन और नीति के प्रत्यक्ष और परोक्ष मूल्यों का आदर करेंगे। उत्तरदायी लोक अधिकारी विधि को जानते हैं और उनको अपने कार्यक्रमों के उचित प्रशासन में विश्वास होता है। जिस राजनीतिक संसार में वे कार्य करते हैं उसकी मांगो, कोलाहल तथा खलबली में यह मूल्य प्रतिरोधक सिद्ध होते हैं। लोक अधिकारियों के व्यवहार तथा भूमिका की यह धारणा लोक नौकरशाही के सम्बन्ध में प्राचीन विचारों के सामान है। जिसमे यह समझा जाता था कि वे विधि के उचित प्रशासन के लिए कार्य करते हैं।

8. **वस्तुनिष्ठता-** वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य यह है की मानव समाज को सामूहिक हित में संचालित करने के लिए एक शासक प्रशासक को कर्मवाची या वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक है। प्रशासन में आदर्श और यथार्थ की स्थितियों के कारण परिणाम पैदा होते हैं और इन दोनों को ही तथ्यों के आधार पर जोड़ते रहना एक वस्तुनिष्ठता है।

   प्रशासन में वस्तुनिष्ठता दो कारणों से आवश्यक है ।

   - एक तो सभी कानून और नियम हर कदम पर व्याख्या चाहते हैं इन्हें अधिकारी के मुक्त विवेक या आत्मपरकता के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। वस्तुनिष्ठता इन व्याख्याओं में एकरूपता लाती है।
   - प्रशासन में एक बहुत बड़ा विवेकाधिकार क्षेत्र होता है जहाँ कभी-कभी तो कानून होते ही नहीं है या वे मौन भी हो सकते है। तथ्य, प्रमाण और वास्तविकताएं जो चरों और बिखरी रहती हैं उनको कानून के ढांचे में पिरोना एक कठोर प्रकार की वस्तुनिष्ठता चाहती है जो सिविल सेवक अति आशावादी होते हैं। वे वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने में कठिनाई महसूस करते हैं क्योंकि जनहित में दी जाने वाली सेवाएं कठोर तथ्यों और मूल्यों के बीच एक संघर्षपूर्ण स्थिति से निपटना है तटस्थता प्रशासन की सहायता करती है। और वस्तुनिष्ठता प्रशासन की शक्ति बनकर उसके निर्णयों को योग्यता से जोड़ने की क्षमता प्रदान करती है।

9. **नागरिकों और कार्मिकों के बीच सम्बन्ध-** किसी भी राष्ट्र की सफलता नागरिकों और कार्मिकों के बीच मधुर सम्बन्ध पर निर्भर करती है। सरकारी अधिकारियों द्वारा निर्मित योजनाओं में समाज की भागीदारी आवश्यक है। इसके अभाव में प्रशासनिक विकास संभव नहीं हो सकता जन संपर्क आपसी समझ का वातावरण विकसित करता है। इसका अर्थ संगठन का कार्यक्रम जनता को समझाने तथा जनता का कार्य संगठन के समझने से है। जन संपर्क का उद्देश्य जानकारी देना मात्र नहीं है वरन नागरिकों और सरकारी अधिकारीयों के सहयोग और आपसी समझ को प्रोत्साहित करना है। व्यक्ति को भी इस बात का एहसास दिलाया जाना चाहिए की वह भी प्रशासनिक कार्यक्लाप का हिस्सा है सरकारी कार्मिकों और नागरिकों के बीच आपसी समझ बढ़ाने के लिए जन संपर्क को प्रभावी ढंग से लागू किए जाने की आवश्यकता है जिससे सरकारी सेवाओं के प्रति समाज का अनुकूल अभिमत बने इससे लोगों के मन में सरकारी सेवाओं की क्षमता, न्यायप्रियता, ईमानदारी, निष्पक्षता और सच्चाई के प्रति विश्वास पैदा होगा।

## 7.3 प्रशासनिक सुचिता के प्रयास

नैतिकता को सार्वजानिक जीवन में शुचिता का पर्याय माना जाता है। केवल सरकार के शुद्ध हो जाने से समाज में गंदगी नहीं मिटती और न ही व्यापार जगत के सामाजिक दायित्व को स्वीकार कर लेने मात्र से सरकारी प्रशासक अपनी विकृत भूमिकाएं छोड़ने को त्यार हो सकते हैं।

सुचिता का पहला प्रयास तो स्वयं प्रशासन को ही करना पड़ेगा वरिष्ठ अधिकारी अपने प्रभावी नेतृत्व से निम्नलिखित चार कार्य कर सकते हैं। और यह अभियान शुरू हो चुका है-

- सुशासन के सुधार।
- सूचना के अधिकार के प्रयोग से आत्मनिरीक्षण और आत्मसुधार।
- कार्यालयों की कार्य संस्कृति में परिवर्तन और कार्यजीवन की गुणवत्ता में सुधार, जो सेवा में गुणवत्ता लाने का ही दूसरा नाम है।
- सहभागिता, पारदर्शिता, सशक्तिकरण और सामाजिक अंकेक्षण (लेखा जोखा की जांच) के सुधारों से ऐसे माहौल का निर्माण जिसमे भ्रष्टाचार घट सके।

शासन में सुचिता, दक्षता और प्रभावी शासन, व्यवस्थता सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक तत्व होते हैं। शासन में ईमानदारी के लिए व्यवस्था का भ्रष्टाचार मुक्त किया जाना बेहद जरुरी है। शासन में ईमानदारी कुछ आधारों पर तय की जा सकती है-

- प्रभावी कानून और नियमों का निर्माण।
- नियमों एवं कानूनों को प्रभावी रूप से लागू किया जाना।

प्रशासन में नैतिक मूल्यों की यदि एक सूची बनाई जाये तो उसमें निम्न नैतिक मूल्यों को शामिल किया जा सकता है-

- कानून का ईमानदारी से पालन किया जाए, दूसरे शब्दों में कानून, नियम और संहिताए वे घेरे हैं, जिनमे प्रशासनिक नैतिकता को बांधकर देखा गया और देखा भी जाना चाहिए। ईमानदारी के अनुपालन से यह तथ्य जोड़ा जा रहा है की कानून का आँखे बंद करके अनुपालन मत करो, उसमे अपनी ईमानदारी जोड़ो, जो आपके अंतकरण का अपना एक विषय है।
- सभी कानून व्याख्या चाहते हैं और व्याख्या करने वाले प्रशासक भी एक इन्सान हैं, जो अपनी आत्मा से पूछता है। वह न भी पूछे तो भी उसकी आत्मा बोलती है। अतः प्रशासन की नैतिकता कानून की वह व्याख्या है जो प्रशासक की आत्मा करती रहती है।
- सामाजिक नैतिकता प्रशासनिक सुचिता में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके पीछे धर्म की आस्थाएं, जाति के संस्कार, विज्ञान के प्रभाव, इतिहास की परम्पराएं और सफलता-असफलताएं कार्य करती हैं। इन सभी पहलुओं को व्यक्ति जानता है और कभी कभी जानकर भी नहीं जानना चाहता। भारत में धर्म और जाति के संस्कार का इतना महत्व है कि इनको शब्दों में व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। आज जो रिश्वत, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, अपराध का तांडव हो रहा है, संस्कारों और धर्म के अभाव का कारण ही है। कुछ लोग आरक्षण नीति को भी इसका कारण मान सकते हैं किन्तु किसी भी प्रशासन में प्रशासनिक नैतिक कृत्य एक ऐसा मिश्रित आचरण है, जिसे स्वयं एक नैतिक पुरुष भी नहीं जानता की वह नैतिक क्यों है और कब तक किन परिस्थितियों में वह नैतिक रहेगा फिर भी यदि सरकार अपने कानून और

नीतियों से नैतिकता का वातावरण बनाना चाहती है तो उन्हें तीन स्तरों पर प्रयास करने होंगे- परिवार और बच्चों की शिक्षा से, समाज सुधार के जीवन मूल्यों से तथा प्रशासनिक संस्थाओं के व्यवहार से।

सर्व शिक्षा सरकार की जिम्मेदारी अवश्य है पर यह अभियान परिवार और समाज का सहयोग अधिक चाहता है। इसमें गुणवत्ता लाने में तो लम्बा समय लगता है पर आरम्भ करने के बाद यह अपने आप भी सुधरता जाता है। प्रत्येक पीढ़ी अपने बच्चों को नैतिक संस्कार देना चाहती है और उसके लिए अनुकूल परिस्थितियां बनाना भी प्रशासनिक नैतिकता का सुदृढीकरण कहलाएगा।

समाज सुधार मीड़िया, गैर-सरकारी संगठनों, राजनीतिक दल आदि पर कानूनों की जिम्मेदारी है। भारत के समाज में ये सुधारवादी धाराएं नैतिकता के लिए प्रयास तो करती है, पर विकास की प्रतिद्वंदिता के कारण समाज में प्रदूषण भी फैलाती रहती हैं।

तीसरा क्षेत्र प्रशासनिक संस्थाओं के निर्माण और व्यवहार का है ये नई संस्थाएं भी जन्म तो ले रही हैं पर अभी प्रभावी नहीं बन सकी हैं प्रशासन में ईमानदारी, पारदर्शिता, कर्तव्य परायणता आदि गुणों को मजबूत करने के लिए इन प्रशासनिक संस्थाओं ने चार प्रकार के सकारात्मक आकर ग्रहण कर लिए हैं जो निम्न हैं -

- प्रशासकों की भर्ती, पदोन्नति और प्रशिक्षण के नए प्रयोग।
- उत्तरदायित्व की नैतिकता।
- भ्रष्टाचार विरोधी जनचेतना के तंत्र का विकास।
- कार्य संस्कृति की गुणवत्ता में सुधार।

सरकारी कर्मचारी जनता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं, इसलिए उनको आचार संहिता का नैतिक स्तर इतना ऊंचा रखना पड़ेगा की ये साधारण जनता के लिए आदर्श बन सकें। सरकार का प्रयास यह होना चाहिए की सत्ता का दुरूपयोग न हो। अधिकारी वर्ग द्वारा शक्ति का दुरूपयोग किया जा सकता है। क्योंकि उनको नागरिकों के जीवन और कार्यक्लापों पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्राप्त होती है। अतः आचार संहिता का होना व सख्ती से लागू किया जाना आवश्यक है। राजनीतिक रूप से तटस्थ लोक सेवक में राजनीतिक निरपेक्षता या तटस्थता सरलता से पैदा की जा सकती है। इसको लागू करने के लिए एक स्थाई आचार संहिता के कारण लोकसेवक अपने दायित्वों का निर्वाह कुशलता के साथ करते हैं तथा इसके भय से वे कर्तव्य विमुख नहीं हो पाते नैतिक आचरण की आचार संहिता इसलिए भी आवश्यक है की लोकसेवक खुद के आचरण को उच्च नैतिक स्तर पर रख सकें और कोई भी उस पर झूठे आरोप नहीं लगा सके। प्रशासनिक सुचिता निम्न तथ्यों को आधार मानता है-

- सरकारी नियमों और कानूनों को लोक सेवा की दृष्टि से देखा जाए और उनकी कठोरता, जटिलता और प्रक्रिया में उदारता बरती जाए।
- लोकसेवक शासन बनने की प्रवृत्ती छोड़े और जनसेवक बनने के लिए प्रशासन को पारदर्शी संवेदनशील और उत्तरदायी बनायें।
- सरकार नागरिकों का सशक्तिकरण करे और उनके कल्याण के नाम पर उन्हें कमजोर और पराश्रित न बनने दे।

यह प्रकार प्रशासनिक सुचिता कल्याणकारी राज्य की स्थापना का सन्देश देती है इसे विकेन्द्रीकृत और सहभागी प्रशासन भी कहा जाता है।

प्रशासक सेवाभाव से नागरिकों की सेवा करें यह अवधारणा एक नई पेशेवर नैतिकता का एक हिस्सा माना जा सकता है। सुशासन, नागरिकों के मानव अधिकारों का सम्मान करने वाली सरकारें ही देती हैं और लोकतान्त्रिक

नैतिकता की यह मांग है की अनावश्यक नौकरशाही नियंत्रणों को समाप्त कर समग्र समाज को मानवीय सेवाएं प्रदान की जाएं।

समाज इतने आधुनिक और विज्ञान आधारित होने चाहिए की अनैतिक आचरण की आवश्यकता ही महसूस न हो। पारिवारिक पूंजी को इतना अधिक संचित होने ही नहीं देना चाहिए की निजी जगत नैतिकता को तिलांजलि देकर भ्रष्टाचार में पूरा ही आकण्ठ दब जाए। सरकार का नौकरीशाही तंत्र केवल मजबूत ही नहीं बल्कि इतना व्यवसायिक भी होना चाहिए की उसे खरीदा न जा सके और वह अपने व्यावसायिक नैतिकता पर गर्व भी कर सके।

इन सभी प्रयत्नों में यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि नैतिकता (एथिक्स) का कोई भी वैचारिक मंथन गढ़ और स्थिर नहीं हो सकता। मनुष्य जीवन के दो शाश्वत मूल्य है, एक जीवित रहना और दूसरा अपने जीवन मूल्यों से दूसरों को क्षति पहुंचाए बिना विकास करना। इन दोनों मूल्यों के सम्बन्ध एथिक्स के उन सिद्धान्तों से हैं जो शाश्वत हैं और परिवर्तनशील भी। एक प्रशासक को चाहिए जीवन मूल्यों को समझे और उनमे अपनी साझेदारी निभाए, सामाजिक नैतिकता का सम्मान करे पर उसे बदलते भी रहे। कानून जहाँ रस्ते में बढ़ा बने उसे सुधारे तभी प्रशासन में शुचिता का मार्ग प्रशस्त होगा।

## 7.4 प्रशासनिक निष्ठा: अर्थ

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, ''निष्ठा नैतिक सिद्धांत पर आधारित विशुद्ध आचरण, ईमानदारी, सत्यता और निष्कपटता को दर्शाता है।''

जी. सुब्बाराव और पी. चौधरी के अनुसार, ''निष्ठा स्वामी भक्ति पर आधारित होता है। व्यक्ति को अपने कार्यों के प्रति निष्पक्ष होकर सेवा भाव से कार्य करते रहना चाहिए।''

निष्ठा व्यक्ति के सेवा भाव का विशिष्ठ गुण है जो आचरण को प्रभावित करता है। निष्ठा की महत्वता पर प्रकाश डालते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 तो 1956) में कहा गया कि, ''सार्वजानिक मामले और प्रशासन में निष्ठा अनिवार्य है और इसलिए सार्वजनिक गतिविधि की प्रत्येक शाखा में इस पर बल दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का दोहरा प्रभाव होता है। यह प्रशासनिक ढांचे को दुर्बल बनाता है। और प्रशासन में जनता के विश्वास को नष्ट करता है। अतएव प्रशासन में हर प्रकार के भ्रष्टाचार के विरुद्ध सतत युद्ध होना चाहिए।''

पी.डी. शर्मा ने प्रशासनिक निष्ठा में निम्न बातों का समावेश किया है-

- प्रशासन में सेवा को पवित्रता की दृष्टि से देखना चाहिए।
- सिविल सेवा कोई मजदूरी या रोटी कमाने का तरीका नहीं है यह सेवा से अधिक एक मिशन है। इसके लिए त्याग और बलिदान की भावना आवश्यक है।
- सिविल सेवा में वेतन, सुविधाएँ और सामाजिक स्तर महत्वपूर्ण नहीं होते महत्वपूर्ण तथ्य यह है की व्यक्ति को एक जिम्मेदारी दी जाती है और यदि वह निष्ठा भाव से इस जिम्मेदारी को निभाता है तो उसे कार्य से ऐसा सुख मिलता है, जिसकी कोई कीमत नहीं होती।
- शासन करना एक सेवा है और निष्ठा भाव से इसे स्वीकार किया जाये तो इस शासन सेवा में भारी त्याग और बलिदान करना पड़ता है। वे ही लोग शासन में रहकर सेवा कर सकते हैं जो जनसधारण से अधिक नैतिक हैं और शक्तिशाली होते हुए भी शक्ति सम्पन्न नहीं लगते।
- निष्ठा भाव के आते ही कार्य कर्तव्य बन जाता है और जो निष्ठा भाव से कार्य करते उनके लिए काम ही पूजा बन जाता है।

- निष्ठावान प्रशासन अपने व्यक्तित्व को गलाकर जनहित से जुड़ता है यदि इस वृत्ति के लोगों को भर्ती कर पदोन्नति दी जाए तो प्रशासनिक सेवाओं में एक ऐसी ऊर्जा का संचार हो सकता है कि अनुशासन की आवश्यकता ही गौण बन सकती है।

निष्ठा का भाव सभी व्यक्तियों में पाया जाता है। लोग ईश्वर के प्रति निष्ठा रखते है। परिवार के प्रति अपने निष्ठा भाव पर गर्व करते हैं। देश के प्रति निष्ठा देशभक्ति कहलाती है। इसी प्रकार की निष्ठा यदि कार्य के प्रति हो तो सिविल सेवा में कैरियर को सार्थकता मिलती है। सिविल सेवक का यह निष्ठाभाव उसे दुर्गुणों से बचाता है और इससे सेवा की गुणवत्ता बढ़ती है। दुर्भाग्य से इसे पहचानने में गलतियां हो जाती हैं और जो लोग निष्ठा भाव से सेवा कर सकते हैं उन्हें उनके सहयोगी बीमारी की स्थिति में धकेल देते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था और प्रशासन की शोषणकारी विरासत हमारे नागरिक के इस निष्ठा भाव को सही दिशा नहीं से सकी है। यदि सभी सेवाओं में समुचित सम्मान और सेवा के पर्याप्त अवसर बढ़ सकें तो सेवाओं में ईर्ष्या, भ्रष्टाचार, अंतर्विरोध और दुराचार की घटनाएं कम हो सकती हैं।

## 7.5 प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार

भारतीय प्रशासन में सत्यनिष्ठा और नैतिकता की स्थापना एक विषम समस्या है। समसामयिक राजनितिक-प्रशासनिक परिदृश्य में नैतिकता एवं ईमानदारी दुर्लभ प्रवृति का रूप लेती जा रही है। बीसवीं सदी का अंतिम दशक भारतीय राजनीति में 'घोटाला काल' के रूप में जाना जायेगा, ऐसा मत प्रकट किया जाता हैं। सत्यनिष्ठा का विलोम 'भ्रष्टाचार' एक सामान्य एवं आवश्यक प्रघटना बन चुका हैं। सार्वजानिक प्रशासन में सच्चरित्रता के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956 में कहा गया था कि, ''सार्वजानिक मामलो एवं प्रशासन में सच्चरित्रता होना आवश्यक है अतः प्रत्येक सार्वजानिक कार्य सम्बन्धी शाखा में इस पर बल दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का दुष्प्रभाव बहुत व्यापक होता है इसके फलस्वरूप न केवल ऐसी गलतियां होती हैं जिनको सुधारना कठिन हो जाता है बल्कि यह प्रशासनिक ढांचे की जड़ों एवं प्रशासन में जनता के विश्वास को हिला देता है। अतः प्रशासन में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक निरंतर चलने वाला युद्ध छेड़ देना चाहिए।"

भ्रष्टाचार एक विश्व व्यापी एवं परम्परागत समस्या है। कौटिल्य का कहना था, ''सार्वजानिक कर्मचारी द्वारा सरकारी धन का दुरूपयोग न करना उसी तरह असंभव है जिस तरह जीभ पर रखे शहद को न चखना, जिस प्रकार पानी में तैरती मछली कब दो बूँद पानी पी लेती है पता ही नहीं चलता।'' इस उदाहरण में स्पष्ट है की प्रशासन में भ्रष्टाचार प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है भारत की लोक कथाओं किस्से कहानियों से लेकर ऐतिहासिक दस्तावेजों तक भ्रष्टाचार चर्चित समस्या रही है सल्तनत काल, मुगल काल, और अन्य राजशाही व्यवस्थाओं में राज्य के कार्मिकों द्वारा भ्रष्टाचार के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं।

ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा अपने कर्मचारियों को कम वेतन देने के कारण भी लगभग उसका प्रत्येक कर्मचारी किसी न किसी प्रकार के भ्रष्टाचार में लिप्त था। स्वतंत्रता के पश्चात, भारत में गबन, भ्रष्टाचार या रिश्वतखोरी की प्रवृति तेजी से बढी है।

भ्रष्टाचार का सामान्य अर्थ है भ्रष्ट या बिगड़ा हुआ आचरण। राजनीतिक एवं प्रशासनिक संदर्भ में इसका अभिप्राय ऐसे आचरण से है, जिसकी आशा लोक सेवकों से नहीं की जाती है। सरकारी कर्मचारी द्वारा की जाने वाली सब प्रकार की बेईमानी, गबन, घूसखेशी, रिश्वत अनुचित और अवैध रीतियों से धन लेना तथा अपनी सरकारी स्थिति और प्रभाव का स्वार्थ सिद्धि के लिए दुरूपयोग भ्रष्टाचार कहलाता है।

ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के अनुसार, 'शु'आचरण में कमी या इसका खंडित होना है। यह कम (com) उपसर्ग के साथ ढूंढने का अर्थ देने वाली लैटिन की रम्पेयर (Rumpere) नामक धातु से मिलकर बनता है जिसका अर्थ आचरण में त्रुटि या कदाचरण है।

भ्रष्टाचार की परिभाषा भारतीय दण्ड संहिता की धारा-161 में इस प्रकार की गई है- ''जो व्यक्ति सरकारी कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विधिक पारिश्रमिक से अधिक कोई घूस लेता है या स्वीकार करता है या लेने के लिए तैयार हो जाता है या लेने का प्रयास करता है या अन्य किसी कार्य को करने के लिए उपहार स्वरूप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति के कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास भ्रष्टाचार की परिभाषा में आता है। केन्द्रीय या अन्य राज्य सरकार या संसद या विधानमंडल या किसी लोक सेवक के संदर्भ में ऐसा करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास या दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिए जा सकेंगे।''

बी.एल. फडिया के अनुसार, ''भ्रष्टाचार से तात्पर्य है, किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने सार्वजनिक पद अथवा स्थिति का दुरूपयोग करते हुए किसी प्रकार का आर्थिक या अन्य प्रकार का लाभ उठाना यह ऐसा व्यवहार है, जिसमें सरकारी कर्मचारी व्यक्तिगत आर्थिक लाभ उठाने के लिए सार्वजनिक कर्तव्य से विचलित होता है या नियमों का ऐसा उल्लंघन करता है जिसके कुछ विशेष प्रकार से निजी लाभ प्राप्त हो सकें।''

डेविड एच. बेली के अनुसार, ''भ्रष्टाचार एक सामान्य शब्दावली है जिसमें अपने व्यक्तिगत लाभ के विचार के परिणामस्वरूप सत्ता का दुरूपयोग भी आता है, जो जरूरी नहीं धन सम्बन्धी हो।''

नाई के अनुसार, ''ऐसा व्यवहार जो ऐ सार्वजनिक भूमिका के औपचारिक कर्तव्यों से निजी (व्यक्तिगत, निकट परिवार, निजी गुट) आर्थिक लाभ या स्तरीय लाभ के कारण विचलित हो जाता है या कुछ प्रकार के निजी प्रभावों से प्रभावित होकर नियमों का उल्लंघन करता है।''

भारत में 1947 का भ्रष्टाचार रोक सम्बन्धी कानून के अंतर्गत निम्नलिखित रखा जा सकता है-

- अपने सरकारी कर्तव्य को पूरा करते हुए किसी लोक अधिकारी का दुराचरण जिसमें अमुक भी सम्मिलित हो सकते हैं। जैसे- अपने लिए या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए अवैध पारितोषिक (घूस) प्रथागत स्वीकार करना, लोक अधिकारी द्वारा उसके पद के कारण उसकी सुरक्षा में दी गई सम्पत्ति का दुरूपयोग या अपने लिए या किसी दूसरे व्यक्ति के लाभ के लिए प्रयोग, अपने लिए या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए आर्थिक लाभ प्राप्त करने के कार्य।
- किसी लोक अधिकारी को प्रभावित करने के लिए पारितोषिक (घूस) प्रथागत प्राप्त करना।
- लोक अधिकारी के तौर पर उसको दी गई सम्पत्ति को बेईमानी से हथियाने का प्रयास या आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार के किसी अन्य कार्य को करने का प्रयास।
- आय के ज्ञात स्त्रोतों के अनुपात से अधिक सम्पत्ति ा रखना।

इन सभी परिभाषाओं के आधार पर हम भ्रष्टाचार के कुछ अनिवार्य तत्वों को संक्षेप में दे सकते हैं -

- यह एक लोक अधिकारी द्वारा अपनी स्थिति स्तर या संसाधनों या जान बुझकर या ऐच्छिक दुरूपयोग है।
- यह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जाता है
- यह अपने निजी स्वार्थ या लाभ को बढ़ाने के लिए किया जाता है, चाहे वह आर्थिक लाभ या शक्ति सम्मान या प्रभाव को बढ़ाना है।
- यह व्यवहार के विधिवत, मान्य या सामान्य स्वीकृत नियमों का उल्लंघन करके किया जाता है।

यह समाज या अन्य व्यक्तियों के हितो के प्रतिकूल किया जाता है। भ्रष्टाचार के कई रूप हो सकते हैं। यह आवश्यकता नहीं है कि भ्रष्टाचार धन के ही रूप में हो। राजनितिक दलों के लिए धन इकट्ठा करना, औद्योगिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्मित पर्वतीय नगरो या बड़े नगरों के अतिथि गृह में ठहरना, विवाह या जन्म दिन पर उपहार लेना,

स्थानान्तरण या पदोन्नति के लिए रिश्वत देना, सार्वजनिक धन का अपव्यय करना, आदि भ्रष्टाचार ही है। केन्द्रीय सर्तकता आयोग ने भ्रष्टाचार के निम्न 27 प्रकारों का उल्लेख किया है।

## 7.6 प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठा ह्रास के कारण

भ्रष्टाचार का प्रतिफल निष्ठा का ह्रास है। भ्रष्टाचार के विभिन्न कारणों का उल्लेख निम्नलिखित शीर्षको के अंतर्गत किया जा सकता है-

1. **ऐतिहासिक कारण-** भारत में भ्रष्टाचार का मूल कारण (जड़) विगत औपनिवेशिक शासन है। औपनिवेशिक शासन के दौरान अंग्रेजी प्रशासन देश के विकास का पक्षपाती नही था। सभी महत्वपूर्ण एवं वरिष्ठ पदों पर अंग्रेज नियुक्त किए जाते थे और उन्हें अच्छा खासा वेतन दिया जाता था। निचले पद भारतीयो को दिए जाते थे। इन निचले पदों पर भारतीयो को बहुत कम वेतन दिया जाता था। इस कारण वे भ्रष्ट तरीके अपनाते थे। द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारत में भ्रष्टाचार उच्च शिखर पर था। युद्ध कालीन नियंत्रणों और दुर्लभताओं के कारण निष्ठा का वातावरण दूषित हो गया था और युद्धोत्तर काल में मुद्रा की प्रचुरता और मुद्रास्फीति ने इसे और बदतर बना दिया।

   स्वतंत्रता के तुरन्त बाद त्वरित आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाई गई और यह आवश्यक था कि देश के समस्त सुलभ साधनों पर नियंत्रण स्थापिन किया जाए, उपभोक्ताओ को सभी सामग्री राशन के आधार पर सीमित मात्रा में दी जाएं। इसके लिए परमिट, लाइसेंस, कोटा पद्धति शुरु की गई। इसके अनुसार कुछ विशेष व्यक्तियों को ही कारखाने से वस्तुएं प्राप्त करने की परमिट और अधिकार पत्र दिए जाने लगे। इसके परिणाम स्वरूप देश में व्यापक रूप से चोर-बाजारी शुरू हो गई।
2. **सामाजिक पर्यावरण-** भारत का समाज एक परिवर्तन की स्थिति से गुजर रहा है, जहां आधुनिक पुरातन से मिश्रित होता है। यहां अभी भी परम्परागत, और सामंती व्यवस्था है। यहां अभी तक परिवार, जाति, कबिला, समुदाय ,धर्म, भाषा तथा क्षेत्र के बंधन बहुत शक्तिशाली हैं। अतः राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों क्षेत्रों में लोक अधिकारी अपने समूहों के प्रति वफादारी को राष्ट्र के प्रति वफादारी पर न्यौछावर करने के असमर्थ हैं। यहां निष्ठाओं का विरोधाभास है। इससे भ्रष्ट व्यवहार, जैसे भाई-भतीजावाद व पक्षपात, जातिवाद आदि उत्पन्न होते हैं। साथ ही साथ भारत का समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है जिसमें औद्योगीकरण, आर्थिक विकास, नगरीकरण, जनसंचार, जनसंख्या का स्थनांतरण, लोकतांत्रिकरण आदि भी सम्मिलित हैं जिससे समाज के पुराने मूल्य टूट रहे हैं और भौतिकवादी युग में महत्वाकाक्षाएं अधिक प्रबल हो गई हैं। किसी भी तरीके से धन की प्राप्ति मुख्य उद्देश्य बन गया है। अर्जनशील समाज भ्रष्टाचार को उत्पन्न कर रहा है।
3. **लोक अधिकारियों को कम वेतन-** भारत में भ्रष्टाचार का कारण यह भी है कि यहां लोक अधिकारियों को कम वेतन दिए जाते हैं यह कहा जाता है कि समाज के विभिन्न वर्गो की वास्तविक आय में बड़ी कमी आई है, विशेषतया वेतन प्राप्त करने वाले वर्गों की आय में। यद्यपि समय-समय पर वेतन आयोगों द्वारा इन वेतन मानको को दोहराया गया फिर भी वेतन प्राप्त करने वाले लोक-अधिकारी कठिन स्थिति में हैं।

   प्रत्येक अधीनस्थ अपने वरिष्ठ अधिकारी का अनुसरण करना चाहता है। यदि उसका वेतन कम होता है तो वह अनुचित साधनों से आमदनी करता है। वेतन में विषमता का व्यापक अनैतिक और विनाशकारी प्रभाव होता है।
4. **देश भक्ति की कमी-** भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् यहां के अधिकांश नागरिक स्वयं को स्वतंत्र नहीं स्वच्छन्द समझने लगे हैं। अधिकांश का ज्ञान और जागरूकता अवश्य बढ़ी है, किन्तु नागरिक कर्तव्य करने में उदासीनता की प्रवृत्ति अपनाई जा रही है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाओं में तो जनता ही संप्रभु

है किंतु भारतीय लोकतंत्र जो विश्व में सबसे बड़ा है, की जनता सरकार को स्वयं से सर्वथा पृथक समझती है। देश के सरकारी कार्मिक से लेकर आम व्यक्ति तक हर कोई सरकार को परायेपन की नजर से देखता है। सरकारी संस्था को लूटने और हानि पहुंचाने को सामान्यतः अपराध नहीं माना जाता है। यहां तक कि सरकारी कर्मचारी इसको आम बात स्वीकार करता है।

5. **नैतिक मूल्यों का ह्रास-** विकसित जनसमाज मे शहराकरण एवं औद्योगीकरण पर निरंतर बल दिया गया है, जिससे सामाजिक और व्यक्गित मूल्यों का भौतिक मूल्यों के आगे ह्रास होता है। भौतिक आवश्यकताएं बढ़ती जाती है और जो वस्तुएं पूर्ण विलास की वस्तुएं मानी जाती थी वे अब जीवन की आवश्यकताए बनती चली जाती हैं। इनकी प्राप्ति के लिए धन की आवश्यकता होती हैं। ईमानदारी के तरीके से धन कमाना कठिन होता है। अतः अनैतिक उपायों का सहारा लिया जाता है। पहले अनैतिक कार्य करने में व्यक्ति झिझकता था जब कि आज अनैतिक उपाय से लाभ अर्जित करने में प्रसन्नता होती है।
6. **लालफीता शाही-** भारत में सरकारी कार्यालायों में काम करने की प्रक्रिया जटिल तथा विलम्बकारी होती है। इनमें इतने अधिक नियमों और उपनियमों का जाल फैला होता है कि कोई भी कार्य शीघ्रता से नहीं हो सकता। लाल फीते से बंधी फाइलों को एक अफसर की मेज से दूसरे अफसर की मेज तक पहुचने में बड़ा समय लगता है। यह स्थिति रिश्वत और घूस के लिए आधार तैयार करती है। लोग अपना कार्य जल्दी कराने के लिए सरकारी कर्मचारी को विभिन्न प्रकार से रिश्वत देने में कोई संकोच नही करते हैं। ऐसी राशि को संथानम समिति ने शीघ्र काम कराने वाला धन कहा है। इस प्रकार की रिश्वतखोरी ऐसे विभागों में अधिक पाई जाती है, जहां सरकार के साथ नागरिकों का अधिक सम्पर्क होता हैं। ऐसे विभागों मे सार्वजनिक निर्माण विभाग (पी.डब्ल्यू.डी), व्यापार, उद्योग, यातायात और संचार के विभाग, प्रमुख हैं।
7. **अकुशल न्यायिक व्यवस्था-** भारत में न्यायिक व्यवस्था अकुशल, महंगी और विलम्बकारी है। यह भी माना जाता है निम्न न्यायपालिका भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। मुकदमों का फैसला करने में वर्षो लग जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अपराधी दण्ड से प्रायः बच जाते हैं, क्योंकि लम्बे समय के कारण मामले की गवाही पर बुरा प्रभाव पड़ता है। समय बीतने के बाद गवाह उपलब्ध नहीं हो पाते या इतना चिर काल पहले क्या हुआ उनको याद ही न रहे। यदि इतने समय बाद भ्रष्ट को दण्ड मिल भी जाए, तो उससे वांछनीय उद्देश्य पूरा नहीं होता। यह धारणा बन जाती है कि भ्रष्ट बिना किसी हानि के छूट जाते हैं। न्याय में विलम्ब करने का अर्थ न्याय देने से इंकार करना है। अतः अकुशल न्यायिक व्यवस्था भ्रष्टाचार को प्रबल बनाती हैं।
8. **अपर्याप्त कानून-** भारतीय दण्ड संहिता और भ्रष्टाचार निवारक कानून दोनों स्थितियों में इतने पर्याप्त नहीं है। कि दोषी अधिकारियों को दंडित कर सकें। इन कानूनों का प्रशासन उपयुक्त नहीं और कोई गिरफ्तारी नहीं होती। यदि कुछ लपेटे में आ भी जाते हैं, उनको ढुढ़ा नहीं जाता। परिणामस्वरूप दोषियों की एक बड़ी संख्या दण्ड पा नहीं पाती और वे फिर से भ्रष्टाचारी गलत कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं।
9. **सरकारी कर्मचारियों का संवैधानिक संरक्षण-** सरकारी कर्मचारी हमारे संविधान की धारा- 311 के अधीन संरक्षित किए गए हैं। संवैधानिक प्रावधान तथा अनुशासनीय प्रक्रियाएं भ्रष्ट और बेइमान कर्मचारियों के विरूद्ध कार्यवाही करना असंभव बना देते हैं। धारा- 311 के प्रति कानूनी न्यायालयों ने भ्रष्ट कर्मचारियों के साथ कठोरता से निपटना बहुत कठिन बना दिया है।
10. **औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग का बढ़ता प्रभुत्व-** भ्रष्ट करने की योग्यता एवं इच्छा आज के औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग में पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। सटोरिये, नए पैसे वाले, तस्करी का धंधा करने वालों के लिए भ्रष्टाचार विभिन्न तरीके से धन अर्जित करने का सबसे सरल तरीका है। अपना काम निकलवाने के

लिए मादक पदार्थ और सुन्दरियां भ्रष्टाचार के नवीन रूप हो गए हैं। व्यावसायिक घरानों द्वारा सम्पर्क अधिकारियों एवं सम्बन्ध कायम रखने वाले व्यक्तियों को बड़ी संख्या में नियुक्त किया जाता है।

11. **निर्वाचन में राजनीतिक दलों को चन्दा-** भारत में चुनाव काफी महंगे हो गए हैं और चुनाव जीतने के लिए राजनीतिक दलों को काले धन की आवश्यकता पड़ती है। चुनाव में धन की बढती हुई भूमिका के कारण काला धन और भ्रष्ट राजनेता एक-दुसरे के साथ जुड़ गए हैं।
12. **वर्तमान में कानून लागू करने की इच्छा का अभाव-** जैसा कि हम जानते है कि भारत में भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए कानून पर्याप्त नहीं है। इसके अलावा जो कानून है भी उसे लागू करने की इच्छा का भी अभाव है। यही कारण है कि दण्ड मुक्ति से कानूनों का उल्लंघन किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्टाचार की बात करता है परन्तु जो इसको रोकने की स्थिति में हैं वे इसको बहुज कम प्राथमिकता देते हैं या दूसरी दिशा में मोड़ देते हैं। इस कारण से भ्रष्टाचार से लड़ने की शक्ति का अभाव है।
13. **शक्तिशाली जनमत का अभाव-** देश में राजनीतिक और नौकरशाही भ्रष्टाचार फैला हुआ है न केवल इससे देश को हानि होती है वरन् हम सभी अपने दैनिक जीवन में इससे प्रभावित होते हैं। हम सब बातें करते हैं यहां तक कि संचार के माध्यम से इसका पर्दाफाश करने का प्रयास करते हैं फिर भी इसके विरूद्ध कोई शक्तिशाली जनमत या विरोधी आंदोलन नहीं करते। हम जानते हैं कि कौन राजनीतिज्ञ भ्रष्ट है फिर भी हम उन्हीं को वोट देते हैं और संसद और विधानमंडल में भेजते हैं।
14. **दबाव समूह-** वाणिज्य संगठन, व्यापार संस्थाएं, मजदूर संगठन, जाति समूह आदि कई प्रकार के ऐसे दबाव समूह हैं जो अपने-अपने सदस्यों के लाभ के लिए ऐसे कार्य करते हैं जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। राजनीतिक वर्ग और नौकरशाही को प्रभावित करने के लिए वे कई प्रकार के तरीके अपनाते हैं। विशेष रूप से मजदूर संगठन नकारात्मक भूमिका निभाते हैं। वे विरोध कार्यवाही द्वारा अपने भ्रष्ट सदस्यों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। जब कभी कोई भ्रष्ट कर्मचारी पकड़ा जाए और उसके विरूद्ध कार्यवाही की जाए तो वे इस प्रकार के विरोध का सहारा लेते हैं।

## 7.7 प्रशासनिक भ्रष्टाचार रोकने हेतु वैधानिक प्रावधान

स्वतंत्रता से पूर्व अवधि के दौरान, जनजीवन में भ्रष्टाचार का सामना करने के लिए भारतीए दण्ड संहिता (आईपीसी) ही मुख्य साधन थी। इस संहिता में लोक सेवकों द्वारा अपराध का एक मुख्य अध्याय था। धारा- 161 से धारा- 165 में भ्रष्ट लोक सेवकों के विरूद्ध कानूनी (वैधानिक) कार्यवाही करने के लिए वैधानिक ढांचे का उपबंध था। उस समय भ्रष्टाचार से निपटने के लिए किसी विशेष कानून की आवश्यकता महसूस नहीं की गयी। द्वितीय विश्व युद्ध में अभावग्रस्त से अनैतिक तत्वों ने स्थिति का शोषण किया जिसके कारण जन जीवन में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार होने लगा। यह स्थिति युद्ध के पश्चात् भी बनी रही। इस खतरे से चिन्तित कानून निर्माताओं ने यह महसूस किया कि कठोर विधायी अनुपालन करने की आवश्यकता है। अतः भ्रष्टाचार की बुराइयों से लड़ने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947 अधिनियमित किया गया था।

1. **भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम-1947-** लोक सेवक के सम्बन्ध में भ्रष्टाचार निरोधक (निवारण) अधिनियम 1947 ने भ्रष्टाचार के क्षेत्र की निम्नांकित परिभाषा दी गई है-
   - यदि वह आदतन किसी भी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए इनाम या प्रेरक के रूप में कोई पारितोषिक (कानूनी पारिश्रमिक के अतिरिक्त अन्य) जैसा कि भारतीय दण्ड संहिता- 161 में वर्णित है, स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है।

- यदि वह आदतन ऐसे व्यक्ति से जिसके बारे में वह जानता है कि उससे उसका कार्य व्यवहार हुआ है या होना संभावित है या होने ही वाला है या जिसके साथ उसके अथवा किसी अन्य सरकारी कर्मचारी जिसके साथ वह अधीस्थ है, के सरकारी काम का सम्बन्ध है या किसी ऐसे व्यक्ति से जिसका हितबद्ध होना है वह जानता है या जो सम्बन्धित व्यक्ति का रिश्तेदार है अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए बिना प्रतिफल के या उसकी जानकारी में अपर्याप्त प्रतिफल के बदले कोई मूल्यवान वस्तु स्वीकार करने हेतु सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है।
- यदि वह बेईमान से या धोखे से गबन करता है, या अन्यथा सरकारी कर्मचारी की अपनी स्थिति का दुरूपयोग करता है, अपने लिए या किसी अन्य के लिए कोई मूल्यवान वस्तु अथवा आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

2. **सरकारी कर्मचारियों की आचरण नियमावली-** विभिन्न श्रेणियों के लिए सरकारी कर्मचारी सम्बन्धी आचरण नियमावली लागू है-
   - अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियमावली, 1954
   - केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियमावली, 1955
   - रेल सेवा (आचरण) नियमावली, 1956

सरकारी कर्मचारी सम्बन्धी विभिन्न परिस्थितियों, के बारे में शासन द्वारा समय-समय पर अनेक नियमों का निर्माण किया गया है एवं आदेश जारी किए गए हैं-

- 1860 में राजपत्रित एवं 1869 में अराजपत्रित कर्मचारियों द्वारा कर्ज लेने एवं कर्ज देने सम्बन्धी।
- 1876 में उपहार ग्रहण करने सम्बन्धी।
- 1881 में मकानों एवं अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति बेचने सम्बन्धी।
- 1883 में शासन के अधीन किसी एक पद से अन्य व्यक्तियों के आर्थिक लाभ हेतु पद त्याग करने सम्बन्धी।
- 1885 में अचल सम्पत्ति में धन लगाने एवं सट्टे सम्बन्धी।
- 1885 में कम्पनियों के प्रबन्ध एवं विकास तथा निजी व्यापार एवं रोजगार सम्बन्धी।
- 1885 में लोक सेवकों द्वारा चंदा एकत्र करने सम्बन्धी।
- 1885 में कर्जदार एवं दिवलिया होने सम्बन्धी तथा
- 1920 में पद निवृत्ति के पश्चात् व्यापारिक संस्थाओं में नियुक्ति सम्बन्धी।

3. **के. संथानम समिति प्रतिवेदन-** 1962 में के. संथानम समिति का गठन किया गया है-
   - केन्द्रीय सतर्कता आयोग को अपने कार्यो का संपादन में सरकारी नियत्रंण से मुक्त रखा जाए।
   - आयोग का सम्बन्ध प्रशासन की दो महत्वपूर्ण समस्याओं से होना चाहिए - भ्रष्टाचार की रोकथाम तथा प्रशासनिक अधिकारियों को दिए गए अधिकारों की समीक्षा।
   - सतर्कता आयोग के तीन निदेशालय होने चाहिए। प्रथम निदेशालय नागरिकों की साधारण शिकायतों पर विचार करे, द्वितीय निदेशालय सतर्कता सम्बन्धी विषयों पर और तृतीय निदेशालय केन्द्रीय पुलिस पुलिस सेवा का कार्य करे।

4. **पाल एच. एपिलेबी समिति-** 1952 में सरकार ने भारत में प्रशासनिक सुधारों पर विचार करने के लिए पाल एच.एपिलेबी की नियुक्ति की। एपिलेबी ने भारत में लोक प्रशासन, सर्वेक्षण का प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किया जिसमें निम्न बातें थीं-
   - भारत की एकता और विभिन्नता से सम्बन्धित प्रश्न।
   - राज्यों को अधिक स्वायत्ता देना उचित है या नहीं।
   - समस्त भारतीय सेवाओं को एक सामान्य सेवा से संगठित कर देने की अनुशंसा।
   - लोक प्रशासन पर अध्ययन एवं अनुसंधान पर जो।
   - प्रशासनिक तंत्र में संगठनात्मक और प्रक्रियात्मक समस्याओं के अध्ययन पर जोर एवं सुधार के लिए एक इकाई का गठन।
   - योजना आयोग का कार्य योजना निर्माण तक सीमित करने की अनुशंसा।
   - कर्मचारियों की प्रभावकारिता पर बल।
   - कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर बल।
5. **केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सी.वी.सी.)-** इस संवैधानिक आयोग का अध्यक्ष एक आयुक्त होता है जो राष्ट्रपति अपने हाथ से तथा मुहर सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जाता है। वह इस पद पर छह वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक जो भी पहले आए कार्य करता है। उसे उस विधि से जो संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या सदस्य को हटाने या निलंबन हेतु अपनाई जाती है, को छोड़कर अन्य किसी अवस्था में उसे हटाया या निलंबित नहीं किया जा सकता।

   केन्द्रीय सर्तकता आयोग निम्नलिखित कार्यों का संपादन करता है-
   - किसी ऐसे कार्य की जांच करना, जिससें सरकारी अधिकारी पर अनुचित और भ्रष्ट तरीके से अपने उत्तरदायित्वों का पालन ठीक ढंग से न करने, भ्रष्टाचार बुरे व्यवहार, सत्यनिष्ठा की कमी और अनाचार का आरोप हो।
   - सतर्कता और भ्रष्टाचार विरोधी कार्यों के संदर्भ में नियंत्रण और अधीक्षण की दृष्टि से अभिकरणों से प्रतिवेदन प्राप्त करना।
   - केन्द्रीय जांच के लिए सौंपे गए मामलों को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में लेना।
   - उस सीमा तक प्रशासन की प्रक्रिया और व्यवहार के पर्यवेक्षण के लिए पहल करना जहां तक उनका सम्बन्ध प्रशासन में सत्यनिष्ठा कायम रखने के लिए आवश्यक हों।
   - यह एक ऐसे किसी भी मामले की जांच करता है जिसमें सरकारी कर्मचारी पर अनुचित प्रयोजन हेतु या भ्रष्ट तराके से कार्य करने का संदेह या आरोप हो।
6. **राज्य सतर्कता आयोग-** राज्य स्तर पर एक राज्य में 1964 से एक राज्य सर्तकता आयोग विद्यमान है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग की ही भांति, राज्य सतर्कता आयुक्त होता है। विभागकीय पूछताछ के लिए भी एक सतर्कता आयुक्त होता है, जो विभागीय पूछताछ भ्रष्टाचार के आरोपो के प्रति करता है।

   आयोग अपनी गतिविधियों के प्रति अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को भेजता है। यह रिपोर्ट राज्य विधानमंडल में प्रस्तुत की जाती है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग, राज्यों के सभी सतर्कता आयुक्तों की वार्षिक सभा बुलाता है। यह मंच आपसी समस्याओं तथा विचारों का आदान-प्रदान हेतु विचार विमर्श के लिए एक अच्छा अवसर उपलब्ध कराता है। यह

केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के सतर्कता प्रयासों से सरकार की सत्यनिष्ठा के प्रति सद्भावना में जनता का विश्वास सरल और कारगर सिद्ध होता है।

7. **केन्द्रीय जांच (अन्वेषण) ब्यूरो (सीबीआई)-** केन्द्रीय जांच ब्यूरो की स्थापना अप्रैल 1963 में हुई थी। इस संगठन को विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के रूप में जाना जाता है। भ्रष्टाचारी अपराधिकता पर कार्यवाही करने का कार्य सीबीआई का है। यह एक केन्द्रीय पुलिस संगठन है और संविधान के अंर्तगत पुलिस राज्य सूची का विषय होते हुए भी केन्द्रीय गृह मंत्रालय इस संगठन के माध्यम से राष्ट्रीय पुलिस जैसा कार्य करता है।

   केन्द्रीय जांच ब्यूरो सरकार की सबसे बड़ी जांच एजेंसी है। अपने विशेष पुलिस स्थापना विभाग के जरिए यह संगठन केन्द्रीय सरकार और उसके सम्बन्धित निगमित उपक्रमों के कर्मचारियों से सम्बन्धित कदाचार के मामलों की जांच करता है। इस संगठन द्वारा अन्वेषण किए जाने वाले मामलें इस प्रकार हैं -

   - ऐसे मामले जिनमें केन्द्रीय सरकार या उन निगमों या प्रतिष्ठानों के, जिन्हें केन्द्रीय सरकार उन नियमों या प्रतिष्ठानों के, जिन्हें केन्द्रीय सरकार ने बनाया है या जिनके निर्माण और परिचालन में केन्द्र वितीय सहायता देता हो, के हितों को हानि पहुंचती हो जिनमें केन्द्रीय कानून जिन्हें केन्द्रीय सरकार लागू करना चाहती है, भंग होते हों।
   - धोखाधड़ी, फरेब और पैसे के दुरूपयोग के बड़े मामले और संगठित गिरोहों तथा पेशेवर अपराधियों जिनके अंतर्राज्यीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अड्डे है, के मामले।
   - केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो को राज्य की सुरक्षा सम्बन्धी मामलों के साथ-साथ राष्ट्रीय महत्व के मामलों की जांच का कार्य भी सौंपा गया है।

8. **गोरवाला प्रतिवेदन-** सन् 1951 में ए.डी. गोरवाला ने भारतीय प्रशासन का अध्ययन कर लोक प्रशासन पर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में भारत में प्रशासकीय कार्यों की गति को तेज बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए-

   - नीति निर्माण और उसकी क्रियान्वति में स्पष्ट अंतर करना।
   - नियुक्तियों के लिए चयन में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग करना।
   - अखिल भारतीय सेवा के कर्मियों को अपने राज्य से इतर राज्य में नियुक्ति करना।
   - अच्छे वेतनमान और उचित दण्ड व्यवस्था के माध्यम से प्रशासन में समुचित अनुशासन की स्थापना करना।
   - वरिष्ठ अधिकारियों को अधिक मात्रा में निरीक्षण एवं निदेशन तथा कनिष्ठ अधिकारियों को अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिया जाना।

9. **लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम, 2013-** भारत के राष्ट्रपति ने लोकपाल और लोकायुक्त विधेयक 2013 पर 01 जनवरी 2014 को हस्ताक्षर किए थे। इसके साथ ही यह विधेयक अधिनियम बन गया है। यह अधिनियम एक भ्रष्टाचार विरोधी निगरानी समिति बनाने की अनुमति देता है। कुछ सुरक्षा उपायों के साथ प्रधानमंत्री का पद भी इस अधिनियम के दायरे में आ सकेगा।

   लोकपाल, शब्द स्वीडिश भाषा के शब्द ओमबुड्समैन का हिन्दी रूपान्तरण है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में ओम्बुड्समैन को नौकशाही की शक्तियो के दुरूपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों द्वारा की गई शिकायतों की खोज करने वाला व्यवस्थापिका का आयुक्त कहा गया है। इस प्रकार यह पार्लियामेन्ट्री कमिशनर व्यवस्थापिका का अधिकृत अभिकर्ता है, जो सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों के विरूद्ध

कुप्रशासन, प्रशासनिक स्वविवेक के दुरूपयोग, भ्रष्ठ आचरण, पक्षपात, अपनों को लाभान्वित करने की भावना, राजनीति के प्रभाव आदि के सम्बन्ध में नागरिकों द्वारा दी गई शिकायतों पर संज्ञान लेकर उनकी जांच करता है तथा दोषियों को दण्डित कर पीड़ित पक्ष को समुचित राहत प्रदान भी करता है।

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 के प्रमुख प्रावधान निम्न हैं-

- इस अधिनियम के अनुसार, केन्द्र स्तर पर लोकपाल का तथा राज्य स्तर पर लोकायुक्त का प्रावधान किया गया है।
- लोकपाल में एक अध्यक्ष के साथ अधिकतम 8 सदस्य हो सकते हैं।
- लोकपाल के कुल सदस्यों में 50 प्रतिशत सदस्य अनुसूचित जाति/जनजाति/अन्य पिछड़ वर्ग, अल्पसंख्यक और महिलाओं से होंगे।
- लोकपाल के अध्यक्ष और सदस्यों का चयन एक चयन समिति के माध्यम से होगा। जिसमें कुछ मामलों में दीवानी अदालत के अधिकार सम्मिलित होंगें।
- केन्द्र और राज्य सरकार के कर्मचारियों की सेवा प्रयोग करने का अधिकार।
- सम्पत्ति को स्थायी रूप से जब्त करने का अधिकार।
- विशेष परिस्थितियों में भ्रष्टाचार से कमाई गई सम्पत्ति, आय आदि को जब्त करने का अधिकार।
- केन्द्र सरकार को लोकपाल के द्वारा भ्रष्टाचारियों के विरू अभियोजन की सुनवाई के लिए विशेष अदालतों के गठन का अधिकार।
- विशेष अदालतों को मामला दायर होने के एक वर्ष के भीतर उसकी सुनवाई पूर्ण करनी होगी। यदि एक वर्ष में यह सुनवाई पूर्ण न हो पाए तो अदालत इसके कारणों को दर्ज करेगी और सुनवाई तीन माह में पूरी करेगी। एक बार में यह अवधि तीन माह तक बढ़ सकती है।
- भ्रष्टाचार भारत को दीमक की भांति खोखला कर रहा है। इसके कारण आर्थिक, सामाजिक, नैतिक सभी स्तरों पर गिरावट आ रही है। भ्रष्ट रूप से अर्जित धन से राजनेता और लोक सेवक दिनों-दिन धनवान हो रहे हैं जबकि देश की आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक प्रगति अवरूद्ध हो रही है। लोकपाल के गठित होने से भ्रष्टाचार में अवश्य कमी आएगी तथा देश के विकास पर कुल मिलाकर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

## 7.8 प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के उपाय

प्रशासन में नैतिकता को सुदृढ़ करने या भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के उपाय निम्न हैं-

1. **सेवा शर्तों में सुधार-** सरकारी कर्मचारी विशेष रूप से निचले स्तर के कर्मचारी निर्धनता से विवश होकर अपने पद को आय का स्रोत मानते हुए अधिक से अधिक आय प्राप्त करना चाहते हैं। इस रिश्वतखोरी को समाप्त करने के लिए समय-समय में पर वेतन वृद्धि आवश्यक है। साथ ही साथ तबादला कुशल प्रशासन के हितों को ध्यान में रखकर पूर्व स्थापित नियमों के अनुकूल होनी चाहिए। तबादला सम्बन्धी नियमों को दृढ़ता से लागू किया जाना चाहिए। इसका उद्देश्य यह है कि भ्रष्टाचार से मुक्त सेवा उपलब्ध हो सके।
2. **विभागीय नियंत्रण-** केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर सरकारी विभाग का मुख्य नियंत्रणकर्ता एक राजनीतिक मंत्री होता है। मंत्री अपने विभाग से सम्बन्धित सभी प्रकरणों का उत्तर विधायिका में देता है। संसदीय लोकतंत्र वाली शासन व्यवस्थाओं में विपक्षी दलों द्वारा सत्ता पक्ष पर दोषारोपण तथा मंत्री

महोदय द्वारा उस सम्बन्ध में दिया जाने वाला स्पष्टीकरण प्रशासनिक नियंत्रण का संभवतः सर्वश्रेष्ठ माध्यम है।

3. **जांच पड़ताल करने वाला अभिकरण स्वतंत्र और प्रभावी हो-** सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भ्रष्टाचार मामलों की छानबीन करने वाली एजेन्सी स्वतंत्र तथा प्रभावकारी होनी चाहिए। भारत में एक स्वतंत्र और निष्पक्ष संगठन हो जो सरकार के नियंत्रण से मुक्त हो और भ्रष्टाचार के मामले की जांच पड़ताल करने और उन पर मुकदमा चलाने के लिए उसकी अपनी एजेन्सी हो। भले ही यह एक लोकपाल हो या एक स्वतंत्र जांच ब्यूरो जिसका प्रशासनिक और राजनीतिक भ्रष्टाचार के मामले पर अधिकार क्षेत्र हो।
4. **जवाबदेह प्रशासन-** आवश्यकता इस बात की है कि जवाबदेही के सिद्धान्त को प्रत्येक स्तर पर लागू किया जाए। शक्ति का प्रयोग केवल विधि के अनुकूल होना चाहिए और हर एक को गलत कार्य करने या सत्ता का दुरूपयोग करने के लिए जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए। न्यायपालिका ने आधुनिक समय में जो निर्णय दिए हैं उनसे स्थिति ठीक करने की आशा बनती है। कोई भी लोक अधिकारी यह दावा नहीं कर सकता है कि न्यायालय को केवल उसके निर्णय को रद्द करने का अधिकार है उसे व्यक्तिगर तौर पर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।
5. **प्रशासनिक कार्य प्रणालियां सरल और विलम्बता मुक्त हों-** प्रशासनिक विलम्ब भ्रष्टाचार का मुख्य कारण है। अतः भ्रष्टाचार को कम करने या नियंत्रित करने के लिए प्रशासनिक विलम्ब को हटाना अनिवार्य है। सरकारी कार्यालय की कार्यप्रणाली को सरल बनाया जाना चाहिए और पदसोपान के स्तर को घटाया जाना चाहिए। निर्णय करने की व्यवस्था ऐसी होना चाहिए कि एक ही कार्यालय में निर्णय पूरा हो जाए। इससे विलम्ब कम होगा और जनता परेशान नहीं होगी। सरकारी क्रियाक्लाप संक्षिप्त और सरल होने चाहिए जिस को कोई भी साधारण नागरिक समझ सकें।
6. **पृथक न्यायालय की स्थापना-** भ्रष्टाचार को रोकने के लिए एक प्रभावशाली तरीका यह है कि आरोपी को शीघ्र अतिशीघ्र दंडित किया जाए ताकि वह दूसरों के लिए भयकर हो। चूँकि यह वर्तमान न्यायिक व्यवस्था में संभव नहीं है तो केवल भ्रष्टाचार के मामलों को सुनने के लिए पृथक न्यायालय स्थापित किए जाने चाहिए। इससे मुकदमों को निपटाने में सहायता होगी।
7. **एक शक्तिशाली नागरिक समाज-** हमें एक शक्तिशाली नागरिक समाज की आवश्यकता है जो विवशता की स्थिति में राजनीतिज्ञों और अधिकारियों पर आश्रित होने की अपेक्षा स्वयं पहल कर सके। एक शक्तिशाली नागरिक समाज में अनेक समूह होते हैं जो सामाजिक लक्ष्य के लिए परस्पर सहयोग करते है। इस से भ्रष्ट तत्वों पर दबाव पड़ता है। समाज में एक अच्छी विधि व्यवस्था लोगों की एक अच्छी नैतिक व्यवस्था से ही उत्पन्न होती है।
8. **प्रशासन का विकेन्द्रीकरण-** विकेन्द्रिकरण शासन व्यवस्था भ्रष्टाचार को कम करने में सहायक होता है। इससे निर्णय करने की प्रक्रिया उन लोगों के निकट आ जाती है, जिनको लाभ होने वाला है। इसलिए अधिकारियों को अधिक जवाबदेह होना पड़ता है। यदि पंचायतो को यह अधिकार दे दिया जाए कि वे स्थानीय अधिकारियों को नियुक्त कर सकती है या हटा सकती है, इससे प्रशासन में लोगों की भागीदारी बढ़ेगी और साथ ही अधिकारियों की जवाबदेही भी तय होगी।
9. **मीडिया की भूमिका-** एक स्वतंत्र मीडिया जनता को भ्रष्टाचार पर सूचना और शिक्षा दे सकता है। सरकार में निजी क्षेत्र में और सिविल सोसाइटी संगठनों में भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है और भ्रष्टाचार के विरूद्ध अपने को नीति बद्ध करते हुए आचार संहिता पर निगरानी रखता है यह निगरानी ही

जनजागरूकता के लिए आवश्यक सिद्ध होती है और सम्पूर्ण समाज में भ्रष्टाचार के विरुद्ध उत्साहपूर्ण चेतना का संचार हो जाता है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. किसने कहा, ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।''
2. प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार तत्वों को बताईये।
3. यह किसने कहा कि, ''निष्ठा स्वामी भक्ति पर आधारित होती है।''
4. प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठा में कमी के किन्हीं दो कारणों को बताईये।
5. प्रशासनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार निवारण के किन्हीं दो उपायों को बताईये।

## 7.9 सारांश

इस अध्याय में हमने सरकारी सेवाओं में निष्ठा और प्रशासनिक नैतिकता के निहितार्थ पर विस्तृत चर्चा की है। शासन की प्रतिष्ठा एवं सफलता लोक संचालकों के आचरण के बारे में क्या सोचते हैं, उस पर निर्भर करता है। नैतिक आचरण के प्रति केवल सैद्धान्तिक पहल पर ध्यान देना ही पर्याप्त नहीं है वरन् एक लोक सेवक को इसे व्यवहार में अपनाने की आवश्यकता है। एक लोक सेवक को अपने कार्य के प्रति सेवा भाव रखते हुए ईमानदार, निष्पक्ष, तटस्थता, जवाबदेही, गोपनीयता, सच्चरित्रता, कार्यकुशलता आदि मूलभूत तत्वों को अपने जीवन में उतारना आवश्यक है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि सरकार के लगातार बढ़ते हुए आकार और लोगों की बढ़ती हुई अपेक्षाएं सरकारी कर्मचारियों से उच्च नैतिकता और व्यवसायिक मानदण्ड की माँग करता है। जिस राष्ट्र की सार्वजनिक सेवा भ्रष्ट है उस देश का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पतन होता है और उस देश का सर्वांगीण विकास रूक जाता है। इसलिए देश के चहुंमुखी विकास के लिए लोक सेवकों को नैतिक मूल्य को बनाए रखते हुए नैतिकता और निष्ठा पर ध्यान आकृष्ट करना बेहद जरूरी है। इसके पीछे मूल कारण है कि उनके कार्यो का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज के चरित्र पर पड़ता है। इसलिए सरकार द्वारा इस चुनौतीपूर्ण कार्य के लिए अपनाए गए साधनों और तकनीकों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार प्रशासन में नैतिकता को बढावा देते हुए कार्मिक प्रशासन में भ्रष्टाचार को मुक्त करना मानसिक शक्ति का प्रतीक है। किसी समाज में नैतिक आदर्शों का बल जितना अधिक होगा वह समाज सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से उतना ही सुचितापूर्ण जीवन का पश्चगामी होगा। राज्य मनुष्य के जीवन के लिए अस्तित्व में आया है और सदजीवन के लिए वह बना रहेगा किन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में प्रशासनिक नैतिकता महत्तवपूर्ण भूमिका निभाती रहेगी।

## 7.10 शब्दावली

प्रतिबद्धता- वचन/वादा/आश्वासन को अनिवार्य रूप से पूर्ण करना, तटस्थता- किसी का पक्ष न लेना अर्थात पक्षपात रहित, निष्ठा- विश्वासपूर्ण भरोसा, विवेकाधिकार- समझ के अनुसार कार्य करने की छूट, अनाधिकृत- गलत तरीके से, मूल्य- अच्छा और वांछनीय होने का विश्वास, नैतिकता- अच्छा बुरा तथा सही गलत के मूल्यों और मानकों का समूह, व्यवसायिक निष्ठा- किसी पेशे से संबंधित समझौतों, मानकों और मानदण्ड़ों का पालन करना

## 7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अरस्तू, 2. निष्पक्षता, राजनीतिक तटस्थता, जबाबदेही और उत्तरदायित्व, 3. जी. सुब्बाराव और पी. चौधरी, 4. नैतिक मूल्यों में गिरावट और देश भक्ति की कमी, 5. सेवा शर्तों में सुधार और जबाबदेह प्रशासन

## 7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. पद्मा रामचन्दण, "भारत में लोक प्रशासन" नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2011
2. आर.बी. जैन, "भारतीय समाज अधिकारी तंत्र और सुशासन" हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली, 2007
3. एस.आर. माहेश्वरी, "लोक प्रशासन", लक्ष्मी नारायण प्रकाशक, आगरा, 2012
4. बी.एल. फड़िया, "लोक प्रशासन", साहित्य भवन आगरा, 2015
5. ए.पी. शर्मा और बी.एल. सडाना, "लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार", किताब महल, दिल्ली, 2000
6. पी.डी.शर्मा, "एथिक्स, सत्यनिष्ठा एवं अभिवृत्ति ", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2015
7. जी. सुब्बाराव और पी.एन.राय चौधरी, "नीतिशास्त्र, सत्यनिष्ठा एवं अभिवृत्ति ", जी.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2018
8. इग्नू की पाठ्य पुस्तकें।


## 7.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. एस.आर. माहेश्वरी, "लोक प्रशासन", लक्ष्मी नारायण प्रकाशक, आगरा, 2012
2. बी.एल. फड़िया, "लोक प्रशासन", साहित्य भवन आगरा, 2015
3. ए.पी. शर्मा और बी.एल. सडाना, "लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार", किताब महल, दिल्ली, 2000
4. पी.डी.शर्मा, "एथिक्स, सत्यनिष्ठा एवं अभिवृत्ति ", रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2015


## 7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रशासनिक नैतिकता को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए।
2. प्रशासनिक सुचिता प्रशासन में किस प्रकार अपनी भूमिका निभाता है? प्रकाश डालें।
3. भ्रष्टाचार से आप क्या समझते हैं? प्रशासनिक सेवाओं में निष्ठाह्रास के क्या कारण है?
4. भ्रष्टाचार रोकने हेतु वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
5. सरकारी सेवाओं में निष्ठा सुधार हेतु क्या किया जाना चाहिए?

# इकाई- 8 नियोक्ता-कार्मिक सम्बन्ध

**इकाई की संरचना**

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 नियोक्ता कार्मिक सम्बन्ध का उद्भव एवं विकास
    8.2.1 कर्मचारी समितियां/परिषदें
    8.2.2 कर्मचारी समितियों/परिषदों की कार्यप्रणाली
8.3 नियोक्ता कार्मिक सम्बन्ध का उदय तथा अनिवार्य मध्यस्थता योजना
8.4 संयुक्त परामर्शदायी योजना की मुख्य विशेषतायें
8.5 परिषदों के कार्य
    8.5.1 राष्ट्रीय परिषद
    8.5.2 विभागीय परिषदें
    8.5.3 क्षेत्रीय परिषदें
8.6 मध्यस्थता मण्डल
8.7 सारांश
8.8 शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

## 8.0 प्रस्तावना

जब हम नागरिक सेवा कर्मचारी सम्बन्धों के इतिहास पर दृष्टि डालते हैं तो यह प्रतीत होता है कि कर्मचारीगण यह चाहते है कि उनके साथ मानवीय जैसा व्यवहार किया जाए। इसी तरह मानव गरिमा की स्थापना तथा मान्यता के साथ.साथ ही यह भावना भी फैली कि कार्मिक की शिकायतों का समाधान न केवल शान्तिपूर्ण व लोकतांत्रिक तरीके से होना चाहिए वरन् ऐसी व्यवस्था नियमित व स्थायी भी होनी चाहिए। पूर्वकाल में सरकारी सेवा में नियोक्ता-कर्मचारी सम्बन्धों का संचालन पारम्परिक तरीके से होता था जिससे सरकारी कर्मचारियों से यह उम्मीद की जाती थी कि वे राज्य के प्रति पूर्ण स्वामीभक्ति का परिचय देंगे। इसलिये उस काल में सरकार कर्मचारियों से बिना कोई सलाह किये ही सेवा शर्तों को एकतरफा और मनमाने तरीके से तय कर देती थी जबकि निजी क्षेत्र में श्रमिकों को वेतन तथा कामकाज की स्थितियों में अनेक लाभ मिले, चूंकि उनके पास प्रभावी श्रमिक संगठन मौजूद थे जो क्रान्तिकारी कदम उठाने से भी नहीं चूकते थे इसलिये सरकारी कर्मचारी संगठनों में भी यह भावना घर कर गई कि वे केवल सांझी किस्म के तथा मिले-जुले प्रयासों एवं दृढ़ कदमों से ही अपनी सेवा शर्तों में सुधार ला सकते हैं। इस उद्देश्य से सरकारी कर्मचारियों ने हड़तालों आदि का सहारा लिया और इस बात के लिए दबाव डाला कि सरकार उनके साथ सद्भावना से समझौता करे तथा उन्होंने राज्य से यह मांग की कि वह एक आदर्श नियोक्ता बनने का प्रयास करें जो अच्छे नियोक्ता कर्मचारी सम्बन्धों का बढ़ावा दे सके। यद्यपि एक और लोक कर्मचारियों को प्रदर्शन या हड़ताल करने का अधिकार नहीं दिया जाता, किन्तु दूसरी और उनके प्रति गुलामों जैसे व्यवहार को भी समाप्त करना हैं, तो नियोक्ता और कर्मचारियों के विवादों को शान्तिपूर्वक अर्थात समझोते तथा वार्ता द्वारा

सुलझाने के लिए आवश्यक उपकरण अनिवार्य हैं। यह भी अनुभव किया गया है कि यदि सरकारी कर्मचारियों को छोड़कर हड़ताल करने से प्रतिबंधित करना है तो उसके लिए हमें संयुक्त परामर्श का एक उचित ढांचा विकसित करना होगा तथा हमें सामूहिक समझौते की कार्यविधियों तथा अनिवार्य मध्यस्थता के द्वारा झगड़े सुलझाने की प्रविधियों की सहायता लेनी होगी। इसलिए शिकायतों के निदान तथा झगड़े सुलझाने की कार्यप्रणाली को एक ''जरूरी पर बीच का रास्ता'' मानकर चला जाता हैं। जिसमें एक और राज्य द्वारा सार्वजनिक रोजगार तथा सेवा की शर्तो को एकतरफा लागू करने का रास्ता हैं तथा दूसरी और हड़तालों एवं ताला बंदियों का रास्ता होता हैं। यह भी महसूस किया गया है कि वेतन, काम के घंटे तथा सेवा की शर्तो के मामलों को कर्मचारियों तथा नियोक्ता के प्रतिनिधियों के द्वारा मिलकर सुलझाया जा सकता हैं इसलिये संयुक्त परामर्शदायी संस्थाओं में जो विचार.विमर्श होते है वे सूचना के आदान-प्रदान करने तथा सेवा में सुधार लानें एवं सुरक्षा बढ़ाने के सुझाव देने की धारणा से सम्बन्धित होते है तथा स्वास्थ्य कल्याण एवं उत्पादन कुशलता के बारे मे भी उनमें विचार होता हैं। इन आपसी विचार-विमर्श के जो परिणाम निकलते है उन्हें आमतौर पर सिफारिशों के रूप में सरकार के सामने रखा जाता है जो कि उन पर अन्तिम फैसला लेती हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारे अपने व्यापक प्रशासनिक संगठनों के साथ समाज के सर्वांगीण विकासों के लिए प्रतिबद्ध रहती है पर यह एक वास्तविकता है कि वे बिना अपने कर्मचारियों के सक्रिय सहयोग तथा भागीदारी के अपनी नीतियों व कार्यक्रमों को कार्यान्वित नहीं कर सकते हैं। इसलिये प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। कर्मचारियों में मधुर सम्बन्ध विकसित किये जायें, क्योंकि यह संभव नहीं है कि बिना प्रभावी मंत्रणा तथा समझोते की व्यवस्था विकसित किए मधुर सम्बन्ध स्थापित हो सकते है। यही कारण है कि नागरिक सेवा, कर्मचारी सम्बन्धों की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लोकतात्रिक सरकार के सिद्धान्तों पर सदैव आधारित होना चाहिए। इसमें ज्यादा जोर अनौपचारिक तौर तरीकों तथा मिल जुलकर सहयोग करने की विधियों पर दिया जाता है और आपसी पारस्परिक हितों की पूर्ति में सद्भावना को ध्यान में रखा जाता हैं ताकि एक तरफ कर्मचारियों की कार्य-दशा में सुधार ला सके तथा दूसरी तरफ प्रशासन की कार्यकुशलता में बढ़ोत्तरी हो सके। इस प्रक्रिया का परिणाम इस बात पर निर्भर करता है कि किसी समझोते पर पहुंचने के लिए भागीदारी वाले पक्षों में कितनी काबिलियत है, अर्थात तुलनात्मक दृष्टि से कितनी योग्यता हैं। इसे नियोक्ता तथा कर्मचारी के मध्य पाये जाने वाली शक्ति सम्बन्ध का भी नाम दे सकते हैं।

इस इकाई द्वारा नागरिक सेवा कर्मचारी सम्बन्धों में संयुक्त परामर्श व्यवस्था के महत्व, उद्भव तथा विकास आदि का अध्ययन करेंगे।

## 8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- नागरिक सेवा कर्मचारी सम्बन्धों में संयुक्त सलाहकार मशीनरी के महत्व को समझ पायेंगे।
- संयुक्त सलाहकार मशीनरी के उद्भव की व्याख्या कर पायेंगे।
- संयुक्त सलाहकार मशीनरी की भूमिका का मूल्यांकन कर पायेंगे।
- उसके सुधार के सुझावों पर चर्चा कर पायेंगे।

## 8.2 नियोक्ता-कार्मिक सम्बन्ध का उद्भव एवं विकास

हमारी स्टॉफ समितियां ब्रिटेन की व्हिटले परिषदों के नमूने पर आधारित हैं। व्हिटलेवाद विभिन्न तलों पर नियोक्ता के रूप में राज्य के कर्मचारी वर्ग के मध्य समय.समय पर होने वाली चर्चा एवं विचार-विमर्श की एक पद्धति है। व्हिटले परिषदों का प्रारम्भ ब्रिटिश लोक सेवा में 1919 से हुआ हैं। 1919 के वर्ष में जब व्हिटलेवाद नामक एक

ऐतिहासिक धारणा का ब्रिटिश नागरिक सेवा कर्मचारी सम्बन्धों में सुधार लाने हेतु विकास किया गया तब अनेक देशों में सभी लोगों ने मानव सम्बन्धों के क्षेत्र में इस अनूठी कार्यप्रणाली की भूरि-भूरि प्रंशसा की। लोकसेवा के विभिन्न श्रमिक संघों के नेताओं, वरिष्ठ कोषाधिकारियों तथा सभी विभागीय प्रधानों के मतानुसार यह प्रणाली सफल सिद्ध हुई है। व्हिटलेवाद में औपचारिक एवं अनौपचारिक मंत्रणाओं तथा समझौतों के माध्यम से किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया जाता है अथवा मध्यस्थता कराने पर सहमति हासिल की जाती है। यह सलाह-मशविरे की तकनीक इतनी प्रभावी सिद्ध हुई कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अनेक देशों में इसका जादू छा गया। जिसके परिणाम स्वरूप थोड़े बहुत संशोधन के साथ इसे अन्य स्थानों पर भी अपनाया जाने लगा।

संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश नागरिक सेवा में कर्मचारी सम्बन्धों की देखभाल व्हिटले परिषदों की विधि की सहायता से की जाती है तथा नागरिक सेवा की राष्ट्रीय व्हिटलें परिषद सार्वजनिक सेवकों की सामान्य समस्याओं के बारे में संयुक्त परामर्श के लिए उत्तरदायी होती है चाहे वे किसी भी विभाग से सम्बन्धित क्यों न हो। जबकि विभागीय व्हिटले परिषदें उस विभाग की आन्तरिक समस्याओं से जूझने का कार्य करती है क्षेत्रीय व्हिटले समितियाँ क्षेत्रीय कार्य स्थितियों को प्रभावित करने वाले विषयों पर विचार-विमर्श करती है।

यह ध्यान देने की बात है कि जब भारत सरकार के कर्मचारी संगठनों ने लगभग तीन दशक तक संघर्ष किया, तब उन्हें ब्रिटिश व्हिटलें परिषदों के प्रतिमान पर आधारित यह कार्यप्रणाली हासिल हुई। यह मुद्दा पहली बार 1928 में तथा दूसरी बार 1942 में उठा तथा 1931 में श्रमिकों के विषय में गठित शाही आयोग ने यह सिफारिश की कि रेलवे के लिए एक संयुक्त परामर्शदायी कार्यप्रणाली का गठन किया जाए। हालांकि श्रम विभाग का इसके प्रति एक पक्षपाती दृष्टिकोण था तथापि गृह विभाग ने इन प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में कर्मचारियों की ऐसी कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं थी जिसके माध्यम से उनकी स्थिति में सुधार लाया जा सके। उनकी शिकायतें व समस्याएं सुनी तो जाती थी, किन्तु इनके निवारणार्थ कोई कदम नहीं उठाया जाता था। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास सन् 1946 में 'प्रथम वेतन आयोग' द्वारा किया गया था।

सन् 1947 में आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इसमें आयोग ने निम्न शब्दों में इस समस्या के बारे में अपना मत प्रकट किया था, ''सरकार को यह समझना चाहिए कि उसे अपने कर्मचारियों को यह विश्वास दिलाना आवश्यक है कि उनकी शिकायतों पर तुरन्त यथोचित विचार किया जायेगा। इस बात पर विशेष बल हम इस कारण दे रहे है कि हमारे सामने जो साक्ष्य है, उससे यह प्रकट होता है कि अधिकांश वर्गों के लोक कर्मचारियों में इस बात के प्रति निराशा ही नहीं अपितु अविश्वास की पूर्ण भावना व्याप्त है कि उनकी शिकायतों पर सरकार द्वारा शायद ही कभी ध्यान दिया जाता हो।'' आयोग का यह निष्कर्ष था कि ऐसा कोई साधन होना चाहिए जो ''कर्मचारी वर्ग तथा सरकार के मध्य सहयोग, परामर्श, चर्चा तथा वार्ता की व्यवस्था कर सके।'' आयोग का यह भी मत था कि यह सोचना गलत है कि व्हिटले प्रणाली जैसी कोई प्रणाली लाभकारी ढ़ग से भारत में लागू नहीं की जा सकती।

फलस्वरूप 1947 में आयोग ने कर्मचारियों के लिए व्हिटले कार्यप्रणाली की तरह ही संयुक्त परिषदों की स्थापना का सुझाव दिया। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की सेवाओं की मध्यस्थता के लिए कार्यवाहक अधिकरणों ट्रिब्यूनल्स की स्थापना की जाए। जैसे कि संयुक्त साम्राज्य (यूनाइटेड किगंडम) में नागरिक सेवा मध्यस्थता कार्यरत है। हालांकि, रेलवे तथा डाक व तार विभाग को पूरी योजना में शामिल नहीं किया गया, क्योंकि उन्हें औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में शामिल कर लिया गया था। यद्यपि भारत सरकार ने 1952 में व्हिटले योजना की स्थापना का फैसला ले लिया था पर 1954 में जाकर सरकार ने अपने सभी मंत्रालयों से कर्मचारी परिषदों की स्थापना का आग्रह किया।

### 8.2.1 कर्मचारी समितियाँ/परिषदें

भारत सरकार के निर्देषानुसार प्रत्येक मंत्रालय के लिए यह जरूरी हो गया है कि वह दो अलग-अलग कर्मचारी समितियों की स्थापना करे जिसमे पहली चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान करे और दूसरी समिति अन्य श्रेणी की जरूरतों का अनुमान लगाए ताकि उनकी वजह से सरकार तथा उनके कर्मचारियों के बीच में अच्छा सहयोग/तालमेल बैठ सके। ध्यान देने की बात यह है कि इन कर्मचारी परिषदों की भूमिका मात्र सलाहकारी ही थी। जहाँ तक चतुर्थ श्रेणी के अतिरिक्त अन्य कर्मचारियों के लिए समिति के गठन का सवाल है, उसमें निम्न प्रकार के सदस्य की व्यवस्था की गई-

1. अध्यक्ष- वह मंत्रालय का मुख्य सचिव अथवा संयुक्त सचिव की हैसियत का अधिकारी होगा और उसकी नामजदगी मंत्रालय करेगा।
2. मंत्रालय द्वारा अन्य सरकारी प्रतिनिधियों की नामजदगी अपने अधिकारियों में से की जाएगी तथा उनका स्तर अवर सचिव से कम का नहीं होगा।
3. प्रत्येक 20 सदस्यों की तरफ से एक कर्मचारी प्रतिनिधित्व के लिए रखा गया है, जिनका मंत्रालय में खण्ड अधिकारी, सहायक अधिकारी, स्टेनोग्राफर अर्थात आषुलिपिक तथा लिपिक वर्ग का स्तर होगा। इन वर्गों में से एक-एक प्रतिनिधि हर वर्ष परिषद में चुना जाएगा।
4. अध्यक्ष द्वारा कर्मचारी प्रतिनिधि के परामर्श से उनमें से ही एक व्यक्ति को परिषद का सचिव नामजद करेगा।

चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी समिति के बारे में निम्न निम्नलिखित तथ्य विचार करने योग्य है-

- मंत्रालय के उप सचिव को इस समिति की अध्यक्षता के लिए नामजद किया जाता है।
- मंत्रालय अपने प्रतिनिधियों के रूप में परिषद में सहायक के स्तर से कम के व्यक्ति को नामजद नहीं करता है।
- इस प्रकार प्रत्येक 20 सदस्यों में से एक कर्मचारी प्रतिनिधित्व करने के लिए रखा गया है ये प्रतिनिधि रिकार्ड छटनी कर्ताओं, जमादारों, चपरासियों तथा चौकिदारों के वर्गों में से चुने जाते है तथा हर वर्ग में से एक सदस्य प्रतिवर्ष लिया जाता है।
- समिति का अध्यक्ष अपने कर्मचारी प्रतिनिधियों के प्रत्येक वर्ग में से एक कर्मचारी को एक वर्ष के लिए सचिव नामजद करता है।

दोनों प्रकार की समितियों की बैठक त्रिमास में कम से कम एक बार अवश्य होती है। बैठक की गणपूर्ति के लिए 1/3 कर्मचारी सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है। बैठक में किन मुद्दों पर चर्चा की जायेगी, इसके बारे में लोगों को काफी समय पहले ही सूचित कर दिया जाता हैं ताकि सार्थक विचार-विमर्श हो सके। ध्यान रहे कि इनके फैसलों को न केवल दर्ज किया जाता है, अपितु उन्हें आवश्यक कार्यवाही हेतु सम्बन्धित मंत्रालय में भेजा भी जाता है।
कर्मचारी परिषदों के प्रमुख कार्य इस प्रकार है-

- कार्य के मानकों (स्टैण्डर्स) को बनाने के लिये दिये गये सुझावों पर ये विचार करती है।
- ये परिषद सेवा शर्तों को प्रभावित करने वाले मामलों में कर्मचारियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने के लिए कार्यप्रणाली प्रदान करती हैं।
- परिषदों के द्वारा कर्मचारी तथा अधिकारियों के बीच व्यक्तिगत सम्बन्धों की स्थापना की व्यवस्था की जाती है। जिससे कि उनके मध्य मधुर सम्बन्धों का विकास हो सके तथा कर्मचारियों को अपने कार्यो के प्रति गहन अभिरूचि लेने को प्रोत्साहित करती है।

परिषदों के अन्य प्रमुख कार्यों में, कर्मचारियों की कार्य स्थितियों के बारे में विचार-विमर्श करना, सेवा स्थितियों को नियमित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों व कर्मचारी कल्याण के विषय में चर्चा करना तथा कार्य की कुशलता एवम् मानकों के बारे में सलाह करना होता है। व्यक्तिगत मामलों पर बहस करने की अनुमति नहीं दी जाती है। अभी तक कर्मचारी परिषदों की कार्यप्रणाली को असंतोषप्रद पाया गया है। अनेक मंत्रालयों को जिन अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। उनमें प्रमुख निम्न हैं- एक तो अधिकांश मामलों में मंत्रालयों के अन्तर्गत ही निर्णयों पर नहीं पहुंचा जा सका तथा दूसरे जिन मामलों में समितियों ने कुछ निर्णय लिये भी उन्हें गृह, वित्त निर्माण एवं आवास तथा वितरण मंत्रालयों में स्पष्टीकरण तथा अनुमति के लिये भेजना पड़ा।

### 8.2.2 कर्मचारी समितियों/परिषदों की कार्यप्रणाली

केन्द्रीय मंत्री परिषद ने कर्मचारी परिषदों की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने हेतु एक उप समिति का गठन किया। इस उप समिति की सिफारिषों के आधार पर सभी मंत्रालयों को कुछ निर्देष दिये गये, जो इस प्रकार है-

1. कर्मचारी समितियों को नया नाम दिया जायें तथा अब उन्हें कर्मचारी परिषद कहा जाएं।
2. जो भी मामले (मुद्दा) कर्मचारी परिषदों द्वारा उठाया जाए उनका समाधान सम्बन्धित मंत्रालयों द्वारा जल्दी से जल्दी किया जाए।
3. अनसुलझे मामलों को समन्वयकारी समिति के सामने रखा जाना चाहिये जिसमें गृह, वित्त, कार्य, आवास तथा वितरण मंत्रालयों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना चाहिए।
4. ऐसी सम्भावनाओं का पता लगाया जाना चाहिए कि क्या प्रशासकीय मंत्रालयों की शक्तियों को घटाया जा सकता है जिससे कि सम्बन्धित रख रखाव इकाइयों के सामने मामला रखने में होने वाली लालफीताशाही को टाला जा सके।
5. गृह मंत्रालय में एक मुख्य कल्याणकारी अधिकारी नियुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही हर मंत्रालय में भी ऐसे ही अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिये।

यह भी स्मरणीय रहे कि मंत्रीमण्डलीय उपसमिति के निर्णयों के अनुसार कर्मचारी समितियों का नाम परिवर्तन कर उनके संविधान, लक्ष्यों तथा कार्य विधि प्रक्रिया में फेरबदल किये हुए ही परिषद कर दिया गया तथा एक ऐसी समन्वयकारी समिति का गठन किया गया जिसमें गृह, वित्त, कार्य, आवास तथा वितरण आदि सम्बन्धित विभागों के प्रतिनिधि शामिल हो, जिससे कि वे कर्मचारी परिषदों में अनसुलझे मामलों का समाधान कर सके। कर्मचारी परिषदों से सम्बद्ध प्रशासनिक मंत्रालय यह निर्णय भी करता है कि कौन से मामले (मुद्दे) समन्वयकारी समिति के सामने रखे जाने चाहिए।

इन कर्मचारी परिषदों ने अपने कार्यकाल (1954-59) में अनेक अनुशंसाएं/सिफारिशें की। उनमें से अधिकांश को विभिन्न विभागों/मंत्रालयों द्वारा स्वीकृत किया गया तथा कार्यान्वित किया गया। परन्तु वे अधिकांश गैर-जरूरी (अनावश्यक) मामलों से ही सम्बद्ध थी तथा सरकारी वेशभूषा सुधारने, प्राथमिक तथा अन्य किस्म की चिकित्सा सुविधाएं जुटाने, शीतल जल यंत्रों के लगाने, अवकाश को स्वीकृति देने, एवं परिवहन सुविधाओं से सम्बन्धित थी अर्थात न तो प्रशासन की कार्यप्रणाली में सुधार किया गया और न ही कर्मचारियों की प्रमुख शिकायतों पर ही ध्यान दिया गया। इस बारे में द्वितीय वेतन आयोग ने अपने प्रतिवेदन में यह मत स्पष्ट किया कि सरकार में संयुक्त परामर्श के सिद्धान्तों को स्वीकारने की इच्छा शक्ति का अभाव पाया जाता है जो कि विवादों को रोकने का एक प्रभावशाली साधन रहा है। इसलिए द्वितीय वेतन आयोग ने यह अनुशंसा की कि एक ऐसी मशीनरी का विकास किया जाये जो कि सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप में सुयंक्त राज्य की व्हिटले परिषद की कार्यप्रणाली की भावना के अनुरूप हो। इस प्रकार हमारे यहां पाई जाने वाली कर्मचारी समितियों तथा परिषदों का व्हिटले परिषदों से नाम मात्र का सम्बन्ध है, तथा वे उसके आदर्श भावना को व्यवहार में लाने में असफल रहीं हैं।

भारतवर्ष में सरकारी नागरिक कर्मचारियों ने भी सांझी मंत्रणात्मक मशीनरी के प्रति कम ही रूचि दर्शायी हैं। ध्यान रहे कि दूसरी तरफ जब सरकार ने कर्मचारी समितियों तथा परिषदों का श्री गणेश किया, तब उसने कर्मचारी संगठनों से कोई परामर्श भी नहीं किया इस प्रकार दोहरी भूमिका निभाने वाली मशीनरी को इकतरफा तरीके से लागू कर दिया गया। विवादास्पद मामलों में समाधान के लिए समझौते कराने वाली मशीनरी के अभाव में व्हिटले भावना को नहीं फैलाया जा सका संक्षेप में, कर्मचारी वर्ग परिषदें भले ही ब्रिटिश व्हिटले प्रणाली पर आधारित हो किन्तु उनमें व्हिटलेवाद की आत्मा और स्वरूप का अभाव है। अतः कर्मचारी वर्ग परिषदों की वर्तमान स्थिति यह है कि विभिन्न मंत्रालयों में वे केवल अलग-अलग सत्ता मात्र हैं। चूंकि इन कर्मचारी समितियों/परिषदों की प्रकृति सलाहकारी रही हैं, इस कारण से एक तरफ तो इनकी गतिविधियां सीमित रही, दूसरी तरफ उनसे जिस तरह अधिकारियों द्वारा निपटा गया उससे भी उनकी उपादेयता और अधिक क्षीण (घटती) होती चली गई। एक समस्या यह भी है कि हमारे यहां ब्रिटिश राष्ट्रीय व्हिटले परिषद की तरह केन्द्रीय संयुक्त कर्मचारी परिषद नहीं पाई जाती है जो कि सभी मंत्रालयों के कर्मचारियों के सामान्य रूप से काम में आने वाली समस्याओं पर मार्गदर्शन कर सके। यह भी स्मरणीय रहे कि नागरिक सेवा संघ/कर्मचारी के संगठित वर्गों ने इसके प्रति निष्ठा नहीं दिखाई और उन्होंने इसे केवल मात्र 'आंसू पौछने वाली कार्यवाही' माना। इनके असफल कार्यान्वयन के लिए वे उच्चस्तरीय अधिकारीगण भी उत्तरदायी थे जिनमें व्हिटले भावना का अभाव था। दूसरी तरफ इन समितियों में जो कार्मिक प्रतिनिधिगण मौजूद थे उनमें भी ऐसी नेतृत्व क्षमता का अभाव था। इस कारण से वे अपने पक्ष के विचार प्रभावशाली ढ़ग से नहीं रख पाए। यथार्थ (वास्तविक) रूप से व्यवहार में उन्होंने एक ऐसे मंच की भूमिका निभाई जहां पर कर्मचारी अपनी शिकायतों को खुलकर बता सकते थे तथा जिनमें वे सरकार के नुमाइन्दों के सामने अपनी समस्याओं को उजागर कर सकते थे।

निष्कर्षतः कर्मचारी परिषदें शिकायतें परिषदें बनकर रह गई और वे कोई समाधान नहीं रख पाई। जबकि ब्रिटेन में व्हिटलेवाद की सफलता का मुख्य कारण कर्मचारी संघों तथा परिषदों के बीच निकट सम्बन्ध हैं। जहां तक सरकारी पक्ष को अनुप्राणित करने वाली भावना का सम्बन्ध है, द्वितीय वेतन आयोग ने बड़ी तत्परता से यह मत व्यक्त किया हैं कि विवादों को रोकने के लिए संयुक्त परामर्श ही एक प्रभावशाली साधन सिद्ध हो सकता है। लेकिन सरकार इसे स्वीकार करने की इच्छुक प्रतीत नहीं होती।

## 8.3 नियोक्त-कार्मिक सम्बन्ध का उदय तथा अनिवार्य मध्यस्थता योजना

जैसा कि विदित है कि द्वितीय वेतन आयोग (1959) ने केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिये व्हिटले परिषद जैसी मशीनरी बनाने की सिफारिश की थी। जो कि झगडों का समाधान कर सके तथा विशेष रूप से औद्योगिक कर्मचारियों के मामलों से भी लड़ सके। आयोग ने समझौते के लिए संयुक्त मशीनरी के लिए अनिवार्य मध्यस्थता की रूपरेखा भी सुझायी, जो कि वेतन भत्ता, साप्ताहिक कार्यावधि तथा अवकाश के मामलों के हल में सहायक सिद्ध हो सके। वर्ष 1960 में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी 5 दिन (जुलाई 11-16) के लिए हड़ताल पर चले गए। उनकी प्रमुख मांग यह भी थी कि एक त्रिस्तरीय तंत्र (व्यवस्था) की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें स्थानीय या क्षेत्रीय परिषदें, विभागीय परिषदें तथा राष्ट्रीय परिषदें शामिल हो। स्थानीय या क्षेत्रीय परिषदों को केवल उन विषयों का निरीक्षण करना चाहिए जो किसी विशेष क्षेत्र या प्रदेश में स्थित सरकारी कार्यालयों से सम्बन्धित हो। परिषदों को किसी विशेष विभाग से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर ही विचार करने के अधिकार है, तथा प्रत्येक मंत्रालय में एक ऐसी परिषद होनी चाहिये। राष्ट्रीय परिषद को केवल उन विषयों पर ही विचार करना चाहिए जो कर्मचारियों के कार्य करने की परिस्थितियों एवं अवस्था से सम्बन्धित हो और उसे सामान्य कल्याण सम्बन्धी योजनाओं की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। जल्दी ही संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी की स्थापना की जाए। सरकार ने भी इसकी स्थापना का निर्णय लिया एवं एक योजना की रूपरेखा बनाई। इस योजना में क्षेत्रीय, विभागीय तथा केन्द्रीय स्तर

पर एक त्रिसूची तथा पूरक संयुक्त परामर्श की रूपरेखा प्रस्तावित की गई जो कि वर्तमान व्यवस्थाओं की सहकारिता में कार्य करेंगी।

इसमें केन्द्रीय सरकार के सभी तरह के कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया- चाहे वे डाक तथा तार विभाग, नागरिक उड्डयन विभाग तथा रक्षा मंत्रालय से ही सम्बद्ध क्यों नहीं हो। इस योजना मे एक मध्यस्थता अधिकरण की रूपरेखा भी प्रस्तावित की गई तथा उसके साथ सीमित अनिवार्य मध्यस्थता के प्रावधान की भी व्यवस्था की गई। वर्ष 1960-61 में सरकार ने संसद के समक्ष एक ऐसा 'बिल' पेश करने का भी फैसला किया जिससे न केवल संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी को वैधानिक जामा पहनाया जा सके, अपितु सरकारी कर्मचारियों को हड़ताल करने के अधिकार से भी वंचित किया जा सके इसका परिणाम यह हुआ कि कर्मचारी संगठनों ने इन प्रस्तावों का विरोध किया, तथा हड़ताल करने के अपने अधिकार को छोड़ने से मना कर दिया और इसी के साथ-साथ बाहरी तत्वों को संगठन में जोड़ने के अधिकार को भी सुरक्षित रखा। बाद में सरकार तथा कर्मचारी संगठनों से विचार-विमर्श के पश्चात् भारत सरकार ने वर्ष 1963 में यह निर्णय लिया कि संयुक्त परामर्शदायी तथा अनिवार्य मध्यस्थता की योजना का श्री गणेश किया जाए। इस नई योजना के अनेक पहलुओं के प्रति कर्मचारी संगठनों ने अपनी आशंका बताई और कतिपय प्रस्तावों पर अपनी असहमति दर्शायी। सरकार की भी यह इच्छा रही कि सभी प्रकार के कर्मचारियों को एक ही कानून के तहत् लाया जाए। इसलिए विभिन्न स्तरों एवं अनेक अवसरों पर लगभग तीन वर्ष तक व्यापक विचारों का आदान-प्रदान हुआ और जितनी भी आशंकायें थी उनका समाधान किया गया तथा यह आम सहमति भी बनी कि प्रस्तावित योजना का कार्य करने का एक अवसर अवश्य प्रदान किया जाए। इसलिए यह ध्यान देने योग्य बात है कि जहां तक केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी तथा अनिवार्य मध्यस्थता योजना का प्रश्न है उसे 28 अक्टूबर 1966 में लागू किया गया।

निष्कर्षतः संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी की स्थापना को 'एक नए अध्याय के प्रारम्भ' की उपमा (संज्ञा) दी गई, तथा यह आशा की गई कि इसकी स्थापना से सरकार तथा कर्मचारियों के सम्बन्धों में अर्थपूर्ण सहकारिता के नये युग का प्रारम्भ होगा।

## 8.4 संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी योजना की प्रमुख विशेषताऐं

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए संयुक्त परामर्शतंत्र तथा अनिवार्य पंचनिर्णय योजना में ''संयुक्त परामर्शदायी तंत्र स्थापित किये जाने की व्यवस्था है। इनमें कर्मचारियों को प्रभावित करने वाले मामलों पर विचार करने के लिए सरकारी पक्ष और कर्मचारी पक्ष के प्रतिनिधि शामिल किये जाते है। इस तंत्र की रूपरेखा इस प्रकार बनाई गई ताकि वह एक ओर तो मधुर सम्बन्ध बना सके तथा दूसरी ओर वह सरकार तथा कर्मचारियों के बीच सामान्य हित के मामलों में अधिकाधिक मात्रा में सहकारिता का विकास कर सके। इसके साथ ही यह भी लक्ष्य रखा गया कि इससे न केवल सार्वजनिक सेवा में गुणवत्ता का विकास होगा, अपितु कर्मचारियों का सर्वाधिक हित भी होगा।'' यह भी स्मरणीय रहे कि यह योजना सर्वथा स्वैच्छिक प्रकृति की है तथा जो भी पक्ष इसमें सहभागिता करना चाहते हैं चाहे वे पक्ष सरकार, कर्मचारी संगठनों तथा परिषदों से सम्बद्ध हो-उन्हें संयुक्त उद्देश्य के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने होते है। जिसके अनुसार दोनों ही पक्ष (सरकार एवं कार्मिक संगठन) इस भावना पर अपनी सहमति बताते है कि वे सभी मुद्दों पर समझौते के लिए खुले रूप से चर्चा में भाग लेंगे।

इस योजना की एक अद्भूत विशेष ता यह भी है कि इसके अन्तर्गत सरकार के औद्योगिक तथा सामान्य दोनों तरह के कर्मचारियों को शामिल किया गया हैं। इस मामले में यह योजना व्हिटले व्यवस्था से भिन्न भी है, क्योंकि ब्रिटेन की व्यवस्था तो केवल गैर औद्योगिक नागरिक सेवा से ही अपना सम्बन्ध रखती हैं। दूसरे संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी के अन्तर्गत सेवाओं के प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों को भी अपने तहत् लेकर नहीं चलती है तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों संघीय क्षेत्रों तथा पुलिस कर्मियों को भी इसमें नहीं जोड़ा गया है। यह भी स्मरणीय है कि

वहां पर ब्रिटेन की व्हिटले व्यवस्था का उद्देश्य यह भी है कि वह शिकायतों को सुनने की ही व्यवस्था नहीं करती है, अपितु वह नागरिक सेवा के विभिन्न वर्गों तथा स्तरों के प्रतिनिधियों के अनुभवों तथा दृष्टिकोणों को एक साथ रखकर किसी परिणाम तक पहुंचती है, ब्रिटेन में व्हिटलेवाद की सफलता का मुख्य कारण कर्मचारी संघों तथा परिषदों के बीच निकट सम्बन्ध है। जहां तक सरकारी पक्ष को अनुप्राणित करने वाली भावना का सम्बन्ध है द्वितीय वेतन आयोग ने बड़ी तत्परता से यह मत व्यक्त किया है कि विवादों को रोकने के लिए संयुक्त परामर्श ही एक प्रभावशाली साधन सिद्ध हो सकता हैं। संयुक्त परामर्शदायी तंत्र में सेवा और कार्य की परिस्थितियों, कर्मचारियों के कल्याण, क्षमता एवं कार्य के स्तर का विकास तथा भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासन सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श होता हैं। व्यक्तिगत मामलों पर इसमें विचार नहीं होता है। संयुक्त परामर्श दायी तंत्र में एक राष्ट्रीय परिषद, विभागीय परिषद तथा क्षेत्रीय और कार्यालय परिषदें होती हैं। संयुक्त परामर्श दायी मशीनरी त्रिस्तरीय व्यवस्था है और इसका प्रत्येक स्तर संगठन और कार्य की दृष्टि से पूर्णरूपेण स्वतंत्र होता है। संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी में निम्नलिखित पदाधिकारियों को छोड़कर शेष सभी लोक सेवक शामिल होते हैं- (1) वर्ग प्रथम सेवाएं जिन्हें अब ग्रेड 'ए' सेवाएं कहा जाता है। (2) केन्द्रीय सचिवालय सेवा के अतिरिक्त वर्ग द्वितीय ग्रेड 'बी' सेवाएं। (3) औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रबन्धकीय, प्रशासकीय एवं निरीक्षणात्मक पदों पर नियुक्त अधिकारी। (4) संघीय क्षेत्रों के कर्मचारी (5) पुलिस कर्मचारी।

यद्यपि भारतीय संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी योजना को ब्रिटेन की व्हिटले व्यवस्था के मॉडल (प्रतिमान) पर आधारित किया गया है तथापि वह उस आदर्ष व्यवस्था की मूल भावना तथा सुदीर्घ अनुभव को समेटने में असफल रही है। निष्कर्षतः जहां हमारी व्यवस्था संयुक्त परामर्शदायी किस्म की रही है, वहां ब्रिटिश प्रणाली द्विपक्षीय सहभागिता की भावना पर आधारित हैं।

## 8.5 परिषदों के कार्य

संयुक्त परिषदें उन सभी मामलों का समाधान करती है जो कि सभी के लिए कार्य की स्थिति, गुणवत्ता, कार्यकुशलता तथा कर्मचारी कल्याण के विषय के होते हैं। हालांकि जहां तक भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासन के मुद्दे होते है उनके विषय में सामान्य सिद्धान्तों तक ही चर्चा सीमित रहती है और व्यक्तिगत मामले विचार के लिये नहीं रखे जाते हैं। परिषद जिन क्षेत्राधिकार के मामलों को उचित समझती है, उनके विषय में अध्ययन समितियों की स्थापना कर देती है तथा जब परिषदें अधिकारियों तथा कर्मचारियों से मिलकर किन्ही समझौतों तक पहुंचती है तब उन्हें अन्तिम स्वीकृति के लिये मंत्रीपरिषद के समक्ष स्वीकृति हेतु भेज दिया जाता है। स्वीकृति के पश्चात् ही वे कार्यान्वित हो पाते है। यदि मामला मध्यस्थता के योग्य है तथा अन्तिम असहमति को दर्ज कर दिया जाता है तो मामला मध्यस्थता के लिए भेजा जाता है।

### 8.5.1 राष्ट्रीय परिषद

वास्तव में राष्ट्रीय परिषद एक सर्वोच्च निकाय है इसमें सरकार एवं कर्मचारियों, दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं। मंत्रिमंडलीय सचिव इसका अध्यक्ष होता हैं। सरकारी पक्ष के सदस्यों की संख्या 25 होती है, जो केन्द्रीय सरकार के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। कर्मचारियों के द्वारा अधिकतम 60 सदस्य मान्यता प्राप्त कर्मचारी सभा द्वारा मनोनीत किये जाते है। जहां तक कर्मचारी पक्ष का सवाल है उनके प्रतिनिधियों का चयन कर्मचारियों के परिषदों द्वारा किया जाता है इन संघों के स्थानों का बंटवारा परिषद के अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।

यह भी स्मरणीय है कि इस बंटवारे का आधार वह संख्यात्मक शक्ति होती है जो कि हर मंत्रालय द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की (तादाद) संख्या के अनुपात में होती है।

इन विभिन्न कर्मचारी सभाओं में स्थानों का वितरण परिषद का अध्यक्ष उनसे परामर्श करके करता है कर्मचारी पक्ष अपने सदस्यों में से एक नेता चुनता है। राष्ट्रीय परिषद सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित सामान्य बातों पर विचार करती है, जैसे- न्यूनतम पारिश्रमिक, महंगाई भत्ता, कुछ सामान्य वर्ग लिपिक, चपरासी, निम्न श्रेणी के कर्मचारियों के मामले। इसके अतिरिक्त, ऐसे मामलों पर भी परिषद विचार करती है जो दो या अधिक विभागों के कर्मचारियों से सम्बन्धित होते है। राष्ट्रीय परिषद ऐसे किसी मामले पर विचार नहीं करती जिसका सम्बन्ध किसी एक विभाग के कर्मचारियों से हो। प्रति चार माह में परिषद का कम से कम एक अधिवेशन होता है। किसी मामले पर विचार होने के पश्चात उसे पुनः एक वर्ष के बाद ही उठाया जा सकता है। निष्कर्षत: परिषद ऐसे मामलों से नहीं जुड़ती हैं जिसका लेना देना किसी एक विभाग से होता हैं। सामान्यत: राष्ट्रीय परिषद तभी मिल सकती है जबकि आवश्यकता हो पर फिर भी वह चार महीनों से पहले नहीं बैठती है। हालांकि यदि अध्यक्ष स्वंय ऐसा करना चाहे या दोनों पक्षों में से कोई एक पक्ष ऐसा करने का आग्रह करे तो एक विशेष बैठक का आयोजन किया जा सकता है। जहां तक बैठक की गणपूर्ति का सवाल है, वह सरकारी तथा कर्मचारी पक्षों की एक तिहाई उपस्थिति से तय की गई है। इसी परिवेश में राष्ट्रीय परिषद दो स्थाई समितियों की स्थापना भी करती है जो कि क्रमश: औद्योगिक तथा गैर-औद्योगिक कर्मचारियों से सम्बन्धित मामलों का समाधान करती है। परिषद चाहे तो वह किसी मामले को शीघ्र समाधान के लिए किसी स्थायी समिति को भी सौंप सकती है। परिषद तथा समितियां अपने सदस्यों में से उपसमितियां भी नियुक्त करती है जो कि अपने कार्यक्षेत्र में पड़ने वाले किसी भी मामले का अध्ययन करती है तथा अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है।

सांझी (मिली-जुली) मंत्रणात्मक कार्यप्रणाली की योजनाओं की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि राष्ट्रीय परिषद अपनी भूमिकाएं कैसे निभाती है। राष्ट्रीय परिषद से यह उम्मीद की जाती है कि वह राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय सरकार के सभी कार्मिकों को प्रभावित करने वाले मामलों तथा उनकी सभी शिकायतों के समाधान के लिए न केवल एक कार्यप्रणाली विकसित करे अपितु वह उसका समाधान भी करे। स्मरणीय है कि वर्ष 1966 में जब से इस परिषद की स्थापना हुई है, तब से लेकर अब तक के कार्यकाल में इसको मिश्रित सफलताएं हासिल हुई है। प्रारंभिक काल में यह ज्यादा समझौते नहीं कर पायी, परिणामस्वरूप कार्मिक सितम्बर, 1968 में एक दिन की हड़ताल पर चले गए और उन्होंने शिकायत की कि सरकार का व्यवहार उपेक्षापूर्ण रहा है। इस हड़ताल के कारण अनेक कार्मिक संगठनों की मान्यता सरकार ने समाप्त कर दी। ऐसा कई वर्षों तक चलता रहा। इसी कारण राष्ट्रीय परिषद् लुन्ज-पुन्ज स्थिति में काम करती रही। यद्यपि राष्ट्रीय परिषद् अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक सफल नहीं रही तथापि इसने कर्मचारियों की शिकायतों से निपटने वाली प्रभावशाली कार्यप्रणाली के रूप में भूमिका निभाई, तथा सरकार के साथ संघर्ष की मात्रा घटाई। हालांकि यह निश्चित है कि राष्ट्रीय परिषद् भविष्य में बने रहने वाली है क्योंकि उसने अपनी जड़े जमा ली है। यही कारण है कि उसने संयुक्त सलाह मशविरे तथा सहकारिता की व्यवस्था विकसित करने में सफलता हासिल की हैं।

### 8.5.2 विभागीय परिषदें

संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी में प्रत्येक विभाग के लिए विभागीय परिषद् की व्यवस्था है। किन्तु एक ही मंत्रालय के अधीन दो या अधिक छोटे विभागों की एक परिषद की स्थापना भी की जा सकती है। जहां तक इन विभागीय परिषदों के कार्यक्षेत्र एवं कार्यो का सवाल है उसमें वे सभी मामले शामिल है जो कि सेवा-शर्तो तथा कर्मचारियों के कल्याण तथा कार्य स्तर एवं गुणवत्ता में सुधार या बढोतरी से सम्बन्धित होते है। हालांकि, जब भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासन के मामले उठते है तब इनकी भूमिका सामान्य सैद्धान्तिक चर्चा तक ही सीमित रहती है तथा व्यक्तिगत मामलों पर भी विचार नहीं किया जाता है। संक्षिप्त रूप में कहा जाये तो ये परिषदें मंत्रालय/विभाग में कार्यरत सभी कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान करती है। तथा वे उनसे सम्बद्ध तथा अधीनस्थ विभागीय

कार्यालयों के मामले भी देखती है। विभागीय परिषद् का सम्बन्ध उन सब कर्मचारियों से होता है जो किसी मंत्रालय के विभाग और उसके अधीनस्थ कार्यालयों में कार्य करते है। इस संयुक्त मशीनरी की योजना के हिसाब से विभिन्न विभागों में 21 विभागीय परिषदें गठित की जानी चाहिए, लेकिन वास्तविकता यह है कि अभी तक लगभग 15 ही परिषदें बन पाई है। प्रारम्भ में एक कठिनाई तो यह आई कि अनेक मंत्रालयों में कर्मचारियों के मान्यता प्राप्त संगठन नहीं थे, ऐसी स्थिति में विभागीय परिषदों के गठन के काम मे काफी परेशानी आयी। जहां तक अधिकारिक प्रतिनिधित्व का सवाल है, वहां यह कार्य मंत्रालय का सचिव करता है। यह सरकारी प्रतिनिधि होता है और वही विभागीय परिषद् का अध्यक्ष होता है। सरकारी पक्ष में अधिक से अधिक 10 प्रतिनिधि शासन द्वारा मनोनित किये जाते है। कर्मचारी प्रतिनिधियों की संख्या 20 से लेकर 30 तक घटती बढ़ती रहती है तथा उनकी संख्या कर्मचारियों की कुल संख्या और विभाग की श्रेणियों और संख्याओं पर निर्भर होती है। कर्मचारियों के प्रतिनिधि 3 वर्ष के लिए कर्मचारी सभाओं द्वारा चुने जाते हैं। विभागीय परिषद् का कम से कम तीन या चार माह में एक अधिवेषन होना चाहिये । इन बैठकों की गणपूर्ति (कोरम) कर्मचारी तथा अधिकारी की कुल सदस्य संख्या का 1/3 होती हैं। यदि परिषद चाहे तो वे काम चलाऊ आधार पर कुछ समितियों की स्थापना कर सकती है।

### 8.5.3 क्षेत्रीय परिषदें

संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी की योजना हर विभाग को क्षेत्रीय आधार पर परिषदें गठित करने की अनुमति देती हैं। क्षेत्रीय परिषदों का सम्बन्ध किसी क्षेत्र या स्थानीय मामलों से होता है और ये परिषदें अपने क्षेत्र में काम की परिषदों, कर्मचारियों की कल्याण क्षमता और काम के स्तर के विकास पर विचार करती हैं। इनकी सदस्य संख्या क्षेत्रीय कर्मचारियों की तादाद पर निर्भर करती हैं। यह योजना संविधान तथा परिषद के सदस्य संख्या के बारे में मौन हैं। वैसे भी इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई है, क्योंकि विभागीय अधिकारियों के विभागों में इस संदर्भ में अनेक शंकाए हैं। इनकी स्थापना तभी की जा सकती है, जबकि विभाग की संरचना की दृष्टि से संभव हो। क्षेत्रीय परिषद में 5 सदस्य सरकारी पक्ष के और 8 कर्मचारी पक्ष के होते हैं। कर्मचारीगण अपने में से एक व्यक्ति को सचिव नियुक्त करते हैं। स्मरणीय है कि ये विभिन्न स्तर एक दूसरे से पृथक होते हैं और उनमें कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं हैं। पदसोपान की दृष्टि से ये एकीकृत संस्थान नहीं हैं और इनसे संसदीय शासन के प्रमुख सिद्धान्त मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व का अतिक्रमण नहीं होता हैं। क्षेत्रीय परिषदें दो महीने के अन्दर कम से कम एक बार मिलती हैं। गणपूर्ति एक तिहाई सदस्यों की उपस्थिति से होती हैं। यदि परिषद् किसी मुद्दे पर सहमत नहीं होती है तो वह मुद्दा सम्बन्धित विभागीय संस्था के विचार हेतु रखा जाता है। यह बात स्मरणीय रहें कि इस स्तर पर मध्यस्थता का विकल्प नहीं है। संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी की योजना के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया जाए, क्योंकि वे योजना प्रभावों को नीचे तक पहुंचाते है, वे अधिकारी तथा कर्मचारी प्रतिनिधियों (दोनों) के लिए प्रषिक्षण क्षेत्रों में भूमिका निभाते हैं तथा वे इस योजना में अधीनस्थ स्तर के कर्मचारियों/अधिकारियों को भी जोड़ते हैं। हालांकि यह एक वास्तविकता है कि इन परिषदों की स्थापना में अधिक कामयाबी नहीं मिल पाई है, क्योंकि एक तरफ तो मान्यता प्राप्त कर्मचारी संगठनों का अभाव पाया जाता है तथा दूसरी और स्थानीय स्तर के अधिकारियों का व्यवहार भी असहयोग जनक रहता है।

## 8.6 मध्यस्थता मण्डल

दो पक्षों मे मतभेद की स्थिति में संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी तथा अनिवार्य मध्यस्थता की योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए अनिवार्य मध्यस्थता की व्यवस्था की गई हैं। इस योजना के अनुच्छेद-19 के अन्तर्गत सरकार से एक मध्यस्थता मण्डल बनाने की अपेक्षा की गई है जिसमें एक अध्यक्ष जो कि एक स्वतंत्र व्यक्ति होता है एवं राष्ट्रीय परिषद् के सरकारी तथा कर्मचारी पक्षों द्वारा प्रस्तुत किये गये पांच-पांच व्यक्तियों के

पैनल से एक-एक व्यक्ति को लेते हुए दो अन्य सदस्य होते है। ध्यान रहे कि प्रथम मध्यस्थता मण्डल की स्थापना 1968 में ही हो गई थी। असहमति होने की स्थिति में ऐसे मुद्दे जो अनिवार्य पंचनिर्णय के अधीन नहीं सुलझते है, उन्हें कर्मचारियों द्वारा इसके लिए अनुरोध किये जाने पर तीन मंत्रियों की समिति के पास भेजा जा सकता है। पंचनिर्णय मण्डल के निर्णय दोनों पक्षों के लिए बाध्यकारी है, किन्तु इनको रद्द करने का अधिकार संसद के पास है। मध्यस्थता का क्षेत्राधिकार निम्नलिखित मामलों तक ही सीमित होता है- (1) वेतन तथा भत्ते। (2) प्रति सप्ताह काम के घंटे। (3) किसी वर्ग के कर्मचारियों की छुट्टी की सुविधाएं। मध्यस्थता किसी नीति सम्बन्धी विवाद के संदर्भ में ही संभव है। व्यक्तिगत मामलों में पंच फैसलों का प्रावधान नहीं है। राष्ट्रीय परिषद् की प्रथम तथा द्वितीय बैठकों में ही भारतीय सरकार ने कर्मचारियों की प्रमुख मांगों तथा जरूरत के मुताबिक कम से कम दिये जाने वाले वेतन को तय करना, मूल वेतन में महंगाई भत्ते को जोड़ना आदि को अनिवार्य मध्यस्थता हेतु पेश करने से मना कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस मुद्दे को लेकर कर्मचारीगण 16 सितम्बर, 1968 को हड़ताल पर चले गए। वैसे इनमें से अधिकांश मामले वेतन श्रृखंलाओं तथा भत्तों से सम्बन्धित थे और मण्डल ने ज्यादातर मामलों में कर्मचारियों का ही पक्ष लिया है। अंततः यही कहा जा सकता है कि भारत में अनिवार्य मध्यस्थता प्रणाली ने सरकार में मधुर कर्मचारी अधिकारी सम्बन्धों की स्थापना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. ब्रिटेन में व्हिटले परिषदों का प्रारम्भ कब हुआ?
2. भारत सरकार ने व्हिटले योजना की स्थापना का फैसला कब लिया?
3. कौन से वेतन आयोग ने केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए व्हिटले परिषद जैसी मशीनरी बनाने की शिफारिश की थी?
4. ब्रिटेन में व्हिटलेवाद की सफलता का मुख्य कारण क्या था?

## 8.7 सारांश

स्पष्ट है कि भारत में कार्मिक प्रशासन के क्षेत्र में नागरिक सेवा कर्मचारी सम्बन्धों का विषय दिन-प्रतिदिन महत्वपूर्ण होता जा रहा हैं। ब्रिटेन की तरह ही हमारे देश में भी वर्ष 1966 से संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी तथा अनिवार्य मध्यस्थता की योजना लागू कर दी गई। यद्यपि इन दोनों में अनेक व्यवस्थागत तथा अन्य भेद पाये जाते हैं। हालांकि यह सत्य है कि भारत में संयुक्त परामर्श यंत्र का भविष्य सुनहरा है, बावजूद इसके उसको शुरूआत में ही कई गलतफहमियों तथा परेशानियों का सामना करना पड़ा है। यह सही है कि संयुक्त परामर्श तथा मध्यस्थता की प्रणाली की प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र की अनेक सीमाएं है। हांलाकि हमारी सोच यह भी है कि यदि संयुक्त परामर्श के कार्यक्षेत्र को बढ़ा दिया जाए और प्रत्येक कर्मचारी को प्रशासन में भागीदारी करने का पूरा मौका दिया जाए, तो निश्चय ही उनका कार्मिक प्रशासन में योगदान तथा सहयोग अनेक गुणा बढ़ जाएगा।

## 8.8 शब्दावली

मध्यस्थता निर्णय (फैसला)- वह निर्णय जो कि मध्यस्थों द्वारा किया जाता है।

अनिवार्य मध्यस्थता- नियोक्ता-कर्मचारी विवादों को सुलझाने के लिए यह एक कार्यप्रणाली होती है जिसमें फैसला करने का काम एक तीसरा पक्ष करता है और जिसके फैसले सभी के लिए समान रूप से बाध्यकारी तथा सर्वोच्च होते हैं।

व्हिटले परिषदें- वर्ष 919 से ही ब्रिटेन में व्हिटले परिषदें पाई जाती है। इसमें दो अंग होते हैं, जहाँ पहला भाग नागरिक सेवा की सामान्य समस्याओं (राष्ट्रीय स्तर पर) से निपटता है, वहीं दूसरा भाग विभागीय स्तर पर कार्य करता है तथा जिला स्तर पर (जो पूरे देश में फैली है) भी कतिपय समितियाँ कार्य करती है।

सारत- इन परिषदों के गठन के पीछे मूल भावना यह थी कि कर्मचारीगण तथा अधिकारीगण आपसी विचार-विमर्श के जरिए किसी एक राय पर पहुँचे जिससे दोनों ही पक्षों को पूरी तरह से सन्तोष का अनुभव हो सके अर्थात् ये परिषदें एक ऐसे मंच की भूमिका निभाती है जिनके जरिए दोनो पक्ष एक जगह किसी मेज-कुर्सी के पास बैठकर एकमत से फैसला करती है।

## 8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** सन् 1919 में, **2.** सन् 1954 में, **3.** द्वितीय वेतन आयोग ने, **4.** कर्मचारी संघों तथा व्हिटले परिषदों के बीच निकट का संबंध

## 8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. भास्कररावे हैवी, 1978, इक्प्लॉयर- इम्प्लाई रिलेशंसः ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एण्ड इट्स इम्प्लॉइस, कसेप्ट्य पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली।
2. सक्सेना, प्रदीप 2012, पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेंट, प्रिंटवेल पब्लिशर्स, जयपुर।
3. डे. बाटा के. 1985, कॉफ्लिक्ट मैनेजमेण्ट इन गवर्नमेंट- जे.सी.एम., स्टाईल। इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जुलाई-सितम्बर, 1985


## 8.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. भास्कररावे हैवी, 1978, इक्प्लॉयर- इम्प्लाई रिलेशंसः- ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एण्ड इट्स इम्प्लॉइस, कसेप्ट्य पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली।
2. सक्सेना, प्रदीप 2012, पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमेंट, प्रिंटवेल पब्लिशर्स, जयपुर।
3. डे. बाटा के. 1985, कॉफ्लिक्ट मैनेजमेण्ट इन गवर्नमेंट- जे.सी.एम., स्टाईल। इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जुलाई-सितम्बर, 1985


## 8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संयुक्त परार्मशदायी मशीनरी तथा अनिवार्य मध्यस्थता योजना की समालोचना प्रस्तुत कीजिये।
2. मध्यस्थता मण्डल के गठन पर प्रकाश डालिए।
3. सयुंक्त परामर्शदायी मशीनरी की राष्ट्रीय परिषद् की भूमिका का परीक्षण कीजिये।
4. भारत सरकार में संयुक्त परामर्शदायी मशीनरी के विकास पर अपने विचार प्रकट कीजिये।
5. मधुर कर्मचारी सम्बन्धों की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
6. सयुंक्त परामर्शदायी मशीनरी तथा अनिवार्य मध्यस्थता योजना की समालोचना प्रस्तुत कीजिए।
7. मध्यस्थता मण्डल के गठन पर प्रकाश डालिए।
8. सयुंक्त परामर्शदायी मशीनरी की राष्ट्रीय परिषद् की भूमिका का परीक्षण कीजिये।

# इकाई- 9 कार्मिक संघ

**इकाई की संरचना**

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 कर्मचारी संघ की आवश्यकता
9.3 कर्मचारी संघों के उद्देश्य
9.4 कर्मचारी संघों का विकास
9.5 संघों तथा संस्थाओं के गठन का अधिकार
9.6 कर्मचारी संघों के प्रमुख कार्य
9.7 कर्मचारी संघों में भर्ती के अधिकार पर लगने वाले उपबन्ध (पाबन्दियाँ)
9.8 मान्यता देने की विधियाँ
9.9 सारांश
9.10 शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.14 निबन्धात्मक प्रश्न

## 9.0 प्रस्तावना

सार्वजनिक संघ में नियोक्ता-कर्मचारी सम्बन्ध व्यापक रूप से नागरिक सेवा के संघवाद के स्वरूप पर निर्भर करते हैं। आपसी सम्बन्धों में तालमेल तथा वैमनस्य सरकारी कर्मचारियों में संघवाद की सुदृढ़ता, तथा कमजोरियों और दर्शन पर निर्भर करता हैं। इसी भांति नागरिक-कर्मचारी के बीच सम्बन्ध की आपसी समस्याओं को सुलझाने में सरकारी नियोक्ता की बदलती हुई मनोदशा उसके तानाशाही या लोकतांत्रिक दृष्टिकोण द्वारा संचालित होती हैं। इस ईकाई में हम न केवल नागरिक सेवा संघवाद का ही अध्ययन करेंगे, अपितु कर्मचारी संघ के प्रमुख प्रकार्यों तथा कार्यकलापों की भी जाचँ पड़ताल करेंगे तथा कर्मचारी संघों के उद्भव तथा विकास पर भी प्रकाश डालेंगे।

## 9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- सामान्य रूप से नागरिक सेवाओं में संघवाद के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता के पश्चात् भारतवर्ष में कर्मचारी संघों के उद्गम तथा विकास को समझ सकेंगे।
- संघ बनाने के अधिकार से सम्बद्ध कतिपय पहलुओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कर्मचारी संघों के प्रमुख कार्यों तथा कियाकलापों की पहचान कर सकेंगे।
- संघों/संस्थाओं को मान्यता देने की विधियों की भी व्याख्या कर सकेंगे।

## 9.2 कर्मचारी संघ की आवश्यकता

बुनियादी सवाल यह है कि आखिरकार नागरिक सेवा कोई संगठन क्यों बनाते हैं तथा वे क्यों उसमें सहभागिता करते है? यह सवाल इसके गठन तथा कार्यप्रणाली को जानने से ज्यादा महत्व रखता है। वास्तव में ये संघ नागरिक

सेवकों एवं उनके समूहों की उपज होती है जिनके अनेक तथा बहुआयामी उद्देश्य होते हैं। कार्ल मार्क्स के अनुसार, ''कर्मचारी एवं नियुक्तिकर्ता के हित परस्पर भिन्न एवं एक-दूसरे के विरोधी होते हैं।'' संगठन चाहे व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, दोनों में ही नियुक्तिकर्ता मुख्यतः यह चाहता है कि वह कर्मचारियों के वेतन, मनोरजंन, कल्याण, निवास स्थान, बालकों की शिक्षा आदि पर कम से कम व्यय करके अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करे। नियुक्तिकर्ता अपने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रभावशील और अधिक सफल होता है, क्योंकि उसके हाथ में आर्थिक शक्तियाँ होती हैं तथा वह राजनैतिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है। दूसरी ओर कर्मचारी अपेक्षाकृत कमजोर स्थिति में होता है। यद्यपि उसके हित और लक्ष्य नियुक्तिकर्ता से भिन्न एवं विपरीत होते हैं, तथापि वह इन्हें प्राप्त करने के लिए उतनी शक्ति एवं बाध्यता का प्रयोग करने में असमर्थ रहता हैं। कर्मचारी वर्ग का मुख्य आकर्षण वेतन की मात्रा और सेवा से मिलने वाला सामाजिक सम्मान, आत्म गौरव एवं अन्य कल्याणकारी उपादान हैं। वह इन सबको अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त करना चाहता हैं। नियुक्तिकर्ता और कर्मचारी वर्ग के इन विरोधी हितों की पृष्ठभूमि में हितों के बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए कर्मचारियों को संघ और संस्थाओं का निर्माण करना होता हैं। पिगोर्स तथा मेयर्स के मतानुसार, संघवाद उन कर्मचारियों की बुनियादी आकांक्षाओं से उत्पन्न होता है जो कि मानसिक रूप से इस बात के लिए कि वे '' एकला चालों रे'' की नीति की अपेक्षा संघ की सदस्यता के जरिए ही ज्यादा से ज्यादा हासिल कर सकते हैं।

सरकार भी श्रमिक संघ की सदस्यता इस आधार पर लेने के लिए प्रोत्साहित करती है कि वह प्रतिनिधि संस्थाओं के जरिए सेवा शर्तों के विषय में अपने सेवकों से ज्यादा अच्छी तरह समझौते कर सकती है तथा वे अच्छे कर्मचारी सम्बन्धों को भी बढ़ावा दे सकती हैं। साधारणतः (आमतौर) यह भी देखा गया है कि सरकार की सीमीत दृष्टि तथा संरचना में सीमित वैचारिक आदान-प्रदान के कारण ही संगठन का विकास होता हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ये संगठन उस समाज के विश्वासी प्रतिनिधि होते है जिससे कि उनका उद्भव होता हैं। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि ये संगठन दो प्रमुख भूमिका निभाते दिखाई देते है, एक तरफ ये अपने कर्मचारियों की भलाई तथा सुधार के लिए आवश्यक साधन जुटाने का एक प्रभावी साधन बनकर उभरते है, दूसरी तरफ इन्होंने सरकार पर भी दबाव डाला है कि वे इनसे निपटते समय उदार रहे।

वास्तविकता यह भी है कि नागरिक सेवकों को न तो हड़ताल करने का अधिकार दिया गया है न ही वे नागरिक सेवा नियमों के तहत किसी किस्म की राजनीतिक गतिविधियों में भाग ले सकते है। इसलिए उन्होनें एक ऐसी मशीनरी बनाने के प्रावधान की मांग की जो कर्मचारियों की शिकायतों का समाधान कर सके। ये सरकारी मशीनरी उनकी शिकायत तथा कठिनाइयों को भलि-भांति सुन सकेगी। इसलिए उनको कर्मचारी संघ बनाना आवश्यक लगता है जिससे वे अपनी समस्याएं प्रभावी ढंग से रख सके। इन संघों में रहकर वे अपने आपको ''एकला चालों रे'' की नीति की अपेक्षा अधिक सुरक्षित, स्वाधीन तथा साहसी समझते हैं। कर्मचारी संघ ही नागरिक सेवकों को प्रशासनिक अधिकारियों के सामने अपनी दिन-प्रतिदिन की समस्याएं तथा शिकायतें उठाने में सहायक सिद्ध होते है, क्योंकि कर्मचारी प्रार्थना-पत्रों तथा याचिकाओं के माध्यम से अपनी कठिनाइयों तथा शिकायतों को सामने रखते है और फिर ये संघ प्रबन्धक वर्ग से अनौपचारिक वार्तालाप करते हैं। नागरिक सेवक भी इन संघों की सदस्यता अपनी सेवाओं में इसलिए लेते है कि बिना सामूहिक प्रतिनिधित्व के वे अपनी विशेष तथा अनेक प्रकार की जरूरतों की पूर्ति नहीं कर सकते अर्थात सघों की सदस्यता से ही वे अपने हित साधन कर सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि इससे उनकी चिन्ता तथा परेशानियों में कमी आएगी तथा उन्हें अच्छा जीवन यापन करने का अवसर मिलेगा जबकि संघीकरण का मूल कारण यह रहा है कि संघ लगातार पुनर्गठन तथा सुधार के शिकार होते रहे है। इसी को मध्यनजर रखते हुये कर्मचरियों की सुरक्षा तथा सेवाशर्तों में सुधार की बात भी उठाई गई इस संदर्भ में हम्प्रेज ने लिखा है कि, जैसे नागरिक सेवा की बदलती हुई भूमिकाओं तथा संरचना ने संघ के स्वरूप तथा लक्ष्यों

को निर्धारित किया है जो कि राज्य कर्मचारियों में विकसित हुए है, वैसे ही नागरिक सेवा की प्रकृति से भी इन संघों को मिली सफलता की मात्रा प्रभावित हुई हैं।

## 9.3 कर्मचारी संघों के उद्देश्य

कर्मचारी संघों ने प्रारम्भ से ही अपने को प्रशासन का एक हिस्सा माना है तथा वे राष्ट्रीय विकास के काम में पूर्ण सहभागिता निभाने का अवसर हासिल करने के लिए उत्सुक रहते हैं। इससे अभिप्राय यह है कि कर्मचारी संगठन एक ठोस तथा प्रगतिशील प्रशासन के लिए एक सकारात्मक कारण सिद्ध होते हैं। इन संगठनों की स्थापना के निम्नलिखित लक्ष्य होते है जो कि निम्नांकित हैं-

1. संघों एवं संस्थाओं के माध्यम से सरकारी कर्मचारी व्यवस्थापिका शाखा एवं प्रबन्ध के सम्मुख अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं। अनेक ऐसे विषय होते हैं जो केवल पर्यवेक्षकों एवं विभागाध्यक्षों की शक्ति के बाहर होते हैं। उनको सुलझाने के लिए उन्हें कर्मचारियों और उनके प्रतिनिधियों के साथ सहयोग करके चलना होगा।
2. संघ अथवा संस्था एक प्रकार से कर्मचारी का ही व्यापक व्यक्तित्व है। संघ जो कुछ करता है अथवा करने का प्रयत्न करता है वह सब कर्मचारी से धनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। वास्तव में कर्मचारी और संस्था के बीच एकरूपता स्थापित हो जाती है और संस्था के माध्यम से कर्मचारी अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति कर लेता है।
3. जब कभी सेवीवर्ग प्रबन्ध को एक विषय विशेष पर कर्मचारियों का मत जानने की आवश्यकता होती है तो वह उनके संघ या संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करके ऐसा करता है। संघ अथवा संस्थाओं के अभाव में पर्यवेक्षकों एवं उच्चधिकारियों द्वारा स्पष्ट किया गया मत वस्तुतः मजदूरों का मत नहीं होता है।
4. स्वेच्छा पर आधारित कर्मचारी-संस्थाओं द्वारा सदस्यों की स्वाभाविक एवं सामाजिक महत्वांकाक्षाओं को पनपने के अवसर प्रदान किये जाते हैं। ये अवसर कर्मचारी को अपना एक जैसा कार्य करते रहने पर प्राप्त नहीं हो पाते। कोई भी कर्मचारी अपने पद के दायित्वों को पूरा करने मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वरन् उसके व्यक्तिव के कुछ अन्य पहलू भी होते हैं, जिन्हें संतुलित करना उसका कर्तव्य है। संघों एवं संस्थाओं का सदस्य बनने के बाद कर्मचारी में स्वाभिमान विकसित होता है तथा उसमें अपने कार्य के प्रति सन्तोष की भावना जाग्रत होती हैं। कर्मचारी संघों द्वारा अपने सदस्यों में नेतृत्व के गुणों का विकास किया जा सकता हैं।

कर्मचारी, संघ सदस्यों में यह भावना भी जाग्रत करते है कि वे उसके माध्यम से अपने कतिपय व्यक्तिगत लक्ष्यों को भी हासिल कर सकते है, अर्थात् वे अपने लिये भी कुछ कर सकते हैं। इनके द्वारा कर्मचारियों को अपनी सहज सामाजिक आकांक्षाओं को प्रकट करने का भी अवसर मिलता हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ये संघ अपने सदस्यों में योग्यता बढाने, योग्यता पर आधारित व्यवस्था को सुरक्षित रखने तथा प्रशासन की गुणवत्ता में सुधार करने की भूमिका निभाते रहे हैं।

## 9.4 कर्मचारी संघों का विकास

स्वतंत्रता से पूर्व जहाँ तक ब्रिटिश शासन का प्रश्न है उस काल में नागरिक सेवकों में जागरूकता नाममात्र की होती थी, क्योंकि उस समय प्रशासन में ब्रिटिश शासकों की अधिकाधिक हिस्सेदारी तथा जवाबदेही थी तथा जो भी भारतीय प्रशासन में भर्ती किये जाते थे, उनमें भी अपनी कोई संस्था बनाने में बहुत ही कम रूचि पाई जाती थी, और यदि उनमें कोई भावना पनपती भी थी तो वह जनता की भारत को स्वतंत्रता या स्वाधीनता दिलाने के आन्दोलन में धूमिल होकर रह जाती थी। वास्तविक रूप में भारत में कर्मचारी-संघों की स्थापना का इतिहास प्रथम

महायुद्ध के बाद से माना जाना चाहिए। सन् 1922 में रेल कर्मचारियों और डाक-विभाग के कर्मचारियों ने अपने संघ की विधिवत् स्थापना की जिन्हें क्रमशः रेल बोर्ड और डाक-तार विभाग महानिदेशक ने मान्यता प्रदान कर दी। इसके पश्चात् धीरे-धीरे व्यावसायिक संघों की संख्या बढ़ती चली गई और सन् 1946 तक कर्मचारी संघ बहुत अधिक मात्रा में हो गए और उनके कार्यकलापों को इतना महत्व दिया जाने लगा कि केन्द्रीय वेतन आयोग के प्रतिवेदन में बारह पृष्ठ कर्मचारी संघों के ही सम्बन्ध में थे। निश्चित रूप से प्रथम महायुद्ध से पहले भी यहाँ पर सरकारी कर्मचारियों के कतिपय संगठन पाए जाते थे परन्तु उनके अस्तित्व का संघों के विकास में कोई खास अहमियत नहीं रही।

वैसे भी ब्रिटिश शासन काल के केन्द्रीयकृत प्रशासन मे अधीनस्थ तथा मध्यम स्तर के नागरिक सेवकों अर्थात कर्मचारियों को संगठित होने का अवसर नहीं मिला। पर जैसे ही देश ने 20 वीं सदी में प्रवेश किया, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में आधुनिक संघों ने अपना एक विशिष्ट (विशेष) स्थान बना लिया। शनैः शनैः कर्मचारियों ने अपनी मांगों के लिए दबाव डालने हेतु संगठित होना शुरू कर दिया। मोटे तौर पर उन्हें उन मुद्दों पर सफलता मिली जिनपर जनता की सहानुभूति थी, पर ऐसी सहानुभूति मिलना भी कोई आसान काम नहीं था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात राजनीति तथा आर्थिक व्यवस्था में परिर्वतन आया। आंशिक रूप से इसमें महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायिओं द्वारा चलाए गए स्वाधीनता आंदोलन ने, तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (1919) की स्थापना ने भी इस देश में श्रमिक संघों तथा कर्मचारी संघों के विकास पर अपना प्रभाव डाला। इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति 1920 में तब हुई जबकि अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस की स्थापना की गई। इसके बाद 1926 में जो श्रमिक संघ अधिनियम बनाया गया उससे भी भारतवर्ष में कर्मचारी संघों के निर्माण में गति आई तथा 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत् 30वें दशक में अनेक प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारोंकी स्थापना हुई, जिससे प्रान्तीय स्तर पर भी संघों के विकास की एक लहर उठी। इसी अधिनियम में ही राज्यों के राज्यपालों को यह जिम्मेदारी दी गई कि वे अपने कर्मचारियों के हितों तथा अधिकारों की रक्षा करेंगे। द्वितीय महायुद्ध (1939-45) के दौरान तो सरकार तथा कर्मचारियों के सम्बन्धों में भारी गिरावट आई। इसी कारण आर्थिक हालात तेजी से बिगड़ने लगे तथा जीवन यापन की वस्तुओं की दरें आसमान छूने लगी जिससे कर्मचारियों का जीना मुश्किल होने लगा। खासतौर पर (विशेष रूप से) अधीनस्थ स्तर के कर्मचारियों में काफी हाहाकार मचने लगा। परिणामस्वरूप रेलवे तथा डाक एवं तार विभागों के कर्मचारियों ने अपनी सेवा स्थिति को सुधारने का आन्दोलन चलाया तब भारत सरकार ने एक ''वेतन आयोग'' की स्थापना की जिसे वेतन, पेन्शन, सेवा शर्ते एवं सरकारी कर्मचारियों तथा ब्रिटिश साम्राज्य के मध्य समझौते की मशीनरी विकसित करने आदि के सभी पहलुओं पर अपनी सिफारिशें देने का दायित्व सौपा गया। आयोग को यह जानकर भयंकर पीड़ा हुई कि ''नागरिक सेवकों के विभिन्न स्तरों के मध्य घोर अविश्वास की भावना व्याप्त है, क्योंकि जब भी उन्होंने सरकार के सामने अपने ज्ञापनों के माध्यम से अपनी समस्याएँ रखी तब निराशा ही उनके हाथ लगी।'' इसलिए उसमें विशेषरूप से यह सिफारिश कि प्रशासन को कर्मचारियों को संघ बनाने तथा उसे विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस अनुशंसा से कर्मचारियों की संस्थाओं के संगठन तथा विकास के आन्दोलन को और अधिक बढ़ावा मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात नागरिक सेवा के कर्मचारी संस्था बनाने के काम में अपने आपको गौरान्वित महसूस करने लगे। धीर-धीरे तथा क्रमिक रूप से सभी वर्गो के नागरिक सेवक अपने आपको संस्थाओं के रूप में संगठित करने के उद्देश्य से आगे बढ़ने लगे। भारत सरकार ने भी इनकी महत्ता को अनुभव करते हुए इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान प्रारूप में एक ही धारा के माध्यम से व्यवस्था भी कर दी गयी इसी के परिणामस्वरूप 26 जनवरी, 1950 को लागू भारतीय संविधान में ''संस्था तथा संघ बनाने के अधिकार का प्रावधान किया गया, बशर्ते उससे सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न न हो।'' सारांशतः भारत के कर्मचारी संघों के विकास में यह अनुच्छेद एक ''मील का पत्थर'' सिद्ध हुआ। पूर्व में रेलवे तथा डाक एवं तार विभाग के अलावा

अन्य नागरिक सेवक असगंठित ही रहे तथा आयकर, लेखा विधि, सीमा शुल्क, नागरिक उड्डयन तथा सार्वजनिक निर्माण विभागों में जो संगठन थे वे भी कमजोर थे हालांकि वर्ष 1949 में आयकर कर्मचारियों का एक अखिल भारतीय संघ गठित किया गया, लेकिन उसे सरकार से मान्यता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि इसके तत्कालीन अध्यक्ष (अशोक मेहता) आयकर विभाग के कर्मचारी नहीं थे। 1953 में इसे मान्यता प्रदान कर एक शक्तिशाली संगठन स्थापित किया गया जिसके अधीनस्थ लगभग 40 संस्थाएँ सम्बद्ध हैं। इसी तरह 1923 से लेखा विधि तथा परीक्षा विभाग के कर्मचारियों ने संगठित होना प्रारम्भ किया इस संघ को भी 1956 में मान्यता प्रदान कर 1959 में अमान्य घोषित कर दिया गया और एक लम्बे अंतराल के बाद इसे मान्यता प्रदान की गयी। इसी तरह डाक एवं तार विभाग (1947) में 27 संघ ऐसे थे, जिन्हें सरकार ने मान्यता प्रदान कर रखी थी। सरकार ने इन सभी को जोड़ने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया, ताकि सभी संघ मिलकर एक महासंघ की स्थापना कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी गैर-राजपत्रित डाक-तार कर्मचारियों ने 1954 तक अपने आपको नौ अखिल भारतीय संस्थाओं में संगठित कर लिया।

1924 मे अखिल भारतीय रेल कर्मचारियों के एक महासंघ की स्थापना की गई। यह संघ भारत के जाने माने शक्तिशाली कर्मचारी संघों मे से एक रहा हैं। 1948 तक इसी संघ का बोलबाला बना रहा, क्योंकि यही एक मात्र मान्यता प्राप्त संगठन था। 1949 में भारत सरकार ने एक अन्य संगठन ''इण्डियन नेशनल रेलवे वर्कर्स फैडरेशन'' को भी मान्यता दे दी। 1953 में इन दोनों संघों को मिलाकर एक महासंघ ''नेशनल फैडरेशन ऑफ इण्डियन रेलवे मैन'' बनाया गया। इसके अलावा कर्मचारी सेवीवर्ग के अन्तर्गत अनेक अखिल भारतीय संगठन तथा स्टेषन मास्टरों, गार्डों, दूर संचार कर्मचारियों, वाणिज्यिक लिपिकों तथा मंत्रिमंडलीय सेवकों के पृथक-पृथक संघ बनाए गये।

## 9.5 संघों तथा संस्थाओं के गठन का अधिकार

आस्ट्रेलिया तथा फ्रांस में नागरिक सेवकों को संस्था बनाने के अधिकार के साथ ही श्रमिक संघीय अधिकार भी मिले हुये है। जबकि कनाडा, भारतवर्ष, जर्मनी तथा ब्रिटेन में सार्वजनिक कर्मचारियों के संस्था बनाने के अधिकार पर अनेक उपबन्ध (पाबन्दियां) लगाए गये हैं। जर्मनी के नागरिक सेवक केवल उन्हीं संस्थाओं के सदस्य हो सकते हैं। जिनके उद्देश्य मौजूदा (विद्यमान) संवैधानिक व्यवस्था से मिलते हो अन्यथा वे उनके सदस्य नहीं हो सकते। भारतवर्ष में सभी नागरिकों को संस्था बनाने का प्रत्याभूत अधिकार दिया गया। अर्थात नागरिक सेवकों को न केवल संस्था बनाने का अधिकार मिला हुआ है, अपितु वे अपनी इच्छानुसार किसी भी संस्था के सदस्य हो सकते हैं। परन्तू विद्यमान व्यवस्था में कर्मचारियों के संगठन को उनकी प्रगति तथा स्थिरीकरण के दौरान अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्हें जिस प्रमुख समस्या के लिए संघर्ष करना पड़ा, वह है संघ बनाने का अधिकार प्राप्त करना वास्तव मे किसी भी सवैधानिक लोकतंत्र में संघ बनाने का अधिकार एक अपना विशेष स्थान रखता है, क्योंकि चाहे कोई भी व्यक्ति हो या संगठन वह बिना संघ बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त किये कोई भूमिका नहीं निभा सकता है। वैसे भी लोगों को अधिकांशतः अपनी एक विशेष पहचान तभी मिलती है, जबकि वे किसी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा व्यावसायिक प्रकार (किस्म) की सामूहिक गतिविधियों में अपनी हिस्सेदारी निभाते हो। इसलिए प्रत्येक सरकार की यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वह एक तरफ तो यह देखे कि जनता के संघ बनाने के अधिकार पर किसी भी तरह का कोई हमला नहीं हो, तथा दूसरी तरफ उसे स्वयं भी ऐसे कार्यों से बचकर चलना चाहिये जिससे कि जनता के इस प्रमुख अधिकार में कोई बाधाएँ उपस्थित होने की संभावना ना हो। इसलिए भारतीय संविधान की धारा- 19 (1) अन्तर्गत नागरिकों को संघ बनाने के अधिकार की स्वीकृति दी गई हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि सरकारी कर्मचारीगण भी अपनी सेवा-शर्तों में सुधार के लिए संघ से जुड़ी हुई कार्यवाहियों का सहारा ले। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी सार्वजनिक कर्मचारियों को

संवैधानिक रूप से न केवल अपनी संस्थाएं बनाने की छूट दी गई है अपितु उन्हें बाहरी संगठनों के साथ जुडनें की आजादी भी दी गई हैं।

## 9.6 कर्मचारी संघों के प्रमुख कार्य

कर्मचारी संघ मुख्य रूप से कर्मचारियों के वेतन एवं सेवा शर्तो में सुधार के लिए बनाये जाते है, किन्तु इसे संस्थाओं का एक मात्र लक्ष्य नहीं कहा जा सकता हैं। प्रायः उच्च श्रेणी की कर्मचारी संस्थाएं विभिन्न उद्देष्यों की पूर्ति के लिए संचालित की जाती है जैसे आपसी सहयोग, अनुभव एवं विचारों का आदान-प्रदान, पारस्परिक सम्पर्क, अध्ययन द्वारा ज्ञान की वृद्धि एवं मनोरजंन के विभिन्न माध्यमों से कर्मचारियों के जीवन को उल्लास पूर्ण बनाना, आदि। इस प्रकार के संघ अपने सदस्यों में समूह की चेतना जाग्रत कर देते है। संघों द्वारा कर्मचारियों के सम्मान तथा गौरव में वृद्धि होती है। स्टॉल के मतानुसार इन संघों द्वारा जो कार्य सम्पन्न किये जाते है। उनको मुख्य रूप से निम्न पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है- सामाजिक एवं मनोरजनात्मक कार्य, सेवा एवं कल्याणकारी कार्य, शिक्षाप्रद एवं प्रचारात्मक कार्य, प्रशासकीय अधिकारियों के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व और व्यवस्थापिका के सम्मुख कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व।

इसके अतिरिक्त कर्मचारी संघों द्वारा निम्न प्रमुख प्रकार्यों का निर्वाह भी किया जाता है-

1. ये कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा करते है तथा शिकायतें प्रस्तुत करते हैं, सरकार के साथ समझौते करने के कामों से जुड़े रहते हैं।
2. वे ऐसे कदम उठाते हैं, जिससे उनके सदस्यों के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक बढावे में सहायक हो।
3. ये अकादमीय मामलों को भी बढ़ावा देते है यथा वे पत्र- पत्रिकाओं तथा अन्य सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करते हैं।
4. ये संयुक्त सलाह परिषदों अथवा सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर कर्मचारियों के सरकार के साथ होने वाले विवादों का समाधान करते हैं।
5. ये अपने सदस्यों को पूर्ण रूप से श्रमिक संघ के अधिकारों को दिलवाते है जिसमें आम चुनाव लड़ने का अधिकार भी शामिल होता है।

## 9.7 कर्मचारी संघों में भर्ती के अधिकार पर लगने वाले उपबन्ध (पाबन्दियाँ)

सरकार की यह नीति है कि स्वस्थ श्रमिक संघ आंदोलन को बढावा दिया जाए। इसलिए भारत श्रमिक संघ अधिनियम, 1926 तथा भारतीय संविधान, 1950 ने कर्मचारियों को संघ बनाने की अनुमति दी। परन्तु सरकार द्वारा नागरिक सेवा नियमावली, 1955, 1957 एवं 1964 में किए गए संशोधनों के अनुसार संघ बनाने के अधिकार पर कुछ पाबन्दियां (उपबन्ध) भी लगायी गई है।

जहां तक भारतीय नागरिक सेवा नियमावली का सवाल है, उसके अनुसार सरकारी कर्मचारियों को यह अनुमति नहीं है कि वे सरकार की किसी भी नीति की आलोचना कर सके, चाहे वे ऐसा समाचार-पत्र के माध्यम से सार्वजनिक वक्तव्य प्रसारित करके या अन्य विधि से जिससे सरकार की छवि बिगड़ने का खतरा हो अथवा जिससे आन्तरिक सरकारी इकाईयों तथा विदेशी सरकारों के सम्बन्ध मे उलझन में पड़ने की संभावना हो। कर्मचारियों को ऐसे किसी भी जांच के सामने बिना किसी पूर्वानुमति के गवाही देने की मनाही है, जिसको उचित रूप से प्राधिकृत नहीं किया गया हो अर्थात जिसकी नियुक्ति उसकी सरकार द्वारा नहीं की गई हो। इस उपबन्ध के उद्देश्य यह है कि नागरिक कर्मचारियों को राजनीतिक रूप से तटस्थ रखा जाए, जिससे वे सार्वजनिक विवादों से बचे रह सके तथा नागरिक सेवक अपनी मौजूदा सरकार की निष्ठापूर्वक, बिना किसी दुविधा (रूकावट) के सेवा कर सके। ब्रिटेन में

नागरिक सेवकों को सार्वजनिक महत्व के ऐसे गैर-राजनीतिक मुद्दों पर अपनी राय देने का अधिकार है। पर उन्हें भी ऐसी गतिविधियों से दूर रहने की सलाह दी जाती है, जिनका सीधा सम्बन्ध राजनीतिक दलों की राजनीति से होता है। जबकि भारत वर्ष में नागरिक कर्मचारियों को किसी भी प्रकार की राजनीतिक गतिविधि में भाग लेने पर प्रतिबंध लगाया गया है। वे विशुद्ध साहित्यिक वैज्ञानिक अथवा सृजनात्मक प्रकृति के मुद्दों के अलावा अन्य किसी मुद्दे पर अपनी सार्वजनिक अभिव्यक्ति नहीं कर सकते हैं। उनके किसी भी प्रकार के सम्पादन प्रकाशन पर जुड़ने पर भी रोक लगायी गई है। सारांशतः उन्हें किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति (प्रकाशन) की स्वतंत्रता से पूर्णतः वंचित कर दिया गया है।

आचरण व्यवहार नियमावली के अनुसार हमारे देश में किसी सरकारी कर्मचारी को ऐसी कोई सूचना का सीधे अथवा अन्य किसी तरीके से सम्प्रेषित करने का अधिकार नहीं है। अपवाद स्वरूप स्थिति में वह निर्धारित प्रपत्र पर ऐसी सूचना दे सकता है। जबकि 1923 के गोपनीय अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि कोई भी सरकारी कर्मचारी, सरकारी सूचना का अनाधिकृत सम्प्रेषण नहीं करेगा, इसलिए उन कर्मचारियों के लिए सख्त से सख्त दण्ड़ देने की व्यवस्था की गई है जो कि अनाधिकृत रूप से देश के असमाजिक तत्वों अथवा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति करने हेतु सरकारी सूचनाएँ हस्तान्तरित करते हैं। इसलिए नागरिक कर्मचारियों पर यह विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वे पूरी सावधानी से तथा जागरूक रहकर सरकारी सूचनाओं की रक्षा करे।

उल्लेखित नियम श्रमिकों को संघों के अधिकारों से वंचित कर देते हैं। इस तरह संस्था बनाने के अधिकार की उपादेयता मान्यता के अधिकार से जुड़ी हई है। अतएव कर्मचारियों ने इन संहिता तथा मान्यता नियमों के खिलाफ अपना गंभीर विरोध प्रकट किया है।

## 9.8 मान्यता देने की विधियाँ (नियम)

इस प्रसंग में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मान्यता मिलने तथा जारी रहने से संघ/संस्था को एक वैधानिक स्तर प्राप्त होता है, ताकि वे कर्मचारियों की शिकायतें नियोक्ताओं के समक्ष रखने, समझौता करने तथा सौदबाजी करने के कार्य को कर सकें। कहने का अभिप्राय यह है कि मान्यता मिलने पर वैधानिक रूप से संघीय कार्यवाही होने लगती है। ध्यान रहे कि भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम, 1926 के अंतर्गत नागरिक सेवकों या कर्मचारियों को नहीं लिया गया था। इस कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था कि नियोजक या नियोक्ता सभी संघों को अनिवार्य रूप से मान्यता प्रदान करें।

इन सभी सीमाओं तथा पाबन्दियों के बावजूद कर्मचारी संगठन ने 1920 के दशक में समय-समय पर अनेक मुद्दे उठाए। बाद में बढ़ते हुए असंतोष को दबाने तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही की धमकी से निपटने के लिए सरकार ने केन्द्रीय नागरिक सेवाएं (संहिता) नियमावली, 1955 बनाई, जिसे 1964 में संशोधित किया गया। जबकि 1959 में एक नवीन केंद्रीय नागरिक सेवा (सेवा संस्थाओं को मान्यता देने के बारे में ) नियमावली ,1959 बनाई गई जो भारतीय संविधान की धारा- 309 तथा धारा- 148 के अंतर्गत है। इस नियमावली में मान्यता देने के कतिपय अग्रांकित शर्ते निर्धारित की गई-

- ऐसा कोई भी व्यक्ति संस्था की गतिविधियों से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए जो कि सरकारी कर्मचारी नहीं हो।
- संस्था की कार्यकारिणी उन्हीं लोगों में से नियुक्त की जानी चाहिए जो कि उसके वैध सदस्य हों।
- संस्था ऐसी किसी मांग का समर्थन नहीं करेंगी या अन्य कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त करेगी, जिसका संबंध किन्हीं व्यक्तिगत सेवकों से हो, तथा

- यह न तो किसी प्रकार का कोई राजनीतिक कोष रखेगी न ही यह किसी राजनीतिक दल अथवा राजनेता के विचारों को प्रचार-प्रसार का मंच ही प्रदान करेगी।

इसी भांति श्रम मंत्रालय ने भी औद्यौगिक श्रमिकों के संघों को मान्यता देने के अपने पृथक नियम बनाए है। इन कानूनों के अनुसार-

- संघ की सदस्यता उन्हीं श्रमिकों तक सीमित होनी चाहिए, जो कि उसी उद्योग या जुड़े हुए अथवा एक-दूसरे से संबंधित उद्योग में कार्य करते हों,
- संघ में उसी उद्योग में कार्यरत सभी श्रमिकों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए, तथा किसी भी श्रेणी के श्रमिकों को इससे वंचित नहीं किया जाना चाहिए,
- संघ का पंजीकरण श्रमिक संघ विधि के अन्तर्गत किया जाना चाहिए, तथा
- संघ के अपने विधान में ऐसे प्रावधान होने चाहिए जिनमें उद्योग में हड़ताल आदि घोषित करने की कार्यविधि सुपरिभाषित की गई हो।

रेलवे मंत्रालय ने भी गैर-राजपत्रित कर्मचारियों की संस्थाओं को मान्यता देने के अपने नियम बनाए है, फिर भी ये मूलतः श्रम मंत्रालय के नियमों से भिन्न नहीं है। रेलवे तथा श्रम मंत्रालय दोनों के ही नियमों अनुसार मान्यता देने तथा उसे जारी रखने के काम में सरकार के हाथों मे काफी विवेकाधिकार प्रदान किये गये है। जहां तक गृह मंत्रालय के मान्यता देने के नियमों (1959) का सवाल है, उनमें यह प्रावधान है कि जब तक विशिष्ट शर्तों की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक मान्यता नहीं प्रदान की जायेगी। अपवाद स्वरूप उन नागरिक सेवकों के मामले को लिया जाता है जो कि 1959 में बने हुए मान्यता नियमों से निदेशित होते हैं। वैसे भी श्रम तथा रेल मंत्रालय दोनों के ही नियम संघ की कार्यकारिणी में कतिपय 'बाहरी' लोगों को लेने का प्रावधान करते हैं। तदापि याद रखने की बात यह है कि नागरिक सेवा संस्थाओं में उन्हीं लोगों को भाग लेने की अनुमति दी जाती है जो कि पूर्व तथा सेवानिवृत कर्मचारी होते हैं।

1959 में बनाये गये मान्यता सम्बन्धित नियमों में श्रमिक संघों की मुक्त गतिविधियों पर पाबन्दियां लगाई गई हैं। इनके अनुसार जिन संस्थाओं को मान्यता प्रदान नहीं की गई है उनको अपने सभी सदस्यों तथा पदाधिकारियों की सूची मंत्रालय को पेश करनी होती है तथा जिसमें 15 प्रतिशत सरकारी कर्मचारी सदस्यों की एक विशिष्ट श्रेणी होनी चाहिए।

सारांशतः नियम अत्यन्त कठोर थे तथा उनमें ढील दिये जाने की मांगे रखी जाती रही। दीर्घकाल तक सरकार ने मान्यता के विषय में किसी स्पष्ट नीति पर अमल नहीं किया। मतलब यह है कि संघों को मान्यता लेने के लिए संघर्ष करना पड़ा, क्योंकि हर मंत्रालय के मान्यता देने के नियम अलग-अलग तथा मनमाने थे।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. ''कर्मचारी और नियुक्तिकर्ता के हित परस्पर भिन्न एवं एक-दूसरे के विरोधी होते हैं।'' यह कथन किसका है?
2. भारत में कर्मचारी संघों की स्थापना का इतिहास कब से प्रारम्भ होता है?
3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना कब हुई?
4. ''अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस'' की स्थापना कब हुई?
5. ''इण्डियन नेशनल रेलवे वर्कर्स फैडरेशन'' को भारत सरकार ने कब मान्यता दी?
6. किन दो संघों को मिलाकर एक महासंघ ''नेशनल फैडरेशन ऑफ इण्डियन रेलवे मैन'' बनाया गया।
7. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद के अन्तर्गत नागरिकों को संघ बनाने का अधिकार दिया गया है?

## 9.9 सारांश

सार्वजनिक कर्मचारियों ने अनेक देषों में अपने संघ बनाने के अधिकार की मांग की है यद्यपि एक तरफ सार्वजनिक कर्मचारी संगठनों में भिन्नता पाई जाती है तो दूसरी तरफ संघों तथा उनकी सरकारों में पाये जाने वाले औपचारिक सम्बन्धों की प्रकृति को भी लेकर काफी मदभेद पाये जाते है। पर संघों का मूलभूत लक्ष्य तो यही होता है कि सेवा शर्तों को लेकर कर्मचारियों की शिकायतों को दूर करवाया जाये, इसके लिए उन्हें सामूहिक विचार विमर्ष का सहारा लेना पड़े या सामूहिक सौदे बाजी ही करनी पड़े तथा जरूरत पड़े तो प्रत्यक्ष (सीधी) कार्यवाही का सहारा लेना पड़े। अपने हितों की रक्षा के लिये ही उन्होनें संस्था बनाने का अधिकार, मान्यता का अधिकार, प्रतिनिधित्व का अधिकार तथा सदस्यता प्रदान करने का अधिकार आदि की मांग की हैं ताकि संस्था बनाने का काम बिना रूकावट चल सके। वे लोकतांत्रिक पद्धति से ही विवादों का हल ढूढ़ना पसन्द करते है। इसके लिए ना केवल अपने आपको प्रशासन का अंग मानते है, वरन् वे प्रशासन में पूर्ण सहभागिता के अवसर सुलभ कराने की भी मांग करते हैं। यह भी सम्भव है कि वे तत्कालीन कार्यालय के भीतर ही बेहतर सेवा शते हासिल करने के लिए तुरन्त संघर्ष पर उतारू हो जाये तथा सार्वजनिक मामलों में सहभागिता (हिस्सदारी) निभाने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सहारे अपनी भावनाओं को उजागर करें। लेकिन अन्ततः उनका लक्ष्य यही होता है कि जहां तक सम्भव हो सके शान्तिपूर्ण तरीके से कर्मचारियों तथा सरकार के सम्बन्धों को सौहार्द्ध पूर्ण बनाया जा सके ताकि उनके विवाद को आपसी समझदारी से निपटायें जा सकें। सारांशतः संस्था या संघ का उद्देश्य एक ऐसा भाई सौहार्द्ध पूर्ण वातावरण बनाना होता है, जिससे प्रशासन में कुशलता बढ़ सकें, गुणवत्ता या योग्यता की रक्षा हो सके तथा कार्यालय की प्रभावशीलता भी कायम रह सके।

## 9.10 शब्दावली

आचरण संहिता- सरकारी कर्मचारियों के आचरण के नियमन संचालन के लिए आचरण संहिता होती है जो कि उनके व्यवहार, कार्यविधि को निदशित करती है।

मान्यता नियम- नागरिक सेवा में यह निर्णयन विधि का एक ऐसा वक्तव्य होता है, जिसके अनुसार संगठनात्मक नीतियों तथा आयोजनों को व्यवहार में लाया जाता है

मान्यता पाने का अधिकार- इस शब्द का अर्थ है कि एक नियोजक अपने कर्मचारियों से समझौता या लेन-देन करने के लिए अपने अभिकर्ताओं (एजेन्ट्स) को कैसे स्वीकार करता है अर्थात् नियोक्ता अपने अधीन किस प्रकार के संघ को समझौता करने के लिए स्वीकार करता है।

## 9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** कार्ल मार्क्स, **2.** सन् 1922, **3.** सन् 1919, **4.** सन् 1920, **5.** सन् 1949, **6.** अखिल भारतीय रेल कर्मचारी महासंघ और इण्डियन नेशनल रेलवे वर्कर्स फैडरेशन, **7.** अनुच्छेद- 19(1)

## 9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. महेश कुमार, ट्रेड यूनियन मूवमेंट इन इण्डियन रेलवेज, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1990
2. सिंह, आर.सी., इण्डियन पोस्ट एण्ड टेलिग्राफ इम्प्लॉईज् मूवमेन्ट, इण्डियन इन्टरनेशनल पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1974
3. भास्कररावं वी., एम्प्लॉयर- एम्पलॉई रिलेशन्स, कॉन्सेप्ट, नई दिल्ली, 1978
4. ग्लेन स्टाइल, ओ, पब्लिक-पर्सनल एडमिनिस्ट्रेशन, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयॉर्क।

5. अग्रवाल, अर्जुन पी., फ्रीडम ऑफ एसोसिएशन इन पब्लिक एम्लायमेन्ट, जर्नल ऑफ इन्डियन लॉ इन्स्टीट्यूट, जनवरी-मार्च 1972, नई दिल्ली।
6. विश्वनाथ सिंह, पोलिटिकल राईटस ऑफ सिविल सर्वेन्टस इन इण्डिया, इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिसट्रेशन, खण्ड संख्या 2, 1964।
7. हेनरी पेरिस, सिविल सर्विस स्टाफ रिलेशन्स, एलन एण्ड उनविन, लण्डन, 1973
8. जेय एम.शेफ्रिट, वाल्टर एल. बाक, अलबर्ट सी. हाइड तथा डेविड एच. शेजन ब्लूम, पर्सनल मैनेजमेन्ट इन गवर्नमेन्ट पोलिटिक्स ऐण्ड प्रॉसिस, मार्सल डैक्कर, न्यूयॉर्क, 1978
9. त्यागी, ए.आर., राईटस ऐण्ड ऑबलिगेशन्स ऑफ सिविल सर्वेन्टस इन इण्डिया, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1961

## 9.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. विश्वनाथ सिंह, पोलिटिकल राईटस ऑफ सिविल सर्वेन्टस इन इण्डिया, इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिसट्रेशन, खण्ड संख्या 2, 1964।
2. जेय एम.शेफ्रिट, वाल्टर एल. बाक, अलबर्ट सी. हाइड तथा डेविड एच. शेजन ब्लूम, पर्सनल मैनेजमेन्ट इन गवर्नमेन्ट पोलिटिक्स ऐण्ड प्रॉसिस, मार्सल डैक्कर, न्यूयॉर्क, 1978
3. त्यागी, ए.आर., राईटस ऐण्ड ऑबलिगेशन्स ऑफ सिविल सर्वेन्टस इन इण्डिया, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1961

## 9.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उन कारणों पर प्रकाश डालिए जिनके कारण नागरिक सेवकों को एक संघ की आवश्यकता पड़ती है।
2. कर्मचारी संघो के उद्देश्यों का विश्लेषण कीजिये।
3. स्वतंत्रता के पश्चात कर्मचारी संघो के विकास पर प्रकाश डालिए।
4. कर्मचारी संघो के प्रमुख कार्यो तथा गतिविधियों की विवेचना कीजिए।

# इकाई- 10 अभिप्रेरण एवं नैतिकता

**इकाई की संरचना**

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 अभिप्रेरण का अर्थ एवं परिभाषाएं
10.3 अभिप्रेरण के उद्देश्य
10.4 अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व
10.5 अभिप्रेरण के प्रकार
10.6 कार्यकुशलता वृद्धि के अभिप्रेरक
10.7 प्रशासनिक नैतिकता का अर्थ एवं परिभाषा
10.8 नैतिकता का जन्म विकास
10.9 भारत में स्थिति
10.10 प्रशासनिक नैतिकता का सुनिश्चित करने का
10.11 प्रशासनिक नैतिकता का महत्व
10.12 प्रशासनिक नैतिकता के कारक
10.13 नैतिकता सुदृढ़ करने के उपाय
10.14 सारांश
10.15 शब्दावली
10.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.19 निबन्धात्मक प्रश्न

## 10.0 प्रस्तावना

मानव अनुभव तथा अनुसंधानों से सिद्ध इससे अधिक सत्य बात और कोई नहीं है कि मनुष्य की निरन्तर उपस्थिति एवं चेतनशीलता के पीछे कर्म ही जीवन रक्त हैं। किसी व्यक्ति के लिये कार्य करना या कार्य करने की इच्छा करना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि उसे आराम करने की इच्छा होना। मनुष्य प्रकृति से अकर्मण्य नहीं है। एक व्यक्ति के कार्य करने या नहीं करनें के अभिप्रेरण के पीछे उसके मन में उठे आन्तरिक चालन बल (अभिप्रेरण) उत्तरदायी है। किसी भी संगठनात्मक व्यवस्था में मानवीय व्यवहार की समस्या मौलिक एवं महत्वपूर्ण है। संगठनात्मक अधिकारियों के लिए यह एक बेहद कठिन मामला है कि वे अपने कर्मचारियों को किस प्रकार संगठन की आवश्यकता के अनुकूल व्यवहार करने के लिये प्रेरित करे। आज के व्यवसाय स्वामियों एवं प्रबन्धकों की शिकायत है कि हम अपने कर्मचारियों को अच्छा वेतन, अच्छी कार्य की दषाएं एवं सुविधाएं देते हैं, फिर भी उनसे अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अर्थात मानव जो कुछ प्राप्त कर रहा है, उससे वह कुछ अधिक प्राप्त करने की इच्छा रखता हैं। चूंकि व्यक्ति स्वयं को कभी भी अपने मूल्यों, विचारों, दृष्टिकोणों एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं से परे नहीं रख सकता। अतः केवल संगठन में नौकरी-पेशा करने के विचार से इन बातों में परिर्वतन एकात्मक नही किया जा सकता। निश्चित रूप से वे अपनी स्वतंत्रताओं का विभिन्न प्रकार के समूह एवं संगठनों की सदस्यता ग्रहण करने से हनन या त्याग करते हैं। अतः उनके स्वैच्छिक व्यवहार को संगठन के सामान्य

इच्छित हित में परिर्वतन किये जाने की आवश्यकता है। वांछनीय व्यवहार के प्रभाव के अन्तर्गत व्यक्ति उत्तरदायित्व ग्रहण करता है, तथा संगठन के प्रति समग्र भाव से अपनी वफादारी एवं सम्बद्धता की भावना प्रदशित करता है। स्वैच्छिक व्यवहार को वांछनीय व्यवहार से परिवर्तित करने की विभिन्न विधियां मनोवैज्ञानिकों ने विकसित की हैं।

मानव व्यवहार के वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के कारण शायद मानवीय अभिप्रेरण के अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन का अन्य कोई क्षेत्र इतना विवादस्पद एवं चर्चित नहीं रहा है। मानवीय व्यवहार को भली भांति समझने में व्यवहारवादी दृष्टिकोण के आंदोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कार्मिक प्रशासन के प्रारभिक युग में जिसमें की कार्यकुशलता विशेषज्ञता से भिन्न थी, कार्यकुशलता की निरन्तर वृद्धि की समस्या को यांत्रिक उपागम के बजाय मानवीय समस्या ही समझा जाता था। अतः कार्मिक व्यवस्था में कर्मचारियों के व्यवहार एवं मनोदशा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता हैं। सामान्यतः इतिहास में सभी प्रकार की जातियों एवं कार्मिकों में काम करने के पीछे जो शक्ति देखने को मिलती है वह मनुष्य की कुछ प्राप्त करने या उपलब्धि हासिल करने की आन्तरिक ललक तथाबाहिय चुनौतियों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया का संयुक्त परिणाम है। ऐसा महसूस किया गया है कि कोई व्यक्ति स्वयं के बारे में जैसा मन में विश्वास रखता है उसका उसके व्यवहार पर भारी प्रभाव पड़ता हैं। किसी व्यक्ति को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वह क्या सोचता है या उसके विचार क्या है ? उसके क्या मूल्य एवं मान्यताएं है, उसके उद्देश्य क्या हैं तथा इसके साथ ही उसकी मूल शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यकताएं कैसे पूरी होती है और उसमें क्या गुण व योग्यताएं है? अतः मन का चालन एवं अभिप्रेरण अत्यन्त महत्व पूर्ण है, क्योंकि यही प्रशासनिक कार्यों के संगठन एवं नियोजन के लिये मुख्य आधार है। किसी संगठन के कार्मिक विभाग को मनोबल के उच्च स्तर को बनाये रखने के लिये नियोजन के लिये प्रर्याप्त समय देकर प्रयास जारी रखने चाहिये चूंकि यह संगठन में उत्पन्न होने वाली कुछ समस्याओं जैसे कर्मचारियों का संगठन के लक्ष्यों से अलगाव महसूस करना, उनकी योग्यताओं एवं क्षमताओं का उपयुक्त उपयोग ना कर पाना तथा कर्तव्य निर्वाह करते समय कर्मचारियों के मन में असंतोष की भावना का महसूस होना आदि के लिये एक मात्र समाधान है। इसलिए संगठन के प्रभावशील संचालन के लिए अभिप्रेरण का विकाश एक सत्त प्रक्रिया होनी चाहिए।

प्रभावी प्रबन्ध अधिकांशतः संगठनात्मक कार्यों के सम्पादन में उत्साह के लिए कर्मचारियों के कार्य करने की इच्छा व ललक पर निर्भर करता है। संगठन का सफल संचालन इसके कर्मचारियों की इच्छाओं एवं योग्यताओं को प्राप्त करने में प्रयुक्त तकनीकों पर निर्भर करता है, क्योंकि मानवीय उपलब्धियों व कार्य निष्पादिता, मनोबल के स्तर, तथा व्यवहार अभिप्रेरण एवं योग्यता की अन्तःक्रिया से निर्धारित होता है। नीतियों एवं तकनीकों से अभिप्रेरण तथा नैतिकता में सुधार होगा तथा कार्य अनुभव को अधिक महत्व मिलेगा।

संगठन से किसी व्यक्ति के अभिप्रेरण एवं नैतिकता के महत्व के संदर्भ में हम इस इकाई के अर्न्तगत इन पहलुओं के अर्थ की व्याख्या करेंगे, जिससे सम्बन्धित अवधारणाओं को समझने में आगे सहायता मिलेगी। इस इकाई के अर्न्तगत अभिप्रेरण के उद्देश्यों, इसके प्रकारों आदि पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

हम अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारकों तथा कर्मचारियों में नैतिकता के उच्च स्तरीय विकास के लिए भावी नीतियों एवं कार्यक्रमों की विवेचना करेंगे। साथ ही अभिप्रेरण बनाये रखने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों तथा व्यवहारिक नैतिकता की विधियों का भी विश्लेषण करेंगे।

## 10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने कम उपरान्त आप-

- एक संगठन में मानवीय तत्व का महत्व समझ सकेंगे जो संगठन भी समग्र उत्पादकता पर महत्व पूर्ण प्रभाव रखता है।
- मानवीय सम्बन्धों के दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिकों तथा व्यवहार वैज्ञानिकों के निष्कर्षों को बता सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि अभिप्रेरण तथा नैतिकता प्रबन्ध की नीतियों एवं व्यवहारों के परिणामस्वरूप बनते हैं।
- अभिप्रेरण एवं नैतिकता के अर्थ को उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों के साथ स्पष्ट कर सकेंगे।
- संगठनात्मक कार्यकुशलता को नियमित एवं नियंत्रित करने वाले विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरण एवं नैतिकता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, तथा।
- व्यवहारिक अभिप्रेरणात्मक प्रणालियों के माध्यम से नैतिकता सशक्त करने वाले कुछ महत्व पूर्ण उपायों का विश्लेषण कर सकेंगे।

## 10.2 अभिप्रेरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

आज के व्यवसाय स्वामियों एवं प्रबन्धकों की शिकायत है कि हम अपने कर्मचारियों को अच्छा वेतन, अच्छी कार्य की दशाएं एवं सुविधाएं देते हैं, फिर भी उनसे अनुकूल परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अर्थात मानव जो कुछ प्राप्त कर रहा है, उससे वह कुछ अधिक प्राप्त करने की इच्छा रखता है। सामान्यतः अभिप्रेरण एक ऐसी शक्ति अथवा इच्छा है जो व्यक्तियों की इच्छा को इस प्रकार बना देती है कि वह कार्य करने के लिए प्रेरित हो जाए। किन्तु प्रबन्ध के युग मे मानव शक्ति के व्यवहार को निर्देशित करने एवं उसका सहयोग प्राप्त करने की कला को अभिप्रेरण कहा जाता हैं। अभिप्रेरण लेटिन शब्द ''इमोवियर'' जिसका अर्थ आगे चलना या बढ़ना है, से बना है। अभिप्रेरण उन शक्तियों के प्रारम्भ एवं संचालन के जटिल योग का नाम है जो किसी व्यक्ति को संगठन में कार्य करने के लिये प्रेरित करता है। अभिप्रेरण, इस प्रकार एक ऐसी क्रिया है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए एवं पहले से शुरू किये गये कार्य के पूरा होने तक करते रहने के लिये आगे बढ़ते रहने का साहस प्रदान करता हैं। अन्य शब्दों मे, अभिप्रेरणा का अर्थ संवेगों, उद्देश्यों, इच्छाओं, आकांक्षाओं, प्रयासों की सहायता से मानवीय व्यवहार को समझने, निर्देशित एवं नियंत्रित करने से है। अभिप्रेरणा के अर्थ को निम्न परिभाषाओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

हैराल्ड एफ. गॉर्टनर के अनुसार,''अभिप्रेरणा मनुष्य के व्यवहार को समझने का उद्देश्यपूर्ण तथा उपयोगी माध्यम है। मनुष्य की आवश्यकताओं (Needs) चालक (Drive) तथा लक्ष्यों (Goals) के बीच अर्न्तसम्बन्ध ही अभिप्रेरणा है।'' डेल एस. बीच के शब्दों में, ''अभिप्रेरणा को एक लक्ष्य या पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए शक्तिखर्च करने की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं।'' स्टेनले वेन्स के अनुसार, ''कोई भी भावना या आवश्यकता जो व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार प्रभावित करती है कि वह कार्य करने के लिए प्रेरित हो जाए, अभिप्रेरण कहलाती है।'' डाल्टन ई. मैक्फरलैण्ड के अनुसार, ''अभिप्रेरणा की धारणा मूलतः मनोवैज्ञानिक है। इसका सम्बन्ध किसी कर्मचारी अथवा अधीनस्थ में कार्य कर रही उन शक्तियों से है जो उसे किसी कार्य को विधिवत करने अथवा न करने के लिए प्रेरित करती हैं।''

इस प्रकार अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है, जिसका सम्बन्ध व्यक्तिगत कर्मचारी में कार्य कर रही उन शक्तियों से है जो उसे किसी कार्य को किसी ढ़ंग से करने अथवा न करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह परिभाषित लक्ष्य को इच्छित तरीके से प्राप्त करने के पीछे आगे बढने की भावना को प्रतिबिंबित करती है। जब कर्मचारी की आवश्यकताओं की उपयुक्त प्रतिपूर्ति एवं पारितोष द्वारा संतुष्टि हो जाती है, तो उस व्यवस्था को अभिप्रेरण कह सकते हैं। संस्थागत लक्ष्यों को प्राप्त करने के पीछे इच्छाओं को जागृत करना आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं अभिप्रेरण से जुड़ा हुआ है। आवश्यकता के अभाव में प्रेरण नहीं हो सकता तथा कर्मचारियों को

प्रेरित करने में सर्वाधिक बड़ी समस्याओं में से एक यह कि प्रत्येक कर्मचारी की एक जैसी आवश्यकताएं नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त अभिप्रेरण संगठन के अन्दर तथा बाहर स्थित बहुत से कारकों से प्रभावित होते हैं। अभिप्रेरण व्यक्तिगत लक्ष्यों का संस्थागत लक्ष्यों के साथ साम्य एवं समन्वय की आवश्यकता पर जोर देता है।

## 10.3 अभिप्रेरण के उद्देश्य

मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा अभिप्रेरण के निर्धारित उद्देश्य मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित दो मौलिक प्रश्नों के उत्तर देने मे सक्षम हैं-

- कोई व्यक्ति काम करने के लिए क्यों प्रेरित होता है?
- उसकी गतिविधियों की दिशा कौन निर्धारित करता है?

हम कुछ प्रसिद्ध मनौवेज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों के विचारों की व्याख्या करेंगे, जिन्होने मानवीय व्यवहार का विभिन्न संदर्भो में मूल्यांकन किया है-

अब्राहम मैस्लो ने यह देखा कि अभिप्रेरण का उद्देश्य हमेशा एक व्यक्ति के लिए आवश्यकता उत्पन्न करना है। यह ठीक एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे जब निम्न स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति को जाती है तो उससे उपर के स्तर की आवश्यकताएं धीरे-धीरे फिर सामने आ जाती है। अर्थात जब एक व्यक्ति एक चीज से संतुष्ट हो जाता है तो दूसरी चीज स्वतः ही उसकी आवश्यकता बन जाती है। फ्रेडरिक हर्जबर्ग ने महसूस किया कि अभिप्रेरण का महत्व पूर्ण उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसके काम मे दक्ष होने का अवसर देना है, जिससे वह और अधिक चुनौती भरे कार्य पूरे कर सके, वह स्वयं अपने कार्यों पर नियंत्रण करे न कि किसी के द्वारा नियंत्रण हो। डाल्टन ई. मैक्फरलैण्ड के अनुसार अभिप्रेरण का उद्देश्य एक व्यक्ति मे सशक्त इच्छा उत्पन्न करना है, ऐसी स्थिति मे जिसमें वह कार्य पूरे करने व सफलतापूर्वक लक्ष्यों को प्राप्त करने में आनन्द महसूस करे। अर्थात पैसा या कोई इनाम प्राप्त करने के बजाय वह चुनौतियों का सामना करने मे अधिक रूचि ले। विक्टर एच. व्रुम का मानना है कि अभिप्रेरण को कर्मचारियों में सकारात्मक मूल्यों के विकास के लिए एक संचार साधन के रूप में कार्य करना चाहिये। स्पष्टतः अभिप्रेरण का मुख्य उद्देश्य उपक्रम में कार्यरत व्यक्तियों में कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न कर कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। मन की इच्छाएं एवं उद्देश्य विभिन्न प्रकार के एवं बहुत सारे होते हैं। ऐसी कोई एक तकनीक या योजना नहीं हो सकती जो सभी संगठनों में तथा हमेशा कर्मचारियों को प्रेरित कर सके, क्योंकि व्यक्ति में काम करने के पीछे विभिन्न प्रकार की आकांक्षाएं होती हैं।

## 10.4 अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व

किसी भी संगठन की सफलता का सबसे बड़ा घटक उपक्रम में नियोजित व्यक्तियों को इसे सफल बनाने के उद्देश्य से संयुक्त करना हैं। यही कारण है कि प्रत्येक उपक्रम एवं इसके प्रबन्धक को निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मिलजुलकर काम करने की प्रेरणा देनी चाहिए। सुदृढ़ प्रेरणा कार्य को करने के लिए शक्तिशाली उपकरण की आवश्यकता होती है। आजकल प्रबन्धकों द्वारा यह बात अनुभव की जा रही है कि जब तक उपक्रम के समस्त सदस्य अपने कार्यों को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील होकर अपना सर्वाधिक योगदान देने को तैयार न हो, तब तक किसी प्रबन्धकीय कार्य, जैसे- व्यवस्थित आयोजन, वैज्ञानिक संगठन, दक्ष निर्देशन तथा प्रभावपूर्ण नियंत्रण आदि सफल नहीं हो सकते हैं। अतः आधुनिक प्रबंधकों के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने कार्यकर्ताओं को कार्य करने के लिए इस प्रकार प्रेरित करे कि उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं कम्पनी की आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि संभव हो। अलग-अगल व्यक्तियों की व्यक्तिगत आवश्यकतायें भिन्न हो सकती है। किन्तु मानवीय आवश्यकताओं के क्षेत्र में एक सामान्य आधार पर यह समझना होता है कि मनुष्यों को किन से प्रेरणा मिलती है अर्थात कौनसी चीज प्रेरक हो सकती है। यह संभव है कि किसी व्यक्ति में किसी कार्य को करने की

अत्यधिक शारीरिक शक्ति, तकनीकी कुशलता, बौद्धिक एवं मानसिक तत्परता विद्यमान है। किन्तु इन सबका उसके नियोक्ता को लाभ नहीं मिलेगा, यदि वह व्यक्ति मनौवेज्ञानिक दृष्टि से इन शक्तियों का उपयोग कार्य करने के लिए नहीं करना चाहता है। इस सम्बन्ध में जनरल फूड कॉरपोरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष कलेन्स फ्रान्सिस ने सत्य ही कहा कि, ''आप किसी व्यक्ति का समय खरीद सकते हैं, आप किसी व्यक्ति की एक निश्चित स्थान पर उपस्थिति खरीद सकते हैं किन्तु आप उसका उत्साह, प्रेरणा एवं कर्तव्यनिष्ठा नहीं खरीद सकते।'' जैसा कि रेन्सिस लिकर्ट ने कहा कि अभिप्रेरित कर्मचारी ही किसी संगठन की वास्तविक सम्पति है। इसी सदंर्भ में ऐलन ने लिखा है कि, ''अपर्याप्त रूप से अभिप्रेरत व्यक्ति सुदृढ़ संगठन को भी निष्फल बना देते हैं'' अभिप्रेरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से भी समझा जा सकता है- लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक, आवश्यकताओं की संतुष्टि, कार्य के प्रति रूचि, अच्छे मानवीय सम्बन्धों का निर्माण, मानवीय संसाधनों का सदुपयोग, कर्मचारियों के सहयोग में वृद्धि, प्रबन्धकीय कार्यों का आधार, कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि, अच्छे श्रम सम्बन्धों का निर्माण, अनुपस्थितता एवं आवर्तन दर में कमी, कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि, संस्था में योग्य एवं कुशल कर्मचारियों की प्राप्ति, परिवर्तनों को सुगम बनाना और मानसिक शान्ति।

अतएव कर्मचारियों का मनोबल उँचा उठाने के लिये यह आवश्यक है कि कार्यदशाओं में प्रत्येक व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो कर्मचारी अपनी कार्य दशाओं से संतुष्ट होते हैं वे अधिक उत्पादक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यह कहने में कोई त्रुटि नहीं है कि अभिप्रेरण एवं उत्पादकता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

## 10.5 अभिप्रेरण के प्रकार

अभिप्रेरण का क्षेत्र व्यापक है। समय-समय पर विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं का उपयोग करना पड़ता हैं। विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रकार की अभिप्रेरणाओं से अभिप्रेरित होते हैं, जिन्हें अभिप्रेरण के प्रकार कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होंगी। मूलतः अभिप्रेरण दो प्रकार का होता है- नकारात्मक/ऋणात्मक अभिप्रेरण तथा सकारात्मक/धनात्मक अभिप्रेरण।

1. **नकारात्मक/ऋणात्मक अभिप्रेरण-** नकारात्मक/ऋणात्मक अभिप्रेरण से आशय ऐसी विधियों से है, जिसमें कार्यरत कर्मचारियों को भय, धमकी एवं सख्ती का उपयोग कर कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है नहीं तो उन्हें नौकरी से हटाने की धमकी दी जाती है। ऐसा विश्वास है कि व्यक्ति स्वभाव से आलसी, आनन्द ग्रहण करने वाला तथा काम से जी चुराने वाला होता है। उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उस पर सख्त पर्यवेक्षण अवश्य किया जाना चाहिये। इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि डराने से कर्मचारियों की कार्य निष्पति में वृद्धि होती है, क्योंकि यह किसी न किसी रूप में लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। क्योंकि वे धमकी एव डर के परिणामों जैसे- छंटनी, पदावन्नति तथा सेवामुक्ति से घबराते हैं। औद्योगिक क्रान्ति के प्रांरभिक दिनों में जब श्रमिक और उनके परिवारों की भूख से मरने की स्थिति हो गई थी तब इस दृष्टिकोण से अच्छा लाभ मिला। नकारात्मक अभिप्रेरण बुरी मानसिक स्थिति उत्पन्न करता है जो काम के प्रति कर्मचारियों के रूझान को कम कर देता है। नकारात्मक अभिप्रेरण का दृष्टिकोण अप्रभावशाली सिद्ध हुआ है, क्योंकि इसके प्रति कर्मचारियों की प्रतिक्रिया उन्हे संगठन के लक्ष्यों के प्रति उदासीन बना देती है। हाल के वर्षों से कर्मचारी अपने पदों से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने की आकांक्षाएं रखने लगे है न कि कठोर दण्ड।
2. **सकारात्मक/धनात्मक अभिप्रेरण-** सकारात्मक/धनात्मक अभिप्रेरण से आशय ऐसी विधियों से है, जिसमें कार्यरत कर्मचारियों को कुछ लाभ या अधिकार प्राप्त होता है। सकारात्मक अभिप्रेरण के अन्तर्गत उद्देश्यपूर्ण आंकाक्षाओं की संतुष्टि की संभावनाएं अधिक व्यक्त की जाती है। सकारात्मक अभिप्रेरण अधिकाधिक कार्य निष्पादन कर दूसरों को प्रभावित करने की सत्त प्रक्रिया है, जिसके परिणामस्वरूप

अच्छे मानवीय सम्बन्ध विकसित होते हैं। इसमें एक ऐसा पर्यावरण विकसित किया जाता है, जिसमें व्यक्तिगत योग्यताओं में अभिवृद्धि होती है तथा सकारात्मक अनौपचारिक संप्रेषण को प्रोत्साहन दिया जाता है। सकारात्मक अभिप्रेरण सामान्यतः पारितोष एवं सम्मान पर आधारित है। सकारात्मक अभिप्रेरण बाहरी और आन्तरिक हो सकता है। बाह्य प्रेरकों से कार्य पूरा करने के बाद आनन्द लिया जा सकता है। आन्तरिक कारक वे है जो कार्य सम्पादन के दौरान उत्पन्न होते है तथा कर्मचारी उन्हें उसी वक्त महसूस करते हैं। चूंकि सकारात्मक अभिप्रेरण अधिक कार्यशील प्रतीत होता है।

अतः अब हम आगे कार्यकुशलता बढ़ाने वाले कुछ सकारात्मक प्रेरकों की भूमिका की व्याख्या करेंगे।

## 10.6 कार्यकुशलता वृद्धि के अभिप्रेरक

प्रेरकों की सही प्रकृति एवं मात्रा किसी संगठन में उपस्थित आंतरिक तथा बाहरी कारकों पर निर्भर करती है। कार्यकुशलता बढ़ाने वाले कुछ महत्वपूर्ण प्रेरक इस प्रकार हैं-

1. **कार्य विस्तार एवं कार्य सघनता-** यदि किसी कर्मचारी के उत्तरदायित्वों में उसके पद के सम्पार्श्वीय पद के अनुरूप वृद्धि की जाती है तो इसे कार्य विस्तार कहते हैं। जबकि यदि अतिरिक्त उत्तरदायित्वों में प्रत्यायोजन तथा विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत पद में जब लम्बवत वृद्ध होती है तो इसे कार्य सघनता कहते हैं। कार्य सघनता की आश्वस्तता (assurance) की जा सकती है, बशर्ते की कार्य अर्थपूर्ण हो। अर्थात कर्मचारी को उपयुक्त प्रत्यायोजन के माध्यम से अधिकार दिये जाएं तथा उसे अपने कार्य करने के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान हो। पलीपों के अनुसार, कार्य की स्वायत्तता निम्न बिन्दुओं से प्राप्त की जा सकती है-
    - स्वयं की कार्य अनुसूची तथा कार्य अन्तरों को निर्धारित करना।
    - कार्य स्थानों को बदलते रहना।
    - दूसरों के साथ अपनी पारी का आदान-प्रदान करना।
    - समस्याग्रस्त स्थिति में अधिकारी पर निर्भर करने की अपेक्षा स्वयं कठिन निर्णय लेना।
    - अपनी गुणवता पर स्वयं नियंत्रण रखना।

यह स्पष्ट है कि बेहतर कार्य निष्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण शर्त कर्मचारियों को उनके रूचि के चुनौती एवं उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य दिये जाये। यह निश्चित करना की कर्मचारी अर्थहीन अरूचिपूर्ण तथा उद्देश्य रहित कार्यों से निराश न हो, प्रबन्ध की प्रक्रिया तथा उद्देश्य दोनों पर पुनर्विचार की मौलिक आवश्यकता है। कून्टज तथा डोनेल ने कार्य सघनता की आश्वस्तता (assurance) के लिये निम्न सुझाव दिये हैं-

- कर्मचारियों को ऐसी चीजे जैसे कार्यविधियां, क्रमबद्धीकरण तथा आराम के बारे में स्वयं निर्णय लेने की छूट देना या भौतिक वस्तुओं को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के बारे में निर्णय लेने के लिये सक्षम बनाना।
- अधीनस्थों की भागीदारी तथा श्रमिकों के मध्य अन्तःक्रिया को प्रोत्साहन देना।
- कर्मचारियों को उनके द्वारा निष्पादित कार्यों के लिए उत्तरदायित्व का अहसास कराना।
- लोगों को यह महसूस कराने के लिए कदम उठाना कि किस प्रकार उनके द्वारा किये जा रहे कार्यों के योगदान से माल तैयार होता है, लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है एवं संगठन का कल्याण उनसे जुड़ा हुआ होता है।

- कर्मचारियों को उनके द्वारा किये गये कार्यो की समीक्षा एवं गुण-दोष बताना, इससे पहले कि उनके उच्च अधिकारी उनको बताये।

श्रमिकों की कार्य पर्यावरण के भौतिक पहलुओं जैसे कार्यालय/फैक्ट्री का स्थान या योजना, तापक्रम, प्रकाश, स्वच्छता आदि में परिवर्तन एवं विश्लेषण का निर्धारण करते समय राय लेना एवं उस पर विचार कर सम्मलित करना।

2. **सत्ता का प्रत्यायोजन-** कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए सबसे सामान्य तकनीक जिसका प्रयोग किया जाता है वह है 'सत्ता का प्रत्यायोजन'। किसी कार्य का सम्पादन करने के लिये सम्बद्ध अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों का प्रत्यायोजन अक्सर सशक्त एवं प्रभावी प्रेरक बल का काम करता हैं।
3. **रोजगार सुरक्षा-** रोजगार की सुरक्षा संगठन की कार्यकुशलता एवं मितव्ययता के अच्छे प्रेरक तत्वों में से एक हैं। जब तक कार्मिकों के मन में नौकरी की सुरक्षा की भावना मौजूद रहती है वे अपने कर्तव्यों के प्रति सम्बद्धता एवं उत्तरदायित्व का अहसास करते हैं। वे रोजगार सुरक्षा के आश्वासन के दौरान संगठन एवं इसकी दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के साथ अधिक सम्बद्धता का परिचय देते हैं।
4. **स्थिति एवं गौरव-** स्थिति एवं गौरव संगठनात्मक संरचना के साथ जुड़े होते हैं। संगठन कितना पुराना है, तथा समाज में उसकी प्रतिष्ठा से भी कर्मचारी काम करने के लिए प्रेरित होते है। अच्छी प्रतिष्ठा वाले संगठनों के कर्मचारी अन्य संगठनों के कर्मचारियों की तुलना में कार्य के प्रति अधिक उत्साह रखते हैं। वे ऐसे संगठन में कार्य करने में अधिक गौरान्वित महसूस करते हैं।
5. **भागीदारी/सहभागिता-** भागीदारी/सहभागीता एक समूह स्थिति में व्यक्ति की मानसिक एवं भावनात्मक सम्बद्धता है जो उसे सामूहिक लक्ष्यों एवं उनके उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने में योगदान के लिए उत्साहित करती है। कर्मचारियों कि भागीदारी/सहभागिता उनकी व्यक्तिगत सम्बद्धता तथा संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में उनके योगदान को बढ़ावा देती है। यह अनौपचारिक रूप से कार्य को गति देने में संचार माध्य का विस्तार करती है। इससे कर्मचारियों में सहमार्गदर्शन एवं नियंत्रण की उपेक्षा की जा सकती है, जो संगठन के सदस्यों के मध्य परस्पर विश्वास एवं सम्मान का उच्चस्तर बनाये रखने में सहायक है। अधिनस्थों में उच्चस्तरीय विश्वास बना रहता है। जो अन्तर वैयक्तिक सहयोग की प्रक्रिया को सुयम बनाता है।
6. **सौहार्दपूर्ण कार्य वातावरण-** अभिप्रेरण व्यक्ति एवं उसके कार्य परिवेश के मध्य एक आदान-प्रदान है। सौहार्द पूर्ण कार्य पर्यावरण व्यक्ति को वरीयता क्रम या मूल्य प्रदान करता है, जिससे व्यक्ति को कार्य करने की प्रेरणा देने वाले लक्ष्यों एवं कारकों का निर्माण होता है। साथ ही कार्य पर्यावरण व्यवहार के मानकों का स्त्रोत है जो अच्छे एवं बुरे, सही एवं गलत, वैध एवं अवैध के मध्य रेखा खींच कर परस्पर अन्तर स्पष्ट करता है।
7. **नैतिकता-** नैतिकता से अभिप्राय उन नैतिक मूल्यों से है जो लोगों के व्यवहार को निर्देशित एंव संस्कारित करने में अह्म भूमिका निभाते हैं। जब इन नैतिक मूल्यों की प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में चर्चा की जाती है तो यह प्रशासनिक नीतिशास्त्र कहलाता है।

## 10.7 प्रशासनिक नैतिकता का अर्थ एवं परिभाषा

प्रशासनिक नैतिकता अर्थात कार्य पर लोक सेवा के आचरण को और निर्देशित करने वाली संहिता। नैतिकता मूल्यों और विश्वासों की एक प्रणाली को संदर्भित करती है जो हमें सही और गलत या अच्छे और बुरे व्यवहार के बीच अन्तर करने में सहायता करती है। इसका तात्पर्य आचरण के एक मानक से है, जिसे सही या उचित के रूप में स्वीकार किया जाता हैं। जिस प्रकार समाज में प्रचलित नैतिक मूल्य, परम्पराएं आदि व्यक्ति के व्यवहार को

सामाजिक दिशा देते हैं, उसी प्रकार प्रशासन में आचरण नियम लोक सेवकों के कर्तव्य व्यवहार को नियमानुकूल दिशा में रखते हैं। एस.एल. गोयल के अनुसार, ''प्रशासनिक आचार नीति उन प्रशासनिक मानदण्डों का अध्ययन है, जिसके आधार पर किसी कार्य के बारे में यह निर्णय किया जाता है कि वह गलत है या नैतिक है या अनैतिक, अच्छा है अथवा बुरा।'' मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, ''नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्ति का अन्तःकरण अच्छे और बुरे का बोध प्राप्त करना है।'' किग्सले डेविड के अनुसार, ''नैतिकता कर्तव्य की भावना पर अर्थात उचित एवं अनुचित पर बल देती है।'' लोकसेवकों को आम नागरिकों से भिन्न एक विशेष व्यवहार करना होता है, ताकि सरकार द्वारा प्रदत्त का दुरूपयोग नहीं हो, नागरिक स्वतंत्रता खतरे में नहीं पड़े और सरकार के समक्ष भी कोई संकट खड़ा नहीं हो। अतः एम. पी. शर्मा के अनुसार सभी सरकारें आचार संहिता बनाती हैं और उसको कर्मचारियों पर लागू करती है। ऐसे आचार नियम प्रायः निम्नांकित विषयों से सम्बन्धित होते हैं-

- सरकार के प्रति दृढ़ निष्ठा तथा अपने उपर के अधिकारियों के प्रति सद्व्यवहार।
- उनके निजी व्यापार और व्यवसाय पर प्रतिबंध, ताकि वे ईमानदार बने रहे। वैसा ही प्रतिबंध कर्मचारियों के ऋण लेने और सम्पति के क्रय-विक्रय पर भी होना चाहिए।
- राज्यकर्म सम्बन्धी, निजी तथा घरेलू जीवन में आचार-व्यवहार का उँचा स्तर।
- उनके राजनैतिक क्रिया-व्यापार, सार्वजनिक भाषण, समाचार-पत्रों में लेख आदि के प्रकाशन से सम्बन्धित विधान।

ये आचार नियम देश के सामान्य नियमों और कानूनों के उपर होते हैं और लोक सेवकों के क्रिया व्यवहार को नियंत्रित करते है। लोक सेवकों को अपने आचरण का नैतिक स्तर इतना उच्च रखना चाहिए कि वह आम नागरिकों के लिए आदर्श और प्रेरणादायी बन सके, क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा।'

## 10.8 नैतिकता जन्म एवं विकास

लोक सेवकों के लिए नैतिकता सम्बन्धी नियम प्राचीन कालीन राजतंत्र में भी हुआ करते थे। भारत में वैश्विक नीति, कौटिल्य नीति मे इस सम्बन्ध में अनेक दृष्टान्त आए हैं। आधुनिक काल में यह जर्मनी था, जिसने ना सिर्फ सर्वप्रथम आधुनिक लोक सेवा को खड़ा किया, अपितु उसके लिए व्यावसायिक संहिता का भी विकास किया। लेकिन इस संहिता में लोकतांत्रिक तत्व कम थे, सर्वसत्तावादी तत्व अधिक। विश्व की ऐसी पहली लोकतांत्रिक लोक सेवा संहिता का विकास ग्रेट ब्रिटेन ने किया था। यह इतनी आदर्श थी कि ब्रिटिश लोक सेवा की पहचान बन गयी।

## 10.9 भारत में स्थिति

भारत में ब्रिटिश शासन के समय से ही लोकसेवा सम्बन्धी आचरण नियम बनाए गए। इनका उद्देश्य जनता के समक्ष आदर्श पेश करना नहीं था, अपितु लोकसेवा को उच्चाधिकारियों, कानूनी ताज आदि के प्रति वफादार और उत्तरदायी बनाएं रखना था। लेकिन स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात दोनों ही समय आचार संहिता के स्थान पर सेवा-नियमों पर जोर दिया गया जैसा कि, पी.आर. देश मुख ने कहा है, ''भारत में सार्वजनिक प्रशासकों के लिए कोई आचार संहिता नहीं है, परन्तु यहां सरकारी कर्मचारी सेवा नियम है। इनमे यह निर्धारित किया गया है कि लोक सेवक के दुराचरण के अन्तर्गत कौन-कौन सी चीजें आती हैं। स्पष्टतया इसका अर्थ वे दुराचरण है, जिनकी अनुमति नही है और जो अनैतिक भी है।

स्वतंत्रता के उपरान्त भारत सरकार ने लोक सेवकों के लिए आचरण नियम समय-समय पर बनाए है। इनमें से महत्वपूर्ण ये हैं- अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954 केन्द्रीय सेवा (आचरण) नियम, 1955 और रेलवे सेवा (आचरण) नियम, 1956। इसके अतिरिक्त भी केन्द्र और राज्य में मूलभूत नियम आदि प्रचलित है।

## 10.10 प्रशासनिक नैतिकता का सुनिश्चित करने वाले तत्व

एन.वी. सालवे और कैनेथ ब्लेनकार्ड ने अपनी पुस्तक ''द पावर ऑफ इथिकल मेनेजमैन्ट'' में निर्णयों की नैतिकता को सुनिश्चित करने के तीन आधार बताए -

1. निर्णय की वैधानिकता- यदि निर्णय वैधानिक नहीं है तो वह नैतिक भी नहीं है।
2. निर्णय की निष्पक्षता- यदि निर्णय किसी एक दिशा या व्यक्ति की और उन्मुख है तो वह निष्पक्ष नहीं है।
3. यदि निर्णय कर लिया गया तो क्या जनता के बीच लोक सेवकों को शर्मिन्दगी उठानी पड़ेगी।

सामान्य रूप से लोक सेवकों के लिए आचार-संहिता के निम्नांकित तत्व हो सकते हैं- कर्तव्यपरायणता, न्यायप्रियता, सच्चरित्रता एवं विनम्रता, राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता, देश भक्ति, राजनीतिक तटस्थता, जनसेवा की भावना, कानून में अखण्ड विश्वास, निष्पक्ष व्यवहार, जवाबदेयता, गोपनीयता कानून का पालन, मानवीय दृष्टिकोण, कार्यकुशलता, विश्वसनीयता, समयपालन आदि।

## 10.11 प्रशासनिक नैतिकता का महत्व

प्रशासनिक नैतिकता निम्नांकित कारणों से महत्व रखती है-

1. इससे लोक सेवकों को प्राप्त शक्तियों को सही दिशा में रखने में मदद मिलती है।
2. यह शक्तियों के दुरूपयोग पर प्रतिबन्ध लगाती है।
3. यह लोक सेवकों में कर्तव्यपरायणता और जवाबदेही सुनिश्चित करती है।
4. इससे लोक सेवा के व्यवहार का आदर्शीकरण होता है जो जनता में शासन-प्रशासन की छवि को श्रेष्ठ बनाता है।
5. इससे प्रशासनिक कार्यकुशलता की प्राप्ति में भी मदद मिलती है।
6. लोक सेवकों को कर्तव्य बोध होता है।
7. नागरिक प्रशासन तथा राजनीति प्रशासन के मध्य सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में मदद मिलती है।
8. प्रशासन को संवेदनशील बनाने के लिए भी नैतिकता जरूरी है। जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा है,''मैं तुम्हे एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हे संदेह हो या तुम्हारा अह्म तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओं जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा।''

## 10.12 प्रशासनिक नैतिकता के कारक

प्रशासनिक नैतिकता को निर्धारित करने वाले कारक निम्न हैं-

1. समाज का नैतिक स्तर और नैतिकता के स्थापित सामाजिक मानक प्रशासनिक नैतिकता के महत्वपूर्ण निर्धारक होते है। उदाहरण के लिए पष्चिमी विकसित देशों के लोक सेवकों में विकासित देशों के लोक सेवकों की अपेक्षा नैतिकता का उच्च स्तर पाया जाता है।
2. प्रशासन में स्थापित परम्पराएं और पूर्व स्थापित दृष्टान्त नैतिकता सुनिश्चित करने का दूसरा महत्वपूर्ण आधार होता है।
3. प्रशासन में आनुशासनिक कार्यवाही का स्वरूप और उसकी प्रभावशीलता तीसरा मुख्य आधार है।

4. प्रशासन के प्रति राजनेताओं का दृष्टिकोण।
5. राजनैतिक नैतिकता।
6. लोक सेवकों की सेवा शर्तो का स्वरूप।
7. प्रशासन में पाये जाने वाले औपचारिक-अनौपचारिक सम्बन्धों का स्वरूप।
8. संगठन में संवाद और सम्प्रेषण की स्थिति।
9. व्यावसायिक चेतना विकास हेतु उपलब्ध अवसरों की स्थिति जैसे प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि
10. जनजागरूकता का स्तर।
11. प्रशासन के प्रति जन दृष्टिकोण।

## 10.13 नैतिकता सुदृढ़ करने के उपाय

डगलस के अनुसार, लोक अधिकारियों को नेकी के मार्ग से विचलित करने वाली बाते ये हैं- भेंट या पुरस्कार, खर्चीली दावतें, आंशिक तथा भावी रोजगार, प्रभाव का विक्रय तथा व्यक्तिक लाभ के लिए सरकारी पद का प्रयोग। इन्हीं में धन तथा राजनीतिक दबाव को शामिल किया जा सकता है। भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या है इसे पूर्णतः नष्ट करना बड़ा कठिन कार्य है। फिर भी हमारी सरकार इस समस्या के विषय में जागरूक है और इस बुराई को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए संलग्न हैं। इस हेतु श्रेष्ठ साधन प्राप्त करने के लिए हाल ही में एक सार्वजनिक वाद-विवाद चला था। यह याद रखना चाहिए कि भ्रष्टाचार का हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत, नैतिक मूल्यों एवं परम्पराओं तथा पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावों से गहरा सम्बन्ध है। इन सभी तत्वों में विधि आदि द्वारा परिवर्तन नहीं किये जा सकते। वस्तुतः हमारे नैतिक आदर्शों, मूल्यों तथा स्तरों के विषय में विद्यमान भ्रम तथा चिन्तन इसका परिणाम है। हम एक ऐसे सक्रान्तिकाल से गुजर रहे हैं, जिसमें पुराने परम्परागत देहाती समाज के स्थान पर नवीन शहरी, औद्योगिक, वैज्ञानिक तथा प्रोद्यौगिकी समाज की स्थापना हो रही है। एक बार जब परिवर्तन का यह कार्य पूरा हो जायेगा और समाज में स्थायित्व आ जायेगा, तब ही अधिकारियों के आचरण में निश्चित सुधार कि आशा की जा सकती है। भ्रष्टाचार रोकने का एक प्रभावी उपाय यह हो सकता है कि लोकमत इस प्रकार सजग, संगठित तथा जागरूक रहे कि वे अपने अधिकारों के प्रति सजग रहनें के साथ-साथ कर्तव्यों के प्रति सावधान रहे ।

उपयुर्क्त उपायों के अतिरिक्त कुछ सुधार सम्बन्धी उपाय भी काम में लाये जाने चाहिए। देश में यह एक सामान्य शिकायत है कि भ्रष्ट अधिकारियों को, विशेषतः शीर्ष स्तर के अधिकारियों को, दण्ड देने के लिए आवश्यक प्रभावशाली प्रशासकीय तंत्र नहीं है। इसके लिए सतर्कता तथा भ्रष्टाचार विरोधी नियमों को शक्तिशाली तथा क्रियाशील बनाया जाना आवश्यक है, और भ्रष्टाचार के दमन सम्बन्धी कानूनों को भी अधिक बांधक बनाने की आवश्यकता है। अंततः सरदार पटेल का यह कथन प्रासंगिक है कि, ''एक प्रशासन का हृदय उसके मस्तिष्क में होना चाहिए।''

**अभ्यास प्रश्न-**

1. 'अभिप्रेरण' शब्द लेटिन भाषा के किस शब्द से बना है?
2. ''अभिप्रेरण का उद्देश्य हमेशा एक व्यक्ति के लिए आवश्यकता उत्पन्न करना है।'' यह कथन किसका है?
3. अभिप्रेरण के कितने प्रकार हैं?
4. ''नैतिकता कर्तव्य की भावना पर अर्थात् उचित और अनुचित पर बल देती है।'' यह कथन किसका है?
5. विश्व की पहली लोकतांत्रिक लोक सेवा संहिता का विकास किस देश में हुआ?
6. ''द पावर ऑफ इथिकल मेनेजमैन्ट'' किसकी रचना है?

**7.** ''एक प्रशासन का हृदय उसके मस्तिष्क में होना चाहिए'' यह कथन किसका है?

## 10.14 सारांश

अभिप्रेरण तथा नैतिकता एक ही सिक्के के दो पहलू है। वास्तव में किसी व्यक्ति के कार्य निष्पादन का स्तर अभिप्रेरण एवं नैतिकता दोनों को निर्धारित करता है। जब हमे किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो हमारे अन्दर एक इच्छा उत्पन्न होती है। इसके फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है, जो प्रेरक शक्ति को गतिशील बनाती है। प्रेरणा इन इच्छाओं और आन्तरिक प्रेरकों तथा क्रियाशीलता की सामुहिक शक्ति के फलस्वरूप है। उच्च प्रेरणा हेतु उच्च इच्छा चाहिये, जिससे अधिक ऊर्जा और गतिशीलता उत्पन्न हो। अभिप्रेरणा द्वारा व्यवहार को अधिक दृढ़ किया जा सकता है। वही नैतिकता का मतलब संस्कृति के द्वारा निर्धारित मानकों का पालन करना, समाज को सही रास्ते पर चलाना है। नैतिकता हमारे व्यक्तिगत और व्यवसायिक दोनों जीवन में बहुत महत्व रखती है। कार्यस्थल पर नैतिक आचरण बनाए रखना बेहद महत्वपूर्ण है। समाज द्वारा परिभाषित बुनियादी नैतिकता के अलावा हर संगठन अपने नैतिक मूल्यों की सीमाओं को निर्धारित करता है। उस संगठन के काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आचार-संहिता बनाये रखने के लिए उनका पालन करना चाहिए। कोई भी कर्मचारी अगर नैतिक कोड का उल्लंघन करते हुये पाया जाये तो उसे चैतावनी पत्र जारी किया जाये या समस्या की गंभीरता के आधार पर अलग-अलग तरीकों से कार्यवाही की जाये।

सभी कार्मिक प्रशासकों का प्राथमिक उत्तरदायित्व यह देखना है कि उनके कर्मचारियों में अभिप्रेरण का उपयुक्त स्तर हमेशा बना रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निरन्तर जांच एवं प्रक्षिशण करते रहना चाहिये।

## 10.15 शब्दावली

व्यवहारवादी उपागम- मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी उपागम संगठन में व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर चलते है। प्रथम, जबकि संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन करता है। दूसरा मानव के आन्तरिक विचारों तथा संगठन के कार्य करने में उसके विवेक एवं मूल्यों पर जोर देता है।

मानवीय सम्बन्ध- यह दृष्टिकोण, संगठन में व्यक्ति के ज्ञान एवं स्थान से सम्बन्धित है। इस उपागम में संगठनात्मक गतिविधियों को अनौपचारिक मानवीय सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाता है।

स्वयं समंजन- यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति या समूह अपने दृष्टिकोणों, मूल्यों, भूमिकाओं तथा व्यवहारिक प्रवृतियों को किसी संगठन या सामाजिक पर्यावरण के विभिन्न पहलूओं के साथ आन्तरिक गठबन्धन, समंजन एवं संतुलन स्थापित कर सके।

## 10.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** 'इमोवियार' **2.** अब्राहम मेस्लो, **3.** दो प्रकार, **4.** किंग्सले डेविड, **5.** ब्रिटेन, **6.** एन.वी. साल्वे और कैनेथ ब्लेनकार्ड, **7.** सरदार पटेल

## 10.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. हैराल्ड एफगार्टनर: एडमिनिस्ट्रेशन इन द पब्लिक सेक्टर, जॉन विले एण्ड सन्स, पृष्ठ संख्या-197
2. फेंड लुथास: आर्गेइनाजेषन बिहेवियर ए मार्डन विहेवियर, मेग्रेहिल कं., न्यूयार्क, 1973, पृष्ठ सं- 481-83
3. स्टीफन, पी. रोबिन्स: आर्गेनाइजेशन बिहेवियर, कन्सेप्टस, कन्ट्रोवर्सीज एण्ड एप्लीकेशन लि., नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 155- 167
4. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया: कार्मिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ- 213

5. चटर्जी, एन.एन, दि मैनेजमेन्ट ऑफ दी पर्सनल इन इण्डियन इन्टरप्राइजेज, एलाईड बुक कम्पनी, कलकत्ता, 1978
6. डेल योदर, पर्सनलः प्रिसिपल्स एण्ड पोलिसिज, प्रेन्टिस हाल, न्यूजर्सी, 1959
7. ग्लेन, ओ. स्टाल, पब्लिक पर्सनल एडमिनेस्ट्रेशन, हार्पर एण्ड रो पब्लिशर्स, न्यूयार्क, 1971

## 10.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया: कार्मिक प्रशासन, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, पृष्ठ- 213
2. चटर्जी, एन.एन, दि मैनेजमेन्ट ऑफ दी पर्सनल इन इण्डियन इन्टरप्राइजेज, एलाईड बुक कम्पनी, कलकत्ता, 1978

## 10.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरण के अर्थ को स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्य, आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. नैतिकता से आप क्या समझते हैं? नैतिकता का विकास और भारत में नैतिकता की स्थिति की व्याख्या कीजिए।
3. प्रशासनिक नैतिकता के कारक और महत्व को स्पष्ट कीजिए।

# ईकाई- 11 कार्मिकों की सेवा सम्बन्धी शिकायतें एंव उनका निवारण, प्रावधान व प्रक्रियाएँ

**इकाई की संरचना**

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 कार्मिकों की शिकायतों का स्वरूप तथा क्षेत्र
11.3 कार्मिक शिकायतों के विभिन्न प्रकार
11.4 कार्मिक शिकायतों में वृद्धि के कारण
11.5 शिकायतों से निबटने के प्रयत्न(सन् 1945 के पश्चात)
11.6 सेवा सम्बन्धी शिकायतों के निवारण के तरीके (प्रावधान व प्रक्रियाएँ)
11.7 शिकायत निवारण तंत्र
11.8 शिकायत निवारण तंत्र में समस्याएं
11.9 सारांश
11.10 शब्दावली
11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

## 11.0 प्रस्तावना

शिकायत व शिकायत निवारण शाश्वत रहे हैं। यदि शिकायत अनवरत बनी रहे तो व्यवस्थाएं अपना अस्तित्व खो देती है। शिकायत से जन्मा असंतोष, विरोध, बदलाव, कभी-कभी क्रान्तियों को जन्म देता है। शिकायत निवारण के अभाव में उत्पन्न विद्रुपताएँ सदैव अव्यवस्था को जन्म देती है इसलिए राजनीति व प्रशासन तंत्र में शिकायत निवारण की व्यवस्थाएं प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही हैं। महाविप्लव के पश्चात गठित व्यवस्था में मनु ने राजा को धर्म का संस्थापक मानते हुए उसे प्रजा के चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि मे सहायक होने का आहवान किया था, ताकि जनता की सभी क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो और शिकायत का निवारण संभव हो।

आचार्य कौटिल्य ने राजा को दण्ड का संस्थापक माना है और शासन व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए दण्ड की औचित्यपूर्ण व्यवस्था को अपरिहार्य माना है। वर्तमान भारतीय परिवेश में पनपता जनआक्रो, बढते धरना प्रदर्शन, आये दिन बन्द व हड़ताल का आयोजन, न्यायालयों में परिवादों की बढती संख्या के मूल में कहीं न कहीं नागरिक सुविधाओं की लचर व्यवस्था व बदहाल शिकायत निवारण प्रणाली ही हैं।

किसी भी सभ्य समाज, विशेष कर लोकतांत्रिक समाज का मुख्य उद्देश्य जनता की प्रसन्नता, संतोष तथा कल्याण होता है। सच तो यह है कि सरकार की शक्ति जनता की समृद्धि पर निर्भर करती हैं और जनसंतोष पर ही लोकतंत्र की सुरक्षा तथा स्थायित्व निर्भर है। किन्तु प्रत्येक प्रकार की शासकीय व्यवस्था में मूल समस्या हमेशा यह रही है कि साधारण नागरिक को वह सेवा तथा व्यवहार नहीं मिलता है, जिसका वह हकदार होता है। आधुनिक सरकार को स्वविवेक की असीम शक्ति प्राप्त है। राष्ट्र निर्माण की गतिविधियों में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका नागरिकों की प्रशासन पर निर्भरता बढ़ाती है। प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग अनाचार, परेशानी और भ्रष्टाचार को जन्म देता है जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों में प्रशासन के विरूद्ध शिकायतें पैदा होती हैं। लोकतंत्र में कार्मिक को अपनी

शिकायतें अभिव्यक्त करने का अवसर मिलना चाहिये और उन शिकायतों के निवारण की उचित व्यवस्था भी होनी चाहिये।

## 11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- एक संगठन में कार्मिकों की शिकायत का स्वरूप देख सकेंगे।
- कार्मिक शिकायतों के विभिन्न प्रकारों को देख सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि कार्मिक शिकायतों में अभिवृद्धि के क्या कारण रहे हैं।
- व्यवहारिक रूप में किन उपायों के माध्यम से इस समस्या को दूर कर प्रशासन को अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।
- यह जान सकेंगे कि स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात इस समस्या से निबटने के क्या प्रयत्न किये गये।

## 11.2 कार्मिकों की शिकायतों का स्वरूप तथा क्षेत्र

सरकार के कार्यपालिका संगठनों के प्रति जनता की शिकायतें हमेशा रही हैं, जो समय-समय पर अनेक रूपों में व्यक्त होती रही है। यद्यपि सरकार के कार्यपालिका अंग के विरूद्ध जन-शिकायत का मुख्य कारण भ्रष्टाचार रहा है, फिर भी भ्रष्टाचार इस असंतोष का अंशमात्र ही है। भ्रष्टाचार निवारण समिति के प्रतिवेदन (1962) के अनुसार, ''व्यापक अर्थ में शासकीय पद अथवा सार्वजनिक जीवन की किसी विशिष्ट स्थिति में निहित शक्ति एवं प्रभाव का अनुचित और स्वार्थी उपयोग ही भ्रष्टाचार हैं।'' किन्तु भ्रष्टाचार के अतिरिक्त शासकीय कर्मचारियों की उदासीनता, अक्षमता एवं असंवेदनशीलता नागरिकों की हानि ही नहीं करते हैं, बल्कि उन्हें कठिनाई पहुँचाते हैं। शिकायतें दो प्रकार की होती हैं- सामान्य तथा व्यक्तिगत। सामान्य जन शिकायतें सरकार की नितियों और कार्यों के विरूद्ध होती हैं। समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से लागू होती हैं। इसके उदाहरण हैं- खाद्यानों की कमी, मूल्यों में वृद्धि, यातायात के साधनों में अव्यवस्था आदि। ऐसी शिकायतें अधिक मात्रा में पायी जाती हैं और समय-समय पर उग्र रूप भी धारण कर लेती हैं, जिससे बड़े पैमाने में उपद्रव फैल जाते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत शिकायतें वे हैं जो व्यक्ति विशेष तक सीमित रहती हैं। वे शिकायतें सरकार के कार्यपालिका अंग के विरूद्ध होती हैं, जिसमें राजनीतिज्ञ वर्ग के लोग तथा लोक-कर्मचारी दोनों सम्मिलित होते हैं। सरकार द्वारा उठाये गये कतिपय कदम शासन की अकर्मण्यता, जिसका प्रभाव व्यक्तिगत रूप से नागरिकों पर पड़ता है, ऐसी शिकायतों के आधार होते हैं। विधि के शासन तथा व्यवसायिक सेवा के विकास के फलस्वरूप लोक सेवाओं की सत्यनिष्ठा के विषय में जनता की सोच में एक परिवर्तन आया है। परिवर्तन यह आया है कि लोक कर्मचारियों को अपने पद का उपयोग अपने स्वयं तथा अपने इष्टमित्रों के आर्थिक एवं अन्य प्रकार के लाभों के लिए नहीं करना चाहिए। आज का नागरिक शासकीय कर्मचारी से यह अपेक्षा रखता है कि वे ईमानदार, परिश्रमी, सक्षम, सहानुभूतिपूर्ण, शिष्ट तथा उचित बर्ताव करने वाले हों। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कर्मचारियों की शिकायतें विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं।

## 11.3 कार्मिक शिकायतों के विभिन्न प्रकार

प्रशासन के विरूद्ध कुछ आम शिकायतों को नामांकित वर्गों में रखा जा सकता है-

1. भ्रष्टाचार- कार्य करने अथवा न करने के लिए रिश्वत की मांग तथा उसे स्वीकार करना।

2. पक्षपात- सत्ताधारी या शक्तिशाली लोगों के प्रति आभार व्यक्त करने के लिये कार्य करना अथवा न करना।
3. भाई भतीजा वाद- अपने सगे सम्बन्धियों को नियमों के विरूद्ध लाभ पहुँचाना।
4. अशिष्टता- जनता के प्रति अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना या अन्य तरीके से अभद्र व्यवहार करना।
5. कर्तव्य की उपेक्षा- कानून द्वारा अपेक्षित कार्यों को न करना।
6. भेदभाव- निर्धन, कमजोर एवं अप्रभावशाली नागरिकों की सही शिकायतों की उपेक्षा करना।
7. विलम्ब- उचित समय पर कार्यों को पूरा नहीं करना।
8. कुप्रशासन- लक्ष्य प्राप्त करने में अकुशलता, समय पर कार्यालय में उपलब्ध न होना, टालमटोल करना, रिकार्ड में हेराफेरी।
9. अपर्याप्त निवारण तंत्र- प्रशासन के विरूद्ध जनता की शिकायतें सुनने एवं निवारण हेतु तंत्र का अभाव/इन्ही कारणों से दिन प्रतिदिन इनकी शिकायतों में वृद्धि हो रही है।

## 11.4 कार्मिकों शिकायतों में वृद्धि के कारण

राज्य के उद्देश्यों के स्वरूप में परिवर्तन आने से तथा सरकार के कार्यों में वृद्धि के कारण नागरिकों के दैनिक जीवन में प्रशासन का हस्तक्षेप बढ़ गया है। अब शासकीय क्रियाकलापों का क्षेत्र 'समस्तरीय एवं विषमस्तरीय' दोनों हो गया हैं। प्रशासन की समस्तरीय परिधि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कार्य आते हैं, जैसे- परमिटों को जारी करना, आवश्यक सामग्रियों का वितरण, जनकल्याण सेवा, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, यातायात आदि की व्यवस्था, बैंकों और बीमा कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि आदि सुविधाओं की व्यवस्था तथा निजी सम्पति का परिग्रहण अथवा अधिग्रहण करना आदि। विषमस्तरीय क्षेत्र का अर्थ प्रशासकीय सोपान के उस स्तर से है, जहां से आदेश प्रसारित होते हैं। यह समरणीय है कि 'आदेश हमेशा सर्वोच्च स्तर पर सचिवालय के अधिकारियों द्वारा मंत्रियों के निर्देशन से ही नहीं दिये जाते है। वरन् आदेश जिलाधीशों, उपसंभागीय अधिकारियों तथा उनसे भी छोटे अधिकारियों द्वारा भी दिये जाते है।''

सरकार द्वारा नवीन उत्तरदायित्वों को स्वीकार करने के कारण प्रशासकीय क्रियाएं बहुत बढ़ गयी हैं। विधि आयोग ने अपने चौदहवें प्रतिवेदन में कहा है कि, ''प्रशासनिक कार्यों का एक वृहत क्षेत्र ऐसा है, जिसमें प्रशासनिक सत्ताधारी विधि एवं औचित्य की शाब्दिक परिधि के बाहर कार्य कर सकते हैं, जिससे अपकृत नागरिक को कोई प्रभावशाली निवारण नहीं मिल सकता है। प्रशासनिक शक्ति तथा विवेक कार्यपालिका के विभिन्न स्तरों की न तो समझ होती है और न चारित्रिक दृढ़ता। जहां भी शक्ति तथा विकास का निवास होता है, वही उनके दुरूपयोग की संभावना भी बनी रहती है, विशेषतः उन परिस्थितियों में जहां उनका उपयोग दुलर्भता, नियंत्रण तथा लोक-निधि के व्यय करने के दबाव की पृष्ठभूमि में किया गया है। प्रशासनिक सोपान के बाहर अपीलीय व्यवस्था तथा शिकायतों के निवारण की व्यवस्था के अभाव में कार्यपालिका के द्वारा मनमानी करने के विषय में जनधारणा में वृद्धि होती गयी।''

## 11.5 शिकायतों से निबटने के प्रयत्न(सन् 1945 के पश्चात)

स्वतंत्रता के बाद भारत में इस मौलिक समस्या के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया गया हैं। अन्य देशों में भी जहां प्रशासन में सत्यनिष्ठा एवं सामर्थ्य उँची मात्रा में पाये जाते हैं, इस समस्या के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई और उसमें भी शासकीय कर्मचारियों की मनमानी, अक्षमता, उदासीनता तथा उनके अविवेक और भ्रष्टाचार के विरूद्ध नागरिकों को संरक्षण देने के लिए संस्थागत व्यवस्थाओं की संरचना की गयी है। उदाहरणार्थ स्वीडन का अनुकरण करते हुए डेनमार्क ने 1955 में औम्बुडसमैन नामक पद की स्थापना की। नार्वे ने भी 1962 में इस पद की स्थापना की।

राष्ट्रमंडल के देशों में न्यूजीलैंड ने 1962 में संदसदीय आयुक्त (जाँच) और ब्रिटेन ने 1967 में संसदीय आयुक्त (प्रशासन) की स्थापना की। इन सब पदों के सृजन का उद्देश्य कुप्रशासन के कतिपय निम्न कोटि के परिणामों से नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना था।

स्वतंत्र भारत की सरकार भी इस विषय में पीछे नहीं रही और इस दिशा में उसने अनेक प्रशंसनीय कदम उठाये हैं। सन् 1947 मे ही भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम बनाया गया। साथ ही भ्रष्टाचार रूपी व्यापक बीमारी की जांच करने और उसको दूर करने के उपायों को सुधारने के लिए अनेक समितियों अथवा आयोगों की स्थापना की गयी। जैसे- 'टेकचन्द समिति'(1949), रेलवे भ्रष्टाचार जाचं (कृपलानी) समिति (1953), तथा बोस आयोग (1956), 1955 में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 में संशोधन करके उसको अधिक कठोर बना दिया गया। इसी वर्ष केन्द्रीय सरकार में प्रशासनिक सतर्कता डिवीजन तथा मंत्रालयों/विभागों में सतर्कता इकाइयों की स्थापना हुई। 1954 में ओ.एण्ड.एम डिवीजन की भी स्थापना की गयी। इसका मुख्य कार्य प्रशासन में सुधार लाना तथा प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों को कम करना था। इसी बीच केन्द्र में शिकायत आयुक्त की नियुक्ति की गयी, जिसका कार्य कर्मचारियों की शिकायतों पर विचार करना था। 1962 में भारत सरकार ने श्री. के. संथानम की अध्यक्षता में 'भ्रष्टाचार निवारण समिति' का गठन किया, जिसमें छः संसद सदस्य और दो वरिष्ठ अधिकारी सम्मिलित थे। इस समिति की सिफारिश के अनुसार 1964 में केन्द्रीय सतर्कता आयोग का गठन हुआ। प्रत्येक राजस्व मण्डल के मुख्यालय में मण्डलीय सतर्कता बोर्ड का निर्माण हुआ। इस बोर्डों के सदस्य थे- मण्डलीय राजस्व आयुक्त, उपमहानिरीक्षक (पुलिस) तथा सतर्कता अधिकारी, जो बोर्ड का संयोजक होता था। यह अधिकारी अशासकीय व्यक्तियों में से चुना जाता था। सतर्कता आयोग की प्रकृति परामर्श देने की है। यह कार्मिक मंत्रालय के क्षेत्र अधिकार में आता है। इसके क्षेत्राधिकार में वे सब प्राधिकार शामिल होते हैं जो केन्द्रीय सरकार के कार्यकारी अधिकारों के अन्तर्गत है। इसके क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित शामिल हैं-

- केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यकर्ता।
- केन्द्रीय सरकार के लिए कार्यबद्ध लोक उद्यमों, कॉपोरेट संस्थानों व अन्य संस्थानों के कार्यकर्ता।
- दिल्ली महानगरीय परिषद व नई दिल्ली नगर निगम के सभी कार्यकर्ता।

आयोग भ्रष्टाचार व दुर्व्यवहार की शिकायतें नागरिकों से सीधे प्राप्त करता है। वह अन्य स्त्रोतों, जैसे- प्रेस रिपोर्ट, लेखा परीक्षण रिपोर्ट, संसद सदस्यों के अभिकथन और संसद समितियों के रिपोर्ट आदि से भी सूचना ले सकता है। इसके अध्यक्ष, केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा 6 वर्षों के लिए या 65 वर्ष की उम्र तक (दोनों में से पहले जो पूरा हो), के लिए होती है। जैसे संयुक्त लोकसेवा आयोग के आयुक्त को हटाया जा सकता है, उसी प्रकार केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त को भी हटाया जा सकता है। वह सेवा निवृति के पश्चात केन्द्रीय व राज्य सरकार के अन्तर्गत कही भी नौकरी नहीं कर सकता ।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग के कार्य निम्नलिखित रहे हैं-

1. यह किसी भी कार्यकलाप के बारे में पूछताछ कर सकता हैं, जिसमें सरकारी कर्मचारी संदेह के घेरे में या आरोपित हो एवं उसने गलत उद्देश्यों के लिए भ्रष्ट तरीका अपनाया हो। गलत या भ्रष्ट उद्देश्यों के लिए सरकारी कर्मचारी ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया हो या प्रयोग नहीं किया हो एवं भ्रष्टाचार, दुर्व्यवहार, सरकार कर्मचारी से ईमानदारी का अभाव, या अन्य प्रकार के अनाचार या अपराध की कोई भी शिकायत इसे प्राप्त होती है तो यह पूछताछ या छानबीन कर सकता है
2. भारत सरकार के विभागों और मंत्रालयों व अन्य स्वायत्त संगठनों की निगरानी एवं भ्रष्टाचार के विरूद्ध सौंपे गए कार्यो पर नियंत्रण एवं निरीक्षण रखता है।

3. प्रशासनिक प्राधिकरणों को मौजूदा कार्य प्रणालियों व व्यवहार को बदलने का परामर्श देता है, खास तौर पर वे कार्य प्रणालियाँ जिनमें भ्रष्टाचार और दुर्व्यवहार की गुंजाइश हो।
4. केन्द्रीय सतर्कता अधिकारी जो सतर्कता विभागों के चालक होते हैं। उनकी नियुक्ति को मंजूरी देता है। यह प्रशासन की कार्यविधियों एवं कार्यकलापों की समीक्षा करता है, ताकि प्रशासन में ईमानदारी कायम रहे।
5. जिला स्तर पर सतर्कता संगठन के अन्तर्गत अलग-अलग राज्यों में सतर्कता संगठनों में विभिन्नता पायी जाती है। अधिकतर राज्यों में राज्य सतर्कता आयोग है। राज्य सरकारों के कार्यालयों एवं राज्य लोक उद्यमों के कार्यालयों में भ्रष्टाचार के मामले को देखने के लिए विशेष पुलिस संगठन भी है। आयोग राज्य सरकार को वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, जिसे राज्य विधान पालिका के समक्ष रखा जाता है। जिला स्तर पर जिला सतर्कता पदाधिकारी है। जिला पदाधिकारी अपने किसी राजपत्रित अधिकारी को जिला सतर्कता पदाधिकारी नियुक्त करता है।

दुर्भाग्यवश समस्या को हल करने में उपर्युक्त प्रयास सफल नहीं हुए है। कुछ लोगों के मतानुसार सतर्कता आयोग छोटे-छोटे मामलों में उलझ गया। अन्य मतों के अनुसार इस आयोग की शासकीय सहयोग की बजाय उदासीनता एवं अरूचि का ही बर्ताव मिला तथा आयोग को कार्य करने का उचित अवसर नहीं मिला।

अतएव इस समस्या के निराकरण के लिए एक नवीन एवं प्रभावकारी उपकरण की खोज प्रारम्भ हुई। संथानम समिति ने न्यूजीलैण्ड के संसदीय आयुक्त के समान पद की अनुशंसा की थी। राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी 1963 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में राज्य के लिए एक औम्बुडसमैन की नियुक्ति की सिफारिश की थी। 1966 में गठित केन्द्रीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने विस्तृत एवं गंभीर रूप से विचार करके नागरिकों की शिकायतों के निवारणार्थ दो विशिष्ट पदों के सृजन की सिफारिश की। केन्द्र तथा राज्यों में मंत्रियों एवं सरकार के सचिवों के प्रशासनिक क्रियाकलापों के विरूद्ध शिकायतों की जांच करने के लिए लोकपाल और केन्द्र तथा राज्यों के अन्य अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों के विरूद्ध शिकायतों पर विचार करने लिए लोकायुक्त की नियुक्ति की सिफारिश की।

## 11.6 सेवा सम्बधी शिकायतों के निवारण के तरीके

वर्तमान समय में सेवा सम्बन्धी शिकायतों के निवारण के तरीके हमारे यहां पर त्रिस्तरीय शासन की भांति त्रिस्तरीय शिकायत निवारण प्रणाली कार्यरत है, जिसके तीनों स्तर निम्नांकित हैं- 1. केन्द्रीय स्तर, 2. राज्य स्तर, और 3. जिला स्तर

1. **केन्द्रीय शिकायत निवारण प्रणाली-** आधुनिक काल में लोक शिकायत निवारण में सर्वप्रथम स्वीडन में 1809 ई. में औम्बुडसमैन नामक संस्था में शुरूआत हुई थी। विश्व में इस संस्था की लोकप्रियता से प्रभावित होकर भारत ने भी स्वतंत्रता के पश्चात 1968 से लेकर अनेकों बार इस संस्था की स्थापना का प्रयास किया, जिसे 2013 के अन्त में सफलता मिली, जब पर्याप्त जन आन्दोलन के पश्चात भारत ने केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल की स्थापना के लिए विधिक प्रावधान किये। भारत में लोक शिकायतों के निराकरण के लिए अनके संस्थाएं कार्यशील हैं, जिनमें निम्न मुख्य हैं- उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय पिछड़े वर्गों हेतु आयोग, राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, संसद व उसकी समितियां, मंत्रीमंडल सचिवालय में लोक शिकायत निदेशालय आदि।
2. **कार्मिक लोक शिकायत एंव पेंशन मंत्रालय-** अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सेवाओं के कार्मिकों के प्रकरणों को नियंत्रित तथा निर्देशित करने, केन्द्र सरकार के कार्यालयों के विरूद्ध जन

शिकायतों का निवारण करने तथा केन्द्र सरकार के सेवानिवृत्त कार्मिकों के पेंषन मामलों में त्वरित कार्यवाही करने हेतु 1985 में श्री राजीव गांधी द्वारा कार्मिक लोक शिकायत व पेंशन मंत्रालय की स्थापना की गयी। सामान्यतः लोक शिकायत निवारण और केन्द्र सरकार संस्थाओं से शिकायत के मामले इसमे शामिल हैं। शिकायत निवारण हेतु यह विभाग निम्न कार्य सम्पादित करता है-

- नीति निर्धारण की भूमिका- इसके तहत् शिकायत निवारण प्रणाली पर जानकारी देने के लिये नीति दिशा-निर्देशों का संकलन 2010 में प्रकाशित किया गया।
- मॉनिटरिंग भूमिका- इसके तहत विभाग, 89 केन्द्रीय मंत्रालय एवं विभागों के साथ इन्टरनेट से सर्म्पक में है एवं शिकायत निवारण के विभिन्न पहलुओं पर प्रत्येक विभाग से तिमाही रिपोर्ट मंगवायी जाती है।
- समन्वय भूमिका- इसमें प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा उपर्युक्त सभी विभागों के साथ समन्वय करते हुए www.darpg.nic.in और www.pgpostral.gov.in पर शिकायतें दर्ज करते हुए सभी विभागों से निस्तारित करवाकर उपर्युक्त पोर्टलों पर उनका समाधान अपलोड करता है।

प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग के अलावा निम्नलिखित संगठन, शिकायतों को प्राप्त करने के लिये केन्द्र बिन्दु नामित किये गये हैं-

- राष्ट्रीय सचिवालय का लोक स्कंध।
- प्रधानमंत्री कार्यालय में लोक स्कंध।
- मंत्रीमंडल सचिवालय में लोक शिकायत निदेशालय।
- पेंशन और पेंशनर्स कल्याण विभाग।

उपर्युक्त सूची के सभी नोडल एजेन्सी डाक द्वारा तथा ऑनलाईन शिकायत नागरिकों से प्राप्त करती है और उन्हें निवारण के लिए वांछित केन्द्रीय मंत्रालय या विभाग या संस्थान को भेजती है। ये नोडल एजेन्सियां शिकायतों को प्रेषित करने के बाद में मॉनीटरिंग भी करती हैं, लेकिन शिकायतों का निवारण उसी मंत्रालय या विभाग द्वारा किया जाता है।

## 11.7 शिकायत निवारण तंत्र

भारत में जन शिकायतों के लिए निवारण हेतु तंत्र विकसित करने के निम्नांकित प्रयास किये गए हैं-

1. **शिकायतों के निवारण के लिए नोडल एजेन्सी-** प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग भारत सरकार में प्रशासनिक सुधार तथा सामान्य रूप मे राज्यों से सम्बन्धित लोक शिकायतों और विशेष रूप से केन्द्रीय सरकारी अभिकरणों से सम्बन्धित शिकायतों के निवारण के लिए एक नोडल एजेन्सी के रूप में कार्य करता है।
2. **नागरिक चार्टर-** व्यापक जनसम्पर्क वाले केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं विभागों से कहा गया है कि वे नागरिक/प्रयोक्ता चार्टर तैयार करें और उन्हें परिचालन में लाएं जिनमें सेवा सुपुर्दगी के अपेक्षित मानकों, शिकायत निवारण प्रणाली और इसके कार्य निष्पादन की सार्वजनिक संवीक्षा के साथ-साथ सम्बन्धित संगठनों की वचनबद्धता स्पष्ट की जाए।
3. **सूचना और सुविधा काउन्टर-** जनता को सूचना और सहायता पहुंचाने की दृष्टि से स्थापित किए गये सूचना और सुविधा काउन्टर चार्टर के अग्रिम छोर के रूप में देखे गए है। सूचना और सुविधा काउन्टर

प्रत्येक कार्यालय के सुरक्षा क्षेत्र से बाहर स्थापित किए गए हैं, ताकि सूचना का प्रसार नागरिक/प्रयोक्ता तक किया जा सके। यह सूचना सम्बन्धित संगठन की योजना और प्रक्रिया से सम्बन्धित होती है और इसके साथ-साथ इसका सम्बन्ध प्रत्येक आवेदन-पत्र की पावती तथा शिकायतों की स्थिति दर्शक रिपोर्ट से भी होता है।

4. **सभी मन्त्रालयों/विभागों में शिकायत निदेशक-** प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा जारी किए गए अनुदेशों के अनुसरण में मन्त्रालयों/विभागों ने एक वरिष्ठ अधिकारी को शिकायत निदेशक के रूप में नामित किया है। शिकायत निदेशक को किसी भी ऐसी शिकायत से सम्बन्धित फाइल/कागजात मंगाने की शक्तियाँ प्राप्त है जो कि तीन माह से अधिक समय तक लम्बित पड़ी हों और वह इस सम्बन्ध मे मन्त्रालय/विभाग के सचिव अथवा सम्बन्धित संगठन के प्रमुख (जैसा भी मामला हो) के अनुमोदन से निर्णय ले सकता है।
5. **मन्त्रालयों/विभागों में बैठक विहीन दिन-** प्रत्येक मन्त्रालय/विभाग में बुधवार एक बैठक विहीन दिवस के रूप मे मनाया जा रहा है। इस दिन के तीन घण्टे (प्रातः 10 से 1 बजे तक ) शिकायत निवारण के लिए अलग रखे जाते हैं, जबकि उपसचिव और उच्च स्तर के सभी अधिकारी लोक शिकायतों की सुनवाई करने और उन्हें प्राप्त करने के लिए अपने कार्यालय में उपलब्ध रहते हैं। सभी मन्त्रालयों/विभागों को इस आशय के अनुदेश भी जारी किए गए हैं कि वे अपने सम्बद्ध/अधीनस्थ एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में सप्ताह का एक दिन बैठक विहीन दिवस के रूप में घोषित करें।
6. **केन्द्रीयकृत सॉफ्टवेयर पैकेज-** प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग ने सभी मन्त्रालयों/विभागों में कार्यान्वयन हेतु परिचालित करने के लिए संशोधित शिकायत, कोड सहित एक समान सॉफ्टवेयर तैयार किया है। इस कोड में वास्तविक शिकायतों को अनुरोधों, सुझावों, आरोपों तथा कानूनी निवारण सम्बन्धी मामलों से पृथक रखा गया है। इस सॉफ्टवेयर को जनता से व्यापक सम्पर्क रखने वाले मन्त्रालयों/विभागों में चालू किया गया है। इसे धीरे-धीरे अद्यतन किया जाएगा, ताकि शिकायतों के निपटान को मानीटर करने में मदद मिल सके और शिकायतों पर की गई कार्यवाही की स्थिति के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की सूचना ऑनलाइन पर उपलब्ध हो सके।
7. **शिकायतों के निवारण के लिए सचिवों की स्थायी समिति-** मन्त्रिमण्डल सचिव की अध्यक्षता में अगस्त, 1998 में लोक शिकायतों के निवारण के लिए सचिवों की एक स्थायी समिति गठित की गई है। कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय के सचिव, मन्त्रिमण्डल सचिवालय में सचिव (समन्वय), उपभोक्ता मामलों से सम्बन्धित विभाग के सचिव, रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष, डाक विभाग के सचिव, महानिदेशक योजना आयोग, प्रधान सूचना अधिकारी इस समिति के सदस्य हैं तथा अपर सचिव प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग इसके सदस्य सचिव हैं। यह समिति एक वर्ष के दौरान सार्वजनिक सम्पर्क वाले केन्द्रीय सरकार के विभागों से सम्बन्धित शिकायतों के निवारण के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार-लोक शिकायत विभाग द्वारा प्रस्तुत किए गए, प्रणालीबद्ध सुधारों से सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार करेंगी।

## 11.8 शिकायत निवारण तंत्र में समस्याएं

कर्मचारियों की शिकायतों का निवारण करने में निम्न समस्याएं सामने आती हैं-

1. राज्य स्तरीय शिकायत निवारण तंत्र की संस्थाओं में पदस्थापित व्यक्तियों का दृष्टिकोण व्यापक होता है, जिससे वह प्रत्येक मामले का सामान्यीकरण कर देते हैं एवं प्रत्येक मामले को गंभीरता से नहीं लेते हैं।

2. प्रार्थी की समस्या को सुनने के लिए पदाधिकारियों के पास सदैव ही समय की कमी रहती है। यदि प्रार्थी की बात सुन ली जाये तो प्रार्थी से जुड़े अन्य सभी पक्षों को सुनना सदैव संभव नहीं हो पाता है, जिससे पदाधिकारी समस्या के मूल को नहीं पहचान पाते और समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो पाता।
3. लोक शिकायत निवारण तंत्र की अनुशंसाएं, सिफारिशों एवं परामर्श के रूप में होती है। ये संस्थाऐं अपराधियों को स्वयं दण्डित नहीं करती हैं। ऐसे में विभागीय तंत्र इनकी सिफारिशों को कितना महत्व देता है। यह इनके अन्तर- सम्बन्धों पर निर्भर करता है।
4. शिकायत निवारण तंत्र के सर्वोच्च स्तर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय भी शिकायतों के सत्यापन हेतु जिला स्तरीय संस्थाओं की सूचनाओं पर अधिक अवलंबित होते हैं। ऐसे में जिलास्तरीय निकाय राज्य स्तरीय निकायों से अधिक वैधानिकता रखते हैं।

जनता की शिकायतों का निवारण इतने उच्च स्तर की संस्थाओं की स्थापना से संभव नहीं है। जनता की शिकायतों का मुख्य आधार जनता और प्रशासन में दूरी का है। इसके लिए जनता और लोक सेवक के आचरण, व्यवहार तथा सोच में अन्तर जिम्मेदार हैं। हमारे यहां जनसेवक एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में कार्य करते हैं और उनसे इस दिशा में आमूलचूल परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके लिए दोनों की सोच तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन होना आवश्यक है। दूसरा समाधान प्रशासन का विकेन्द्रीकरण हैं। प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए प्रशासन का विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। तीसरा समाधान लोगों द्वारा अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के संगठनों का निर्माण करना है। कृषक-समर्थक वर्ग, मजदूर-समर्थक वर्ग, आदि इस प्रकार के संगठनों के अच्छे उदाहरण हैं। इस बीच छात्रों, शिक्षकों, शासकीय कर्मचारियों, आदि द्वारा सरकार से अपनी मांगों को पूर्ण कराने के लिए आन्दोलनों का सहारा लेना पड़ता है। शहरों में 'बन्द' का आयोजन एक आम बात हो गयी है। इसके अतिरिक्त संभव हो तो प्रत्येक संभाग पर सभी संस्थाओं की स्थानीय इकाई आवश्यक रूप से होनी चाहिये एवं निश्चित समयावधि के पश्चात ये संस्थाएं इन स्थानीय इकाई में उपस्थित होकर जनशिकायतों का समाधान कर सके। जिन संस्थाओं के पास जनता की शिकायतें अधिक मात्रा में आती हैं, उनकी स्वयं की जाचं एजेन्सी होनी चाहिये। यदि संस्था की स्वयं की जाँच एजेन्सी संभव नहीं हो तो राज्य अन्वेषण ब्यूरो के कार्यालयों का उपयोग इस हेतु किया जा सकता है और राज्य अन्वेषण ब्यूरो सम्बन्धित मामले की जाचं हेतु निर्देश व आदेश के लिए सम्बन्धित संस्था के अधीन रहे। सरकार को इन संस्थाओं में प्रशासनिक अधिकारियों व न्यायविदों की नियुक्तियों के बजाय विशेष ज्ञो को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। इन निकायों में कार्यरत प्रशासनिक कार्मिकों को भी सरकार के अन्य विभागीय कार्मिकों की भांति वेतन, भत्ता, पदोन्नति, सेवालाभ इत्यादि दिये जाने चाहिए।

**अभ्यास प्रश्न-**

1. भारत में 'भ्रष्टाचार निवारक समिति' का गठन कब किया गया और इसके अध्यक्ष कौन थे?
2. 'केन्द्रीय सतर्कता आयोग' का गठन कब किया गया?
3. सर्वप्रथम किस देश में और कब 'ओम्बुडस्मैन' की स्थापना कब की गयी?
4. ओ0 एण्ड एम0 डिविजन की स्थापना भारत में कब की गयी?
5. केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त की नियुक्ति कौन करता है?
6. केन्द्रीय स्तर पर लोक पाल की स्थापना के लिए विधिक प्रावधान कब किए गये?

## 11.9 सारांश

यह सत्य है कि जब प्रभावकारी विधायी परिनिरीक्षा, उचित ढंग से प्रतिष्ठित मंत्रीय उत्तरदायित्व, नियमों की प्रबल प्रणाली तथा जवाबदेह एवं भागीदार प्रशासन उपलब्ध हो तब कार्मिकों में शिकायत की संभावना काफी कम हो

जाती है। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि ये सब शर्तें अनिवार्य सीमा एवं तीव्रता के साथ आसानी से किसी देश में उपलब्ध न होने के कारण प्रशासनिक शिकायतें बढ़ रही हैं। इन स्थितियों से निपटने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों ने आंतरिक प्रशासनिक प्रणाली को मजबूत कर एवं कुछ स्थितियों में वृहद कर, कुछ व्यवस्था की है। एक प्रशासनिक निर्णय अथवा कार्यवाही के विरूद्ध वरिष्ठ अधिकारी अथवा मंत्रियों से याचना करने की विधियों को कुछ देशों में सुधारा एवं स्पष्ट किया गया है। कुछ देशों में विशेष अधिकारी को शिकायत अथवा सुधार अधिकारी निर्दिष्ट किया जाता है, जिसे नागरिक शिकायतें दर्ज कराते हैं। लेकिन जब वह प्रशासनिक संगठन से प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं करता अथवा उस प्रत्युत्तर से पूर्णतः संतुष्ट नहीं होता है, तब वह शिकायत से सम्बन्धित अधिकारी के पास जाता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उपकरण ओम्बुडसमैन है। भारत में इसे लोकपाल और लोकायुक्त के प्रतिरूप में अपनाया गया है। यदि कर्मचारियों की शिकायतों को बढ़ने दिया गया तथा प्रशासन के प्रति असंतोष बढ़ता गया तो समाज में तनाव और अशान्ति को बढवा मिलेगा। सामाजिक और आर्थिक असंतोष के बढ़ने से जनता में प्रशासन के प्रति अविश्वास तथा यदा-कदा हिंसात्मक आन्दोलन भी होते हैं।

यद्यपि लोकायुक्त संस्था सैद्धान्तिक दृष्टि से सुदृढ़ दिखाई देती है, किन्तु व्यावहारिक रूप से किसी भी राज्य में लोकायुक्त संस्था प्रभावित नहीं हो पायी है। लोकायुक्त की भूमिका सरकार का परामर्श देने की है। कई बार लोक सेवकों का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी लोकायुक्त की सिफारिश पर राज्य सरकार समुचित कार्यवाही नहीं करती हैं। इस प्रकार प्रशासन में अनैतिकता तथा अकार्यकुशलता पर अंकुश नहीं लग पाता है।

## 11.10 शब्दावली

अशिष्टता- जनता के प्रति अपमानजनक भाषा का प्रयोग करना या अन्य तरीके से अभद्र व्यवहार करना।
कुप्रशासन- लक्ष्य प्राप्त करने में अकुशलता, समय पर कार्यालय में उपलब्ध न होना, रिकार्ड में हेराफेरी।
अपर्याप्त निवारण तंत्र- प्रशासन के विरूद्ध जनता की शिकायत सुनने एवं निवारण हेतु तंत्र का अभाव।

## 11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**1.** सन् 1962 में, श्री के0 संथानम, **2.** सन् 1964 में, **3.** सन् 1908, स्वीडन में, **4.** जून 1954 में, **5.** राष्ट्रपति, **6.** सन् 2013

## 11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. कटारिया डॉ. सुरेन्द्र प्रशासनिक चिंतक, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2005
2. फड़िया बी.एल., ''भारत में लोक प्रशासन'' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2015
3. www.darpg.nic.in
4. वार्षिक प्रतिवेदन, जनशिकायत निवारण विभाग, राजस्थान सरकार, जयपुर 2008
5. वार्षिक प्रतिवेदन, भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो, 2012
6. डॉ. रविन्द्र शर्मा, भारत में लोक प्रशासन, कॉलेज बुक हाउस, 1997
7. चतुर्वेदी. टी. एन., 1997, ''फिफ्टी इर्यस ऑफ इण्डियन एड.: स्ट्रोस्पक्टिव एंड प्रोस्पेक्टस्,'' इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनेस्ट्रेशन, जुलाई-सितम्बर वोल्यूम XLIIi No. 3


## 11.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री


1. फड़िया, बीएल, 'भारत में लोक प्रशासन' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ. रविन्द्र शर्मा, भारत में लोक प्रशासन, कॉलेज बुक हाउस, 1997

## 11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कार्मिक की शिकायतों के स्वरूप तथा क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों की चर्चा कीजिए।
2. शिकायत विवारण तंत्र को स्पष्ट करते हुए इसमें आने वाली समस्याओं पर प्रकाश डालिए।